आधुनिक तमिल कहानियां

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

आधुनिक तमिल कहानियां

संकलनकर्ता
अशोकमित्रन

अनुवादक
के. ए. जमुना

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-0690-1

पहला संस्करण : 1993

दूसरी आवृत्ति : 1998 (*शक* 1920)

रु. 31.00

Original Title : Pudiya Tamil Chirukathaigal

Translation : Adhunik Tamil Kahaniyan (*Hindi*)

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,

नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

अनुक्रम

भूमिका

यह संकलन उन कथाकारों की रचनाओं का एक संग्रह प्रस्तुत करने का प्रयास है, जिन्होंने सन् 1960 के बाद तमिल कहानी साहित्य को समृद्ध किया है।

इन वर्षों के आरंभ में ही ऐसा प्रतीत होने लगा था कि जल्दी ही अणु-युद्ध छिड़ जायेगा। फिलहाल वह विपत्ति टल गयी, किंतु विश्व की राजनीति में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शक्तिशाली द्वारा निर्बल को अपने अधीन करने की प्रवृत्ति बराबर बनी हुई है। नये दृष्टिकोणवाले युवा वर्ग ने विश्व की अंतरात्मा को झकझोर दिया। युगों-युगों से स्वाभाविक रूप से अपनायी गयी प्रथाओं, विचारधाराओं, दृष्टिकोणों को कठोरता से पुनः परखा जाने लगा। उनमें से कुछ को छोड़ दिया गया। सारा विश्व आचरण का एक नया मार्ग खोजने लगा।

साहित्यकार दूरदृष्टा होता है—इस कथन को आम तौर पर सभी लोग बहुत पहले से स्वीकार करते आये हैं, किंतु साहित्य की प्रकृति है कि वह सदा अपने समय से तनिक पीछे रहता है। कोई भी घटना घटित होते ही साहित्य नहीं बन जाती। उसे सूक्ष्म रूप से परखने और जानने के लिए थोड़े अंतराल की आवश्यकता होती है। आज के युग में, जबकि सूचनाओं के आदान-प्रदान के साधन अत्यंत विकसित हो गये हैं, विभिन्न घटनाओं का प्रभाव कम होने से पहले ही तमिल साहित्य-जगत् में विचारोत्तेजक कहानियां, कविताएं आदि (यहां तक कि उपन्यास भी) प्रचुर मात्रा में सामने आ जाती हैं। किंतु उन घटनाओं का प्रभाव क्षीण होते ही वे रचनाएं भी धीरे-धीरे लुप्त होने लगती हैं। इस संग्रह की रूपरेखा को ध्यान में रखते हुए मैंने इसके लिए कुछ ऐसी कहानियां चुनी हैं, जिनके विषय में मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि इनमें सनसनीखेज घटनाओं को नहीं, बल्कि समाज के विकास के हर चरण की बारीकियों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मैं इस बात को भली-भांति जानता हूं कि यदि कोई और व्यक्ति इस तरह का संग्रह तैयार करता तो संभवतः उसमें कुछ दूसरी कहानियों और कहानीकारों को स्थान मिलता।

तमिल कथा-साहित्य की पृष्ठभूमि को जरा ध्यान से देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सन् 1960 में भी साहित्य-जगत् में उसी स्वच्छंदतावाद और आदर्शवाद का बोलबाला था, जिसे स्वतंत्रता-पूर्व युग में भारतीय साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति माना गया था। उस युग के अधिकांश प्रसिद्ध लेखकों ने स्वतंत्रता के पूर्व देश की जनता

के सम्मुख उपस्थित एक विशिष्ट लक्ष्य को ही अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त किया था। स्वतंत्रता-पूर्व युग में अपनी लक्ष्य-प्राप्ति की दिशा में अग्रसर जनता पश्चिमी जीवन-पद्धति को एक सीमा तक उसी रूप में न अपना ले, इसी विचार से अपने देश की संस्कृति और पारंपरिक जीवन-पद्धति के महत्व की प्रभावशाली ढंग से प्रतिष्ठा की गयी। यद्यपि 19वीं शती से ही कुछ लोग इस पुरातनवाद का विरोध करने लगे थे, किंतु सामान्य जनता में विरोध के कोई स्पष्ट लक्षण नहीं दिखायी दिये। महाकवि सुब्रह्मण्य भारती के बाद के युग में तमिल का पुनरुत्थान हुआ। कहानी के क्षेत्र में पुदुमैपित्तन, कु. पा. रा. जैसे कहानीकारों ने प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन शैली दोनों क्षेत्रों में अपनी प्रगतिशील विचारधारा का परिचय दिया। इन लेखकों के बाद, इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आरंभ में जयकांतन के कारण तमिल पाठकों के एक बहुत बड़े वर्ग का इस वैचारिक आंदोलन से परिचय हुआ कि सांप्रदायिक विचारधारा का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए।

जयकांतन की तरह युवावस्था में ही प्रसिद्धि पा लेनेवाले और भी कई साहित्यकार तमिल में हैं, किंतु जयकांतन की विशिष्टता इस बात में है कि उन्होंने केवल श्रेष्ठ कहानियों की ही रचना नहीं की, बल्कि युगीन समाज के लिए आवश्यक विचार अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किये। ऐसा करते हुए उन्होंने भारत की सुदीर्घ परंपरा और संस्कृति की उपेक्षा नहीं की। तमिल साहित्य-जगत् में सामाजिक परिवर्तन-संबंधी जिन यथार्थवादी विचारों की अभिव्यक्ति हो रही थी, उन्हें लोकप्रिय पत्रिकाओं में स्थान दिलाने में भी जयकांतन का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

एक ओर जहां यह कहा जाता है कि इन लोकप्रिय पत्रिकाओं ने नवीन तमिल साहित्य का जनता के बीच अत्यधिक प्रचार-प्रसार किया है, वहीं यह भी कहा जाता है कि ये पत्रिकाएं अच्छे साहित्य के विकास में बाधक रही हैं। हजारों की संख्या में बिकनेवाली इन पत्रिकाओं का मुख्य लक्ष्य है, अपने लाखों पाठकों को तृप्त करना। इन पत्रिकाओं के मालिक प्रायः सोचते हैं कि उनके अधिकांश पाठक गंभीर साहित्य का स्वागत नहीं करेंगे। अतः वे सरल विचारों की अभिव्यक्ति करने वाली सीधी-सादी रचनाओं को ही बार-बार छापते हैं। बिक्री की होड़ में सफल होकर भी संतुष्ट न होनेवाले इन लोगों को पत्रिका का स्वरूप इस तरह बदल देना पड़ता है कि वह पाठकों को उन्मत्त अथवा उत्तेजित कर दे। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम क्षति साहित्य की ही होती है।

आज कोई भी यह नहीं कहता कि इस कथन में सचाई नहीं है, किंतु बहुत समय तक अनेक तमिल नेता यह मानते रहे हैं कि प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाली रचनाएं ही श्रेष्ठ रचनाएं हैं। ये लोग सामाजिक संस्थाओं के मालिक भी थे। इसी कारण गंभीर साहित्य की उपेक्षा की बात और महत्वपूर्ण हो गयी। पत्रिका की रचनाओं और गंभीर साहित्य के अंतर को कम से कम एक छोटे से दायरे के लोगों को भली

प्रकार समझाने का अथक प्रयत्न करने वालों में का. ना. सुब्रह्मण्यम् का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने लेखन जैसे महत्वहीन माने जानेवाले कार्य को अपनी आजीविका का साधन ही नहीं बनाया, अपितु उसके सर्वाधिक दुर्बल अंग, गंभीर साहित्य, की रचना को अपना लक्ष्य बनाया। उन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता आदि की रचना करने के साथ-साथ आलोचनात्मक निबंधों की भी रचना की। इस शताब्दी के तीसरे, चौथे, पांचवे दशक में का. ना. सुब्रह्मण्यम् के आलोचनात्मक निबंधों और 'गंभीर साहित्य एवं पत्रिका-साहित्य का अंतर स्पष्ट करनेवाले' उनके विचारों ने उन्हें क्षति ही पहुंचायी मगर सन् साठ के आरंभ तक तमिल पाठकों और लेखकों ने इस अंतर पर विस्तार से विचार करना शुरू कर दिया था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि अनेक लघु पत्रिकाएं निकलने लगीं।

स्वयं का. ना. सु. ने कुछ लघु पत्रिकाएं निकालीं। 'तामरै', 'सरस्वती', 'शांति', 'ग्राम ऊलियन' आदि उस युग की कुछ महत्वपूर्ण लघु पत्रिकाएं हैं। सी. सु. चेलप्पा ने 'एलुत्तु' नामक पत्रिका चलाकर नयी कविता के विकास के लिए एक मंच प्रस्तुत किया। छठे दशक में आरंभ की गयी लघु पत्रिकाओं में प्रमुख हैं–'कणैयालि', 'दीपम्', 'नडै', 'ज्ञानरथम्', और 'कण्णदासन'। सातवें दशक की लघु पत्रिकाओं में 'क च ट त प र' से आरंभ करके अनेक पत्रिकाओं के नाम गिनाये जा सकते हैं। छठे दशक से पहले की लघु पत्रिकाओं और पिछले बीस वर्षों से प्रकाशित हो रही लघु पत्रिकाओं में मुख्य अंतर यह है कि पूर्वकथित पत्रिकाओं और उनके संपादकों ने यह माना कि अधिक मात्रा में बिकनेवाली पत्रिकाएं और उनमें छपनेवाली रचनाएं बलपूर्वक साहित्य-क्षेत्र से निकाल बाहर करने योग्य हैं। और उन्होंने ऐसा करने का प्रयास भी किया, जबकि आज की लघु पत्रिकाओं ने अधिक मात्रा में बिकनेवाली लोकप्रिय पत्रिकाओं को इस कालखंड का अपरिहार्य अंग माना। उनकी ओर ध्यान दिये बिना अपने ढंग से गंभीर साहित्य की सेवा को एक विरोधी कर्म न मानकर, अपने द्वारा किया जाने योग्य एक कर्म ही माना।

इस शताब्दी के छठे दशक में प्रारंभ किया गया 'लघु पत्रिका आंदोलन' शुरू-शुरू में लोकप्रिय पत्रिकाओं द्वारा तैयार किये गये लाखों पाठकों को हास्यास्पद ही लगा होगा। अवसर मिलने पर लोकप्रिय पत्रिकाओं ने इन लघु पत्रिकाओं और उनसे संबंधित व्यक्तियों के विषय में हीन विचार भी व्यक्त किये, किंतु लघु पत्रिकाओं द्वारा आरंभ किये गये आंदोलन ने लोकप्रिय पत्रिकाओं के पाठकों के बदले उन पत्रिकाओं के लेखकों को ही अधिक परेशान किया। बाद में लघु पत्रिकाओं में छपने वाली कहानियों के कथ्य, शैली, गंभीरता आदि कुछ बातों को लोकप्रिय पत्रिकाओं ने भी अपनाया। जहां तक बाह्य आकार का प्रश्न है, आज तमिल में रचित और प्रकाशित अधिकांश कहानियों पर गंभीर लेखन का स्पष्ट प्रभाव है, किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि वर्ण्य विषय, उद्देश्य और गंभीरता की दृष्टि से उनमें दिखायी

देनेवाला परिवर्तन उनके महत्व को बढ़ाने वाला है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों की ओर बढ़ते हुए हम यह पाते हैं कि आज तमिल की लोकप्रिय पत्रिकाओं में प्रकाशित अधिकांश कहानियों पर उन गंभीर साहित्य-लेखकों का प्रभाव है, जिन्हें उन पत्रिकाओं में छपने का अवसर ही नहीं मिला। यदि कहानी को भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की एक शाखा मान लिया जाय तो प्रौद्योगिकी की अन्य शाखाओं के समान कहानी भी एक विशिष्ट कालखंड में लोगों के दैनिक जीवन में परिव्याप्त प्रौद्योगिकी का एक अंग बन जाती है। किसी नये लेखक की पहली रचना में भी एक सीमा तक उसकी निपुणता और योग्यता के दर्शन होते हैं। अच्छी कहानी और अच्छी तरह लिखी गयी कहानी में भेद करना कठिन, किंतु बेहद जरूरी है।

नये कथाकारों की सामान्य विशेषताओं को लेकर तर्क-वितर्क करने के बाद निकाले गये निष्कर्ष प्रायः तमिल में प्रकाशित नहीं किये गये। विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम के अंतर्गत नया साहित्य भी पढ़ाया जाता है, किंतु विभिन्न कालों के साहित्य को नये दृष्टिकोण से परखकर उनके विषय में सरल शैली में, विस्तारपूर्वक और तार्किक रीति से अपने विचारों को व्यक्त करने का काम हाल ही में शुरू हुआ है। लगभग पंद्रह वर्ष पूर्व का. ना. सु. ने अपने एक निबंध में कहा था कि वर्तमान काल के सभी तमिल कहानीकार एक सूत्र में बंधे हुए दिखायी देते हैं। उनका कहना था कि स्वतंत्रता-पूर्व युग में लेखकों में जो लक्ष्यबद्धता थी वह अब लुप्त हो गयी है। इतना ही नहीं हम उनके हृदयों में व्याप्त एक प्रकार की अविश्वास की भावना का भी अनुभव कर सकते हैं। आज इस संबंध में और भी कुछ बातें कही जा सकती हैं। उस युग में, सभी समस्याओं को अपने में समेटे, परतंत्रता की भावना ने तमिल कहानीकारों की आत्मा पर अधिकार कर लिया था। आज की तमिल कहानियां समस्या के भीतर से ही उसका समाधान खोज निकालने का प्रयास करती हैं। उस युग में, सभी लोग एक समान शत्रु पर अपना ध्यान केंद्रित कर, उसका विरोध करने में लगे हुए थे। अतः समाज में दिखायी देने वाली असमानता, विभिन्नता और विरोधों को अधिक महत्व नहीं दिया गया, किंतु आज की कहानियां इन विषयों को लेकर स्पष्ट रूप से विवाद करने में कोई संकोच नहीं करतीं। आज कहानियों में प्रांत-विशेष के जीवन की बारीकियों को विस्तार से प्रस्तुत किया जाता है। सहज रूप से उपलब्ध हो जानेवाली एवं सभी रोगों से छुटकारा दिलाने वाली औषधि के रूप में धर्म और ईश्वर के प्रति आस्था का उपयोग नहीं किया जाता। स्त्रियों को सांप्रदायिक बंधनों से मुक्त विविध आयामोंवाले व्यक्ति के रूप में चित्रित किया जाता है। ये विशेषताएं आज की लोकप्रिय पत्रिकाओं में भी देखी जा सकती हैं।

पिछले बीस वर्षों में लघु पत्रिकाओं के साथ कुछ पुस्तकों के प्रकाशन ने भी तमिल कथा साहित्य में उल्लेखनीय परिवर्तन किये हैं। इनमें पहली महत्वपूर्ण पुस्तक है 'कुरुक्षेत्रम्'। बहुत से निबंधों, कविताओं, कहानियों तथा एक लघु उपन्यास एवं

एक नाटक को अपने कलेवर में समेटे लगभग चार सौ पृष्ठों की इस पुस्तक को सन् 1967 में तिरुवनंतपुरम् निवासी साहित्यकार नकुलन ने संकलित और प्रकाशित किया। उसी वर्ष तमिलनाडु की राजधानी मद्रास में दूसरा विश्व तमिल सम्मेलन संपन्न हुआ। 'कुरुक्षेत्रम्' के प्रकाशन ने गंभीर साहित्य के प्रेमियों के हृदयों में ऐसी हलचल उत्पन्न कर दी कि उनके लिए यह कहना बहुत कठिन हो गया कि तमिल भाषा को समृद्धि प्रदान करनेवाली उक्त दोनों घटनाओं में से कौन-सी अधिक महत्वपूर्ण है। इस संकलन में जिनकी रचनाएं प्रकाशित हुई थीं, उनमें प्रायः सभी लेखक ऐसे थे जिन्हें लोकप्रिय पत्रिकाओं में स्थान नहीं मिला था। 'कुरुक्षेत्रम्' के प्रकाशन के समय उसके लेखकों में दो-एक ही ऐसे थे जिनकी कृतियां पुस्तकाकार प्रकाशित हो सकी थीं। फिर भी 'कुरुक्षेत्रम्' को उस कालखंड में रचित नवीन तमिल लेखन का एक उत्तम उदाहरण माना जा सकता है। परवर्ती काल में उसने अनेक प्रयोगमूलक कृतियों के प्रकाशन की दिशा में पथ-प्रदर्शक का काम किया। पूर्णरूप से एक व्यक्ति के प्रयत्नों और सूझ-बूझ के परिणामस्वरूप 'कुरुक्षेत्रम्' नवीन तमिल साहित्य का एक मील का पत्थर बन गया।

'कुरुक्षेत्रम्' के बाद मद्रास के चार युवा लेखकों ने मिलकर एक और कहानी-संग्रह निकाला। 'कोणलगल' शीर्षक से प्रकाशित इस संग्रह में चारों लेखकों ने अपनी तीन-तीन कहानियां सम्मिलित की थीं। यद्यपि 'कोणलगल' को साहित्य-जगत् में उतनी ख्याति नहीं मिली, जितनी 'कुरुक्षेत्रम्' को मिली थी; फिर भी उसने लोकप्रिय साहित्य प्रकाशन-जगत् में स्थान न पा सकनेवाले, स्तरीय साहित्य के रचनाकारों को सहकारिता के आधार पर अपनी कृतियां प्रकाशित करने का मार्ग दिखाया; साथ ही स्त्री-पुरुष की यौन समस्याओं को साहित्य का वर्ण्य विषय बनाकर लेखन में प्रवृत्त होनेवाले रचनाकारों का पथप्रदर्शन किया।

क्या राजनीति के प्रभाव से मुक्त लेखन संभव है ? सांप्रदायिक दृष्टिकोण से साहित्य को परखनेवाले, राजनीति को कोई विशिष्ट और उल्लेखनीय स्थान नहीं देते। सोवियत क्रांति के फलस्वरूप भारत में भी समानाधिकार के विचारों और आदर्शों की ओर लोगों का ध्यान गया। तमिल लेखकों से भी पिछले पचास वर्षों से यह प्रश्न पूछा जा रहा है कि 'आप किसके समर्थक हैं ?' सन् 1960 के बाद कुछ तमिल कहानीकारों ने अत्यंत स्पष्ट रूप से विचारधारा विशेष के प्रति अपने झुकाव और अपने राजनीतिक संबंधों का वर्णन किया। साहित्यालोचना के क्षेत्र में भी लेखकों की, उनके द्वारा समर्पित पार्टी के दृष्टिकोण से अथवा उनके लेखन में जिस विचारधारा की अभिव्यक्ति स्वीकार की गयी–उसके आधार पर, प्रशंसा अथवा निंदा की गयी। लोकप्रिय पत्रिकाएं इस तरह के विवादों में नहीं पड़ीं, किंतु लघु पत्रिकाएं जैसे कमर कसकर इस घोर विवाद में संलग्न रहीं। इस विवाद ने सीधे-सीधे श्रेष्ठ लेखकों को अथवा रचनाओं को जन्म नहीं दिया, किंतु तमिल कहानी के विकास के लिए एक

मंच अवश्य प्रदान किया और साथ ही लेखकों को उसकी अनेक बारीकियों से अवगत कराया। इसी विवाद के कारण कहानियों के माध्यम से उस युग में विकसित हो रहे शिल्प-विज्ञान का परिचय देना और प्रौद्योगिकी संबंधी सूक्ष्म विवरणों को उनमें सम्मिलित करना संभव हो सका। कहानी में जहां श्रमिक वर्ग और ग्रामीण जनता के जीवन की जटिलताओं को स्थान मिला, वहीं इंजीनियरों, शिल्प-विज्ञान विशेषज्ञों, उच्च वर्ग के लोगों को कहानी का पात्र बनाकर उनके माध्यम से पाठकों को जीवन के उन आयामों से परिचित कराया गया जिनसे वे प्रायः अनभिज्ञ थे।

इन बीस वर्षों में तमिल कहानियों का अन्य भारतीय भाषाओं में प्रचुर मात्रा में अनुवाद हआ है। 'इंडियन काउंसिल फॉर कल्चरल रिलेशंस' की त्रैमासिक पत्रिका 'इंडियन होराइजंस' में अनेक तमिल कहानियों के अंग्रेजी, फांसीसी, स्पैनिश और अरबी भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुए। इंगलैंड की पेंग्विंस नामक संस्था द्वारा प्रकाशित 'न्यू राइटिंग इन इंडिया' संग्रह में तीन तमिल कहानियों को भी स्थान मिला। हमारे देश की कई दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिकाओं ने अनेक तमिल कहानियों के अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किये। विदेशों में, वहां की भाषाओं में तमिल कहानियों के अनूदित होने के समाचार भी इन बीस वर्षों में ही ज्यादा मिले हैं। ये बातें परस्पर एक-दूसरे देश के लोगों के बारे में और वहां के जीवन के बारे में जानने की व्यक्ति की जिज्ञासा को ही व्यक्त नहीं करतीं, वरन् इस बात का भी संकेत देती हैं कि विश्व साहित्य के मंच पर तमिल कहानी ने भी एक महत्वपूर्ण स्थान पा लिया है।

जैसा कि मैंने पहले कहा यह संग्रह एक विशिष्ट कालखंड में तमिल कहानी साहित्य की विकास-यात्रा को, उसके सर्वोन्नत स्तर को, प्रतिबिंबित करने का एक प्रयास मात्र है। यह संग्रह सदा के लिए तमिल की श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह नहीं बना रह सकता, किंतु यदि कभी तमिल की सर्वश्रेष्ठ कहानियों का एक संग्रह तैयार किया गया तो निःसंदेह उसमें इस संग्रह की अनेक कहानियों को स्थान मिलेगा।

मद्रास, **अशोकमित्रन**
19 सितंबर 1980

बहू का वोट

कृष्णन नंबि

अगले दिन चुनाव था। बिल्ली और तोते के बीच ही परस्पर प्रतियोगिता थी। तोता चुनाव-चिह्नवाले उम्मीदवार वीरबाहु कोनार और बिल्ली चिह्नवाले उम्मीदवार मारियाडुम पोरूमाल पिल्लै ने जीतोड़ मेहनत की। पूरा शहर जैसे दो भागों में बंट गया।

गणेश मंदिर की वह गली जहां रसोइये का काम करनेवाले और मंदिर में पूजा-अर्चना का काम करनेवाले ब्राह्मण रहते थे, उसे तोता पार्टीवालों का गढ़ कहा जा रहा था। अहीर-वंशी वीरबाहु उस गढ़ में रहनेवाले अनेक परिवारों के यहां दूध बेचा करते थे।

मीनाक्षी अम्माल के पास अपनी गाय थी। वह सुबह-शाम डेढ़ पाव दूध अपने घर के लिए रख लेती थी और बाकी में नियम से पानी मिलाकर बेच देती थी। सभी लोग नकद लेने वाले थे। उधार देने के लिए अहीर-वंशी दुष्ट वीरबाहु काफी था !

मीनाक्षी अम्माल को निर्धन नहीं कहा जा सकता। जिस मकान में वह रहती थी उसकी, और गांव की सीमा में 66 सेंट अर्थात् लगभग तीन चौथाई एकड़ उपजाऊ भूमि की वह मालकिन थी। तालुकेदार के कार्यालय में चपरासी का काम करने वाले उसके पति, जिनकी मृत्यु कुछ वर्ष पहले ही हुई थी, यह सारी सम्पत्ति उसके नाम कर गये थे। रामलिंगम् उसका इकलौता बेटा था। एकदम सीधा। यह उसका सौभाग्य था कि सरकार ने करुणामूलक कारणों से पिता की नौकरी बेटे को दे दी थी। मीनाक्षी अम्माल ने उसकी शादी भी कर दी। बुढ़ापे में सहायता के लिए उसे एक बहू चाहिए थी न।

रूक्मिणी बहुत दुबली-पतली होते हुए भी काम करने से कभी जी नहीं चुराती थी। सुबह-सुबह उठकर आंगन को गोबर से लीपने और अल्पना बनाने से लेकर रात को सोने से पहले गाय के लिए चारा तैयार करने तक सभी कामों को वह बिना किसी त्रुटि के कर लेती थी। खाना बनाने में भी वह पटु थी। मुंगौड़ी की सब्जी और साग बना लेती तो वह भी बहुत स्वादिष्ट लगती थी (सासें तो हमेशा कोई न कोई गलती निकालती ही रहती हैं। बहुओं को सुधारने और उन्हें हर तरह से चतुर

बनाने के लिए ही तो वे ऐसा करती हैं !)।

रूक्मिणी दूध दुहना भी जानती थी। पड़ोस की लड़कियां कहती थीं कि दूध दुहने से छाती में दर्द हो जाता है। किंतु बहू के घर आते ही सास ने उसे यह सीख दे दी थी कि लोग तरह-तरह की बातें करेंगे, तुम उन पर ध्यान मत देना। किसी को जवाब मत देना। किसी से कुछ भी न कहना सबसे उत्तम है। तुम्हें हमेशा अपने काम से मतलब रखना चाहिए आदि, आदि। शादी से पहले ही रूक्मिणी को छाती में हल्के दर्द और सांस की शिकायत थी। यदि डॉक्टर लोग उसकी जांच कर लेते तो वे अवश्य ही कहते कि रूक्मिणी 'ट्रापिकल इस्नोफीलिया' से पीड़ित है। लेकिन उसकी जांच करने की आवश्यकता कहां थी ? इलाज करने को तैयार होनेवाले, पैसे के लिए कुछ भी कर सकते हैं। उनका एकमात्र लक्ष्य रोगी से पैसा ऐंठना ही होता है। क्या मीनाक्षी अम्माल यह सब नहीं जानती ? इस आयु में, इतने अनुभव के बाद क्या नहीं जानेगी ? उन्होंने बहू से कह दिया कि बच्चा पैदा होने के बाद सब-कुछ ठीक हो जायेगा। यहां बहू ही नहीं, दूसरा कोई व्यक्ति भी मृत्युशय्या पर नहीं पड़ा हुआ है। फिर डॉक्टर के पास जाने की आवश्यकता क्या है ?

बहू को काम सौंपकर सास मीनाक्षी अम्माल हाथ पर हाथ धरे चुपचाप नहीं बैठती। उसके पास भी बहुत से काम हैं। दूध में पानी मिलाना, उसे नापकर बेचना, उससे मिलनेवाले पैसों का (साथ ही बेटे रामलिंगम् के वेतन का भी) हिसाब-किताब रखना और सारी रकम को संदूक में बंदकर ताला लगाना, एक-एक पैसा सोच-समझकर खर्च करना, डाकखाने के बचत-खाते में पैसा जमा करना—ये सब काम उसके ही जिम्मे थे। इतना ही नहीं, खाली समय में एक कॉपी पर एक लाख से भी अधिक बार 'श्रीराम जयम्' लिखकर उसने ब्राह्मणों की अपनी बस्ती की लड़कियों को विस्मित कर दिया है। उसकी योजना है कि मरने से पहले वह दस लाख एक बार 'श्रीराम जयम्' लिख ले।

रूक्मिणी और उसकी सास प्रतिदिन एक साथ ही भोजन किया करती थीं। खाना परोसते समय जब मीनाक्षी अम्माल स्पष्ट शब्दों में और गंभीर वाणी में कहती थी कि "कम भोजना करना ही नारी को शोभा देता है"*, तब रूक्मिणी को लगता था कि इस सूक्ति को स्वयं मीनाक्षी अम्माल ने अपनी बुद्धि के बल पर रचकर उसके सम्मुख प्रस्तुत किया है। बहू को यह बात भी माननी पड़ी कि सास का यह कथन सर्वथा सही है कि अधिक भोजन करने से शरीर में चर्बी बढ़ जाती है (भूख से अत्यधिक पीड़ित होने पर दो-चार मौकों पर ही रूक्मिणी ने सबकी नजरें बचाकर ठूंस-ठूंसकर खाना खाया होगा)।

किसी घर में बहू बनकर आनेवाली लड़की के मुंह से जबरदस्ती कोई बात

---

* एक तमिल सूक्ति

उगलवाना, उसमें नमक-मिर्च लगाकर उसकी सास से कहना, उन दोनों को परस्पर भिड़ाकर तमाशा देखना—यह सब न करें तो गांव की लड़कियों को नींद कहां आती है ? किंतु रूक्मिणी के सामने अपनी कोई भी चाल सफल होते न देख उन्हें बहुत निराशा हुई। सदा घर के भीतर बंद रहनेवाली रूक्मिणी जब कभी मंदिर या तालाब को जाती, लड़कियां उसका पीछा करतीं, किंतु अब उन्होंने "इस लड़की के मुंह में जबान नहीं है" कहकर उसका पीछा करना छोड़ दिया है।

रात के समय बरामदे में बैठकर लोक-चर्चा करते हुए जब भी कोई स्त्री अपने इस प्रश्नबाण से मीनाक्षी अम्माल को बेधती कि, "तुम्हारी बहू कैसी है ?" तब वह जोर देकर कहती, "उसके बारे में क्यों पूछती हो, वह बहुत मजे में है" और इस प्रकार उनकी बोलती बंदकर दूसरी कोई बात छेड़ देती थी। गांव की लड़कियां तनिक ईर्ष्या से भरकर कह उठती थीं, "उसका क्या ? उससे भला कौन जीत सकता है ?"

चुनाव से एक दिन पहले रात को जो महिला सभा हुई, उसका प्रधान विषय यदि चुनाव रहा, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। सभी लोग अच्छी तरह जानते थे कि मीनाक्षी अम्माल अपना वोट किसे देगी। फिर भी एक लड़की ने शरारत से पूछ ही लिया, "मामी जी, आप अपना वोट तोते को देंगी न ?" मीनाक्षी अम्माल ने उत्तर दिया, "सब कुछ जानते हुए भी मुझे छेड़ रही हो ?" "आपकी बहू किसे वोट देगी ?" कहकर दूसरी ने पहली को आंख मारी। अब मीनाक्षी अम्माल को गुस्सा आ गया। उसने जोर देकर कहा, "अरी लड़कियो, तुम हम दोनों को अलग-अलग मानती हो। हम दोनों एक हैं। जो लोग इस बात को नहीं जानते उनके मुंह में राख।" उसकी बात सुनकर सभी जोर-जोर से हंसने लगीं।

प्रातःकाल मतदान का काम तनिक धीमी गति से चला, किंतु दोपहर बाद उसमें काफी तेजी आ गयी। मीनाक्षी अम्माल ने सबसे पहले जाकर अपना वोट डाला। उसके घर के बहुत पास नदी की ओर जानेवाले रास्ते पर जो प्राइमरी स्कूल था, वही मतदान का केंद्र था। नहाकर घर लौटते हुए रामलिंगम् को रास्ते में ही कुछ लोगों ने पकड़ लिया। अतः उसे गीले कपड़ों में ही जाकर अपना वोट देना पड़ा।

दोपहर को भोजन के बाद हमेशा की तरह मीनाक्षी अम्माल की आंखें भारी होने लगीं। वह आंगन के चौखट पर सिर टेककर सो गयी। रूक्मिणी गोशाले में गाय को सानी-पानी दे रही थी। अभी कुछ देर पहले ही गाय ने घास का एक बड़ा गट्ठर खाकर खत्म किया था। गाय को पानी पीते और भूसा खाते देखकर रूक्मिणी को बड़ी प्रसन्नता होती थी ! सास के अधिकार-क्षेत्र की सीमाओं से बाहर मिलनेवाली प्रसन्नता। झूठा क्रोध व्यक्त करते हुए वह कहती, "मरी कितना भी खा ले, तेरी भूख नहीं मिटेगी" और बड़े प्यार से उसके माथे पर हाथ फेरती। मीनाक्षी अम्माल ने स्थायी रूप से उसे यह आदेश दे रखा था कि, "इसे गाय समझकर इसकी उपेक्षा

मत करना। यह साक्षात् महालक्ष्मी का रूप है। क्षण भर के लिए भी इसे भूखा-प्यासा मत रहने देना। यदि वह भूखी-प्यासी रही तो इसका दूध सूख जायगा। इसकी भली-भांति देखभाल करना।"

"हे गैया, क्या तू मादा जाति की नहीं है ? तनिक यह तो बता कि कम भोजन करने का सिद्धांत क्या तुझ पर और मेरी सास पर लागू नहीं होता ?" कहकर रूक्मिणी उसकी पीठ थपथपाती। उस समय उसे बहुत हंसी आती। उसके गले की लटकती खाल पर हाथ फेरने से उसे विशेष प्रकार का आनंद मिलता था। गाय को भी यह सब अच्छा ही लगता था। वह अपना मुंह उसकी ओर फेरकर उससे सट जाने की कोशिश करती थी।

"आज मैं वोट डालने जा रही हूं। तू इन सब झंझटों से मुक्त है। तू बता कि मैं किसे वोट दूं ? बतायगी ? तू जिसे कहेगी उसी को मैं अपना वोट दूंगी। यह बता कि तुझे बिल्ली पसंद है या तोता ? मुझे जो पसंद है वही तुझे भी पसंद है न ? मैं सच कहती हूं कि मुझे तोता ही पसंद है। हरे रंग का तोता कितना सुंदर लगता है ! मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं भी उसकी तरह इधर-उधर उड़ती फिरूं। मुझे बिल्ली भी पसंद है, किंतु तोता उससे ज्यादा पसंद है। हां, एक बात है, बिल्ली को तोता बिल्कुल अच्छा नहीं लगता।"

बाल्टी में रखा पानी कम होने पर उसने कलसे में से थोड़ा पानी और भूसा उसमें डाल दिया। इसी बीच गाय ने सींखचों के बीच से सिर बाहर निकालकर थोड़ा-सा भूसा अपने मुंह में दबा लिया और पानी पीने लगी। गुस्से में भरकर रूक्मिणी ने उसके मुंह से भूसा छीनकर दूर फेंक दिया। ऐसा करते हुए बाल्टी के हिलने से पानी बिखर गया। "मरी, तूने इस तरह पानी क्यों बिखेरा ? इससे किसको फायदा हुआ ? आराम से पानी नहीं पी सकती।" कहकर उसने गाय के मुंह पर हल्के से चपत मारी। जैसे ही उसने दाएं-बाएं अपना सिर हिलाया, भूसा-मिले पानी के छींटे इधर-उधर उड़ने लगे। कुछ छींटे रूक्मिणी पर भी पड़े। उसने साड़ी के आंचल से अपना चेहरा पोंछ लिया।

गाय अब पानी न पीकर बाल्टी के भीतर मुंह डालकर उसके तले में पड़ी खली को खोजने लगी। उसके ऐसा करते ही हवा के बुलबुले पानी की सतह पर आ-आकर फूटने लगे। उसकी सांस घुटने लगी। उसने झटपट अपना मुंह बाहर निकाला, सिर ऊंचा किया और जोर-जोर से सांस लेने लगी। उसके मुंह के चारों ओर भूसी का घेरा देखकर रूक्मिणी को हंसी आ गयी। वह बोली, "अरी गैया ! सुनती है ? तू आजकल अच्छी मात्रा में दूध देती रहे, इतना ही पर्याप्त नहीं है। जब मेरी गोद में बच्चा खेलने लगेगा, उसके बाद भी इसी तरह काफी मात्रा में दूध देती रहना। क्या तू नहीं चाहती कि मेरा बच्चा तेरा दूध पिये ? जैसे तू अपने बच्चे को दूध पीने देती है, वैसे ही क्या तू मेरे बच्चे को भी अपना दूध पीने देगी ? मेरे पति ठीक ही कहते

हैं कि मेरी छाती बिल्कुल सूखी हुई है। छाती का दर्द ही मेरे हिस्से आया है। सूखी हुई छाती में से दूध कहां निकलेगा ? हां, इतना निश्चित है कि मेरे बच्चा जरूर होगा। मेरी सास ठीक ही कहती है कि जिस स्त्री के भाग्य में संतान का सुख होता है वह चाहे कभी बिस्तर पर पड़ जाय, संतान को अवश्य जन्म देती है और जो बांझ है वह किसी भी परिस्थिति में संतान को जन्म नहीं दे सकती। क्या तू जानती है कि मेरा बड़ा भाई मणी, जो लड़ाई में मारा गया था, वही मेरे पुत्र के रूप में जन्म लेगा। तू खाक नहीं जानती ! यूं ही खड़ी-खड़ी सींग हिलाती रह। तुझे तो सिर्फ पेट भरना आता है।" गैया ने 'थप्-थप्' करके ढेर सारा गोबर किया और घड़ा भर पेशाब किया। उसने झटपट उठकर दोनों हाथों से गोबर उठाया और उसे गड्ढे में डालकर लौट आयी। घास में हाथ पोंछकर वह बाकी बचे जल-सहित बाल्टी और कलसा लेकर वहां से खिसक गयी। गैया ने मुंह उठाकर उसकी ओर देखा और रंभाने लगी। वह बोली, "मैं जा रही हूं। वोट डालकर लौटने पर बछड़े को दूध पीने तेरे पास छोड़ दूंगी।" गाय के थनों में दूध उतर आने के कारण वे खड़े से हो गये थे।

मीनाक्षी अम्माल के कहे अनुसार रूक्मिणी को मतदान-केंद्र तक ले जाने के लिए पड़ोस की कुछ युवतियां अपने अच्छे से अच्छे कपड़े पहनकर आयी थीं। कुएं के पास जाकर मुंह-हाथ धोकर रूक्मिणी घर के भीतर आयी। "अच्छा, अब झटपट बाल बनाकर, माथे पर बिंदी लगाकर चल पड़" कहकर सास ने जल्दी मचायी। रूक्मिणी ने अलमारी खोली, उसमें से छोटे-छोटे हरे फूलों वाली वायल की एक साड़ी निकाली और उसे लेकर दूसरे कमरे की ओर दौड़ी। उसने छोटा-सा एक गोल आईना, जिसमें चेहरे का एक-तिहाई हिस्सा ही दिखाई देता था, अपने सामने रखा। आईने में चेहरा देखतें हुए, समय पर कंघी न मिलने के कारण, हाथों से अपने बाल संवारे, माथे पर बिंदी लगायी और भागती हुई दरवाजे के पास आयी। वहां बैठी युवतियों में से एक ने तिरछी नजर से मीनाक्षी अम्माल को देखते हुए उससे पूछा, "अरी, इतनी देर कहां लगा दी ?" उसकी बात सुनकर रूक्मिणी बहुत दुखी हुई। उसने भरे कंठ से उत्तर दिया, "जल्दी के मारे मैं बालों को ठीक तरह से संवारे बिना भागी चली आ रही हूं।" उसकी बात पूरी होने से पहले उसकी सासू जी बोलीं, "अच्छा, तुम लोग अब झटपट चल पड़ो" और ऐसा कहकर उन सबको वहां से धकेल दिया। जीना उतरते ही उसने ताली बजाकर अपनी बहू को बुलाया, "अरी तुझसे एक बात कहना तो भूल ही गयी। एक मिनट के लिए अंदर आ" कहकर उसे घर के भीतर ले गयी। आवाज को धीमी करते हुए वह बोली, "मैंने जो कुछ कहा था, वह याद है न ? वोट डालने में गलती मत कर देना। वे तुझे एक पर्ची देंगे। उस पर बिल्ली और तोते की तस्वीर बनी होगी। बिल्ली की तस्वीर के सामने ठप्पा लगा देना। रास्ते में इन लोगों से बातें मत करना।"

मतदान-केंद्र एकदम शांत था। कई घुमावोंवाली एक पंक्ति स्त्रियों की और प्रायः

सीधी एक पंक्ति पुरुषों की थी। स्त्रियों की पंक्ति कुछ अधिक लंबी थी। रंग-बिरंगे वस्त्रों में सजी स्त्रियों की पंक्ति पुष्पों से लदी एक लता के रूप में और पुरुषों की पंक्ति एक लंबे डंडे के रूप में दिखायी दे रही थी। वोट देकर बाहर आने वाले कुछ पुरुषों के चेहरे पर झलकते भाव को देखकर ऐसा लगा, मानो वे किसी काम को बड़ी चतुराई से पूरा करके आये हों। कुछ लोगों के चेहरे एकदम मुरझाये हुए से लगे, मानो वे किसी का क्रियाकर्म करके लौटे हों। प्रायः सभी स्त्रियां अपनी अपार हंसी को रोकने के प्रयास में अपनी बत्तीसी दिखाती बाहर निकलीं। रूक्मिणी बहुत खुश थी। उसे सब कुछ बहुत अच्छा लगा।

स्कूल के अहाते में खड़े हरे-भरे खूब फैले नीम के पेड़ों को उसने बड़े चाव से देखा। धूप कम हो गयी थी और धीमी-धीमी हवा चलने लगी थी। उसे लगा कि हवा उसके शरीर से कहीं ज्यादा उसके मन को अपार आनंद प्रदान कर रही है। उसे वहां जो कुछ दिखाई दिया, उसे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने अपने-आप से पूछा, 'आज की तरह किसी और दिन क्या मैं इतना खुश हुई हूं ? अरे, वह रहा बेर का पेड़। एक किनारे कुएं के पास अकेला खड़ा है। वह बेर का पेड़ ही है न ? हां वही है, इसमें कोई संदेह नहीं!' उसने बेर का पेड़ सबसे पहले वेंबनूर में देखा था। उसके बाद इतने वर्षों तक उसने वह पेड़ कहीं नहीं देखा। उसने मन ही मन यह धारणा बना ली थी कि संसार में केवल एक ही बेर का पेड़ है और वह वेंबनूर स्थित देवसायम् प्राथमिक पाठशाला के अहाते में है। अतः इस शहर में दूसरा बेर का पेड़ देख कर वह चकित रह गयी। 'क्या वह पेड़ अपनी जगह छोड़कर यहां आ गया है ? हाय ! इसमें कितने फल लगे हुए हैं !' रूक्मिणी की प्रसन्नता की सीमा न रही। उसकी इच्छा हुई कि वह जोर-जोर से चिल्लाकर कहे 'बेर का पेड़, बेर का पेड़'। बेर खाये कितने दिन हो गये ! उसका तो स्वाद ही निराला है।

वेंबनूर की पाठशाला में वह पांचवीं कक्षा तक पढ़ी थी। उन दिनों उसने कितने ही बेर खाये होंगे, इसकी कोई गिनती है ? लड़कों के साथ होड़ लगाते हुए वह पेड़ पर चढ़ जाती थी। लहंगे को लांगदार धोती की तरह बांध लेती थी, जिससे उसकी दोनों जांघे दिखायी देने लगती थीं। उसकी जो सहेलियां पेड़ पर चढ़ना नहीं जानती थीं, वे पेड़ के नीचे खड़ी होकर, सिर उठाकर उससे चिल्ला-चिल्लाकर कहती थीं, "रूक्कू ! थोड़े से बेर मेरे लिए तोड़ दे, मेरे लिए तोड़ दे" और वह पेड़ की ऊंची शाखा पर बैठकर बेर खाकर उनके बीज जमीन पर थूककर खुश होती थी। आज उस घटना को याद करके उसका शरीर रोमांचित हो उठा, आंखें सजल हो गयीं। कालू मास्टर और बातूनी मास्टर की याद आते ही उसे बहुत हंसी आयी। उसके मन में यह विचार आया कि शायद अब तक उन सबका स्वर्गवास हो चुका होगा। उसने सोचा क्या ही अच्छा हो, अगर वह पुनः छोटी-सी लड़की बनकर स्कूल जाने लगे।

पेड़ हवा में हिल रहे थे। अचानक रूक्मिणी ने देखा कि बिल्कुल अप्रत्याशित रूप में लाल चोंचवाला हरे रंग का एक तोता कहीं से उड़ता हुआ आया और उस बेर के पेड़ की एक ऊंची डाल पर बैठकर चिल्लाने लगा। उसके बोझ से वह डाल ऊपर-नीचे झूलने लगी। वह अत्यंत विस्मित होकर बोली, "आ तोते, आ ! तुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं अपना वोट तुझे ही दूंगी। मैंने तो पहले से ही यह निर्णय कर लिया था। मेरी सास को जाकर मत बता देना। उन्होंने मुझसे बिल्ली को वोट देने को कहा है। तू ही बता कोई तोते को वोट न देकर बिल्ली को वोट क्यों देगा ? मुझे अपनी सास की इच्छा के विरुद्ध यह काम करना पड़ रहा है। बता मैं क्या करूं ? अच्छा, यह तो बता कि तू इस समय कहां से आ रहा है ? मेरे घर आ जा न ! तू जब भी चाहे आकर मुझसे मिल सकता है। मैं गोशाले में काम करती मिलूंगी। यदि इस समय नहीं आ सकता, तो फिर जब मर्जी हो, आ जाना। यदि तू मेरे बच्चे के जन्म के बाद आयेगा तो मुझे बहुत खुशी होगी। मेरा बच्चा भी तेरे सुंदर रूप को देखेगा न ? हे तोते, आते समय बच्चे के लिए फल लेकर आना।"

रूक्मिणी ने अब तक आदमियों की ऐसी कतारें नहीं देखी थीं। उसे यह सब नया-सा लगा और यह व्यवस्था अच्छी लगी। 'अरे ! यह क्या ! रेलगाड़ी की सी लंबी लाइन अब कितनी छोटी हो गयी है !' पुरुषों की लाइन में सात-आठ लोग ही खड़े थे। मतदान-केंद्र उसके पास आता जा रहा था। उसके आगे आठ-नौ स्त्रियां खड़ी थीं। कमरे के भीतर जाते ही पर-पुरुषों के सामीप्य ने उसके मन में संकोच की भावना जगायी, साथ ही तनिक हलचल भी उत्पन्न की। उसने आंखें उठाकर किसी को भी नहीं देखा। अपने चारों ओर जो कुछ देख रही थी, उसे स्वप्न समझकर वह आगे बढ़ गयी।

काले रंग के एक युवक के बालों से रहित दो हृष्ट-पुष्ट हाथ एक आयताकार मेज पर पड़े कागज के ढेर और लाल-पीले पेन-पेंसिलों के बीच तेजी से घूम रहे थे। उसी ने एक सफेद कागज उसकी ओर बढ़ाया। आगे बढ़ते हुए न जाने किन-किन लोगों ने उसका रास्ता काटा। उसे जमीन पर एक सिक्के के गिरने की आवाज सुनायी दी। अंत में रूक्मिणी ने देखा कि न जाने किस तरह वह एक स्क्रीन के पीछे आ खड़ी हुई है। उसके पीछे परदे के बाहर खड़ी एक युवती जोर से हंसी और क्षण भर में ही चुप हो गयी। रूक्कू का दिल तेजी से धड़कने लगा। उसे जोर से पेशाब आया। ओंठ भींचते हुए वह बोली, "हे ईश्वर तू मेरी कैसी परीक्षा ले रहा है !" अचानक उसे याद आया कि दूध दुहने का समय हो गया है। थनों में दूध उतर आने के कारण बेचैन होती हुई गाय और खूंटे के बंधन से मुक्त होने के लिए तड़पते हुए उसके बछड़े के 'बां....बां' करके जोर से रंभाने की आवाज उसके कानों में गूंजने लगी। उसका शरीर क्यों इस तरह कांप रहा है ? छाती में भी थोड़ा दर्द हो रहा है। यह रहा तोता। वह तोते के चिह्न के सामने मोहर लगाने को तैयार हो गयी। अचानक

एक हाथ नें रूक्मिणी का हाथ पकड़ लिया। उसने घबराकर पूछा, "कौन है ?" और पीछे मुड़कर देखा। वहां कोई नहीं था, किंतु यह बात सच थी कि एक हाथ ने रूक्मिणी का हाथ कसकर पकड़ा हुआ था। वह किसी स्त्री का हाथ था। किसी अन्य स्त्री का नहीं, उसकी सास मीनाक्षी अम्माल का हाथ था। सास के हाथ ने उसके हाथ को तोते के चिह्न के सामने से हटाकर बिल्ली के चिह्न के सामने पहुंचा दिया। उसने वहीं मोहर लगा दी। हाय ! रूक्मिणी का वोट बिल्ली को मिल गया। हां, बिल्ली को मिल गया।

वह झटपट मतदान-केंद्र से बाहर निकली। पड़ोस की युवतियां उसका इंतजार कर ही रही थीं। उसे सामने से आता हुआ देखकर जाने क्यों वे सब हंसने लगीं। उसके पास आते ही एक युवती ने पूछा, "रूक्कू ! तूने किसको वोट दिया ?" अनजाने ही उसके मुंह से निकला, "अपनी सास को" और वहां एकत्रित सभी युवतियां जोर से हंस पड़ीं। रूक्मिणी अब वहां खड़ी न रह सकी। वह सिर झुकाये हुए उनके पास से निकलकर तेज-तेज चलने लगी। छाती में पहले से भी ज्यादा दर्द होने लगा। मन में उमड़ती हुई वेदना और आंखों में उमड़ते हुए आंसुओं को रोकने के लिए उसे बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ रहा था।

म्लेच्छ

अबै

उस समय उस स्थान पर खड़े हुए शांबु ने यह अनुभव किया कि वह शहर से दूर स्थित एक बस्ती में रहने वाली एक ऐसी नीच जाति का प्राणी है, जो दूसरों के स्पर्श के भी योग्य नहीं।

उसके चारों ओर लोग खड़े बातचीत कर रहे थे। उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी कि वह उनकी बातों में शामिल नहीं हो रहा है। उनकी दृष्टि में उसका महत्व शायद वहां पड़ी हुई एक कुर्सी से अधिक नहीं था। सुबह नाश्ते के समय सविता ने इस बात की चर्चा की थी कि उसके और उसके माता-पिता के बीच किन-किन बातों को लेकर मतभेद है।

"उनकी इच्छा है कि मैं किसी बड़े बिजनस एक्जीक्यूटिव से शादी करूं। मैं ऐसा नहीं चाहती। मैं चाहती हूं कि मैं सोच-समझकर ही किसी से प्यार करूं और वह आदमी ऐसा हो जो दूसरों का दुख बांटने के लिए सदा आतुर रहे।"

उसे न जाने क्यों अपनी छोटी बहिन इंदु की याद आयी—"सविता, तुझे अपना जीवन-साथी चुनने का अधिकार मिला है। तेरे पिता नामी व्यापारी हैं। किसी बुद्धिजीवी की चाह करने का अधिकार भी तुझ जैसे लोगों को ही मिला है। लेकिन इंदु ? सुबह उठकर मां से हजार गालियां सुनते हुए काम करती रहती। अपने हाथों धोकर, कलफ लगाकर तैयार की गयी एक साड़ी पहन, अपने छोटे से टिफिन-बॉक्स में दोपहर का नाश्ता लेकर वह बस पकड़ने दौड़ पड़ती। बस में जो भी व्यक्ति उसे सबसे पहले जगह देता, वही उसका ध्यान आकृष्ट कर लेता। उसके चेहरे पर मुस्कान की रेखा खेलने लगती। उसे प्रसन्न करने के लिए एक पुरुष का चेहरा ही काफी था। उसका मन तार्किक रीति से काम नहीं करता। वह कोरी भावनाओं से निर्मित एक नारी-मूर्ति है। त्याग, ममता, पवित्रता, देशभक्ति, स्नेह, प्रेम आदि शब्द उसकी हृदयतंत्री के तारों को झंकृत कर देते हैं। यदि उससे विवाह के बारे में बातचीत करके वर-रूप में किसी व्यक्ति का चुनाव करने को कहा जाय तो वह घबरा जायगी। यह एक ऐसा अधिकार है जो युग-युगों से उसके वर्ग के लोगों को नहीं मिला और न ही वे लोग इसके अभ्यस्त हैं। यदि वह किसी से प्रेम करेगी तो केवल इसीलिए कि

वह उसे सिनेमा दिखाने ले जायगा, साड़ियां खरीद देगा और उसे बिना मारे-पीटे प्यार से रखेगा (उसके पिता की कोड़ों की मार की क्षतिपूर्ति के रूप में)। विवाह करके संतान को जन्म देने और सिनेमा देखने की तृप्ति में तथा भक्तिपूर्वक पर्व-त्यौहार मनाने में ही वह अपना जीवन बिता लेगी। वह कभी नहीं जान पायेगी कि उसे किन बातों से वंचित रखा गया है। यही उसकी तृप्ति का कारण है। जब वह सब कुछ जान लेगी, तभी समस्याएं उत्पन्न होंगी।"

"आज मदरासी बाबू गहन सोच-विचार में पड़े हैं" सविता ने अंग्रेजी में कहा और हंसने लगी। शांबु भी मुस्करा पड़ा।

उसने अंग्रेजी में पूछा, "शांबु, किसी विचारधारा से बंधे बुद्धिजीवी के बारे में तुम्हारा क्या विचार है ?"

उत्तर में उसने कहा, "मैं भी तो एक विचारधारा से बंधा हुआ बुद्धिजीवी हूं। मेरे बारे में तुम क्या सोचती हो ?"

वह जोर से हंस पड़ी।

फिर बोली, "मजाक अच्छा है !"

उसने पूछा, "क्यों ?"

होठों को दबाकर हंसती हुई वह बोली, "तुम्हारा क्या विचार है ?"

उसने तपाक् से उत्तर दिया, "तुम्हारे जैसी एक बुद्धिजीवी लड़की से विवाह करना।"

उसकी बात सुनकर वह घबरायी नहीं। दिन में कम से कम दस बार उससे विवाह करने की इच्छा व्यक्त करनेवाले अनेक युवक उसके मित्र हैं। हां, शांबु की बातों ने उसे विस्मित अवश्य कर दिया।

उसने पूछा, "क्या आज सुबह-सुबह ही तुमने पी ली है ?"

शांबु मेज के पास से उठ गया।

मद्रास की सड़कों पर विचरण करनेवाले मनुष्यों से ऊबकर, घुटन उत्पन्न करने वाले उनके विचारों का तिरस्कार कर वह दिल्ली आ पहुंचा था। मद्रास में रहते हुए वह एक दिन प्रातःकाल, एम. ए. की परीक्षा समाप्त हो जाने के कारण बिल्कुल निश्चिंत होकर, टहलने के लिए निकल पड़ा। उसने अनुभव किया कि प्रातःकाल की उस बेला में अपने घर के बाहर अल्पना बनाती, साथ ही पैनी दृष्टि से उसे छेदती हुई संध्या (प्रेम में विश्वास करनेवाली मूर्ख लड़की), जवान हो गयी अपनी पोती का ध्यान कर उसे तनिक गौर से देखते हुए सामने के मकानवाले बाबा जी, युग-युग से उसे उधार में सिगरेट देनेवाले उस छोटी-सी दुकान के मालिक नायर, सड़क के दूसरे छोर पर खड़ी सभी लोगों द्वारा निःसंकोच स्वीकार की जानेवाली, मिट्टी में लोटने वाली, कीचड़ से सनी, बाल्टी भर-भर पेशाब करनेवाली गाय-भैंसें, जगह-जगह घूमती हुई, कभी संकरी तो कभी चौड़ी होती हुई, तरह-तरह की अल्पनाओं से सजी हुई वह

सड़क—सबका रूप कुछ और ही हो गया है। उसे लगा कि अचानक किसी विशालकाय हाथ ने उसे उठाकर वहां ला खड़ा किया है। वह वस्तुतः शांबमूर्ति नहीं है। उसने कालीकट पहुंचे वास्को-डि-गामा की तरह एक म्लेच्छ की दृष्टि से उस सड़क का निरीक्षण किया। उसकी सांस घुटने लगी।

उसे लगा कि वह स्थान उसके योग्य नहीं है।

उसने बाराखंबा रोड पर खड़े पेड़ों की छाया में, इंडिया गेट के चारों ओर फैले हरे-भरे मैदानों में पी-एच. डी. की उपाधि के लिए अध्ययन करते हुए बुद्धिजीवियों के चिंतन में अपने को लीन कर देने का प्रयत्न किया।

अचानक मणी ने उससे पूछा, "अरे शांबु, तू आज आ रहा है न ?"

"कहां ?"

"आज स्ट्राइक है। कैंपस पहुंचना है।"

"स्ट्राइक, किसलिए ?"

"बढ़ती हुई महंगाई का विरोध करने के लिए।"

"तू जानता है, कि चावल आज किस भाव बिक रहा है ? अरे ! तुझे तो तभी कष्ट होगा न जब बीयर का भाव बढ़ जायगा ?"

"देख शांबु, तुझसे बातें करने का मेरे पास समय नहीं है। मैं बहुत व्यस्त हूं। तू आयेगा कि नहीं ?"

"आऊंगा।"

"महंगाई दूर करो।"

"इंदिरा गांधी का सत्यानाश हो।"

"माताजी मुर्दाबाद।"

"डाउन विथ ब्लैक-मार्केटियर्स एंड होर्डर्स।"

"शांबु को देख। कितने आक्रोश से चिल्ला रहा है।"

"ऐसे ही अवसरों पर किसी व्यक्ति की मूर्खता उभरकर सामने आती है। वह भी उस भीड़ का एक अंग बन गया है न ?"

शांबु पास आया।

"सुबह तूने क्या खाया था ?"

"क्यों मजाक कर रहा है ?"

"बता न।"

"अंडा, जैम टोस्ट, कॉफी, केला।"

"क्या तूने मूंग की दाल के सूप का नाम सुना है ?"

"क्यों ?"

"हमारे यहां सुबह-सुबह वही पिया जाता है। तेरी छोटी बहिन, जो मिरांडा हाउस में पढ़ती है, वह क्या मिट्टी के तेल की लाइन का मतलब समझती है ? क्या वह

जानती है कि उस लाइन में खड़े होने का अनुभव कैसा होता है ?"

"शांबु, तेरा कहना गलत है। किसी भी विषय पर अपना विरोध प्रकट करने के लिए संघर्ष करते हुए किसी व्यक्ति को देखकर उसकी भावनाओं को समझ लेना ही हमारे लिए पर्याप्त है। यह आवश्यक नहीं कि मैं उन सभी बातों का अनुभव स्वयं करूं। कैंसर का ऑपरेशन करनेवाले डॉक्टर के लिए इतना पर्याप्त है कि वह रोगी को देखकर उसकी पीड़ा को समझ ले। उसे स्वयं कैंसर से पीड़ित होने की आवश्यकता नहीं है।"

"यह कोई रोग नहीं है।"

"यह भी एक प्रकार का रोग है। समाज को पीड़ित करनेवाला रोग।"

"चलो ऐसा ही सही। मैंने उसका अनुभव किया है।"

"अपने छोटे भाई को सोते समय कहानी सुनाते हुए जब मैं कहता हूं कि रामराज्य में सर्वत्र दूध और शहद की नदियां बहेंगी, घर-घर में रत्न बिखरे हुए दिखाई देंगे, तब वह तुरंत मुझे प्रश्न करता है कि क्या रामराज्य में मिट्टी का तेल भी काफी मात्रा में मिलेगा ? मैं भली प्रकार समझता हूं कि कौन-सी पृष्ठभूमि में उसके मन में यह प्रश्न जागता है। मां जैसे ही चावल के बर्तन में कड़छी डालती है, मेरी सबसे छोटी बहिन बड़ी चतुराई से बोल उठती है, 'मां मुझे भूख नहीं है; बस एक कड़छी चावल परोसना।' उस समय चावल का भाव जैसे मेरे मन को मथने लगता है।"

उनकी बातों को सुनती हुई पास खड़ी सविता जोर से हंस पड़ी।

शाम तक नारेबाजी बंद हो गयी।

फिर से हॉस्टल की ओर लौटते समय आरती बैनर्जी भी उसके साथ थी। उसने धीमे स्वर में अंग्रेजी में कहा, "मैं आपके विचारों से पूरी तरह सहमत हूं। आपने जिन अनुभवों का वर्णन किया है, वे सब हम लोगों के लिए नये नहीं है।"

"यदि तू पी-एच. डी. न करके नौकरी करती तो तेरे घरवालों को फायदा होता, है न ?"

वह मुस्करा दी।

"हां, किंतु मेरे स्वप्न मुझे यहां तक ले आये।"

"किस तरह के स्वप्न ?"

"तीन साल में पी-एच. डी. पूरी हो जायगी। फिर अच्छी सी नौकरी मिलेगी। शायद मेरे जीवन की कठिनाइयां दूर करने के लिए मुझे एक धनवान पति मिल जायगा। किंतु वास्तविक जीवन में कुछ और ही हुआ। मुझे लगता है कि पी-एच. डी. समाप्त होने पर प्रौढ़ावस्था, एक अप्रिय नौकरी और चिरकुमारी की उपाधि ही मेरे हाथ लगेगी।"

"क्या ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जिसे तू चाहती हो ?"

उसने उसकी ओर मुड़कर देखा और हंसने लगी। फिर तपाक् से बोली, "मेरे

पास कुल पांच ही साड़ियां हैं।"

"समझा नहीं।"

"ओबरॉय होटल जाकर कॉफी पीने अथवा अकबर होटल जाकर खाना खाने के लिए जिस तरह की साड़ियां पहनने की जरूरत होती है, उस तरह की साड़ियां मेरे पास नहीं हैं। बड़े होटलों के भीतर जाते ही मेरी आंखें खुली की खुली रह जाती हैं और बोलती बंद हो जाती है। तीन सौ रुपयों की छात्रवृत्ति में से सौ रुपये घर भेज देती हूं। यदि किसी के साथ बाहर जाऊं तो औपचारिकतावश भी मैं यह नहीं कह सकती कि 'बिल के पैसे मैं दूंगी।' इस मनःस्थिति में किसी भी व्यक्ति के प्रति मेरे मन में जागनेवाले मधुर भाव को प्रेम की संज्ञा नहीं दी जा सकती। वह तो योजनाबद्ध रूप से अपनी भलाई के विचार से व्यावहारिक जीवन में किया जाने वाला एक व्यापार-मात्र है। हमारी जीवन-पद्धति में तो 'प्रेम' शब्द का भी कोई स्थान नहीं है। इस पर तो कुछ विशिष्ट लोगों का स्वत्वाधिकार है।"

"हूं।"

"एक मिनट" कहकर वह दूर चली गयी।

"अरे शांबु आरती से संभल कर रहना। वह एक पति की खोज में है। उसके जाल में मत फंस जाना।"

पीछे से आरती के खंखारने की आवाज आयी।

"आरती, मैंने कुछ नहीं कहा... ।"

"कोई बात नहीं गोविंद। मैंने सुना है कि दिल्ली की दुर्गंधभरी गलियों में यदि साड़ी पहने कोई लेंपपोस्ट भी दिखाई दे तो तू उसके पीछे चलने को तैयार हो जाता है। मेरी स्थिति तुझसे अच्छी है न ?"

गोविंद पर जैसे जोर की मार पड़ी हो।

इसके बाद वे सब चुपचाप चलने लगे।

हॉस्टल पहुंचने पर इंदु का पत्र मिला।

"भैया ! उन्होंने हीरे के टॉप्स मांगे, तो पिताजी ने देने से साफ इनकार कर दिया। भैया, तुम्हारी पी-एच. डी. हो जाय तो हमें इस तरह की कोई कठिनाई नहीं होगी। तू प्रोफेसर बन जायगा। भैया ! तू मन लगाकर पढ़ाई करना। मुझे दफ्तर में बहुत काम करना पड़ता है। नये अफसर बहुत सारा डिक्टेशन देते हैं। हम सब 'कल, आज और कल' पिक्चर देखने गये थे। मुझे बहुत अच्छी लगी।"

इंदु, अरी इंदु ! तेरी दुनिया मुझसे कितनी अलग है ?

पी-एच. डी. पूरी होने पर मैं प्रोफेसर बन जाऊंगा ? मेरी यह पी-एच. डी. कब पूरी होगी ? प्रोफेसर साहब की कृपा के बिना क्या कोई पी-एच. डी. की उपाधि पा सकता है ? वे जीनियस हैं। यही सबसे बड़ी कठिनाई है। उनके निरीक्षण में कोई दस साल से पहले पी-एच. डी. की उपाधि नहीं पा सकता। अपने शोधकार्य के बारे

में उनसे बातचीत करने जाओ तो वे बड़े सुंदर ढंग से रेलवे स्ट्राइक के बारे में कुछ कहेंगे। जॉन वेन्न की सेक्सी आवाज के बारे में टिप्पणी करेंगे। कहेंगे कि जेरॉल्ड फोर्ड बेकार का आदमी है। इतिहास की जिन घटनाओं को कोई याद नहीं रख सकता, उन्हें दोहराकर मजाक करेंगे। इस तरह डेढ़ घंटा बीत जायेगा।

"सर, मेरा चैप्टर..."

"कैसा चैप्टर ?"

"सर, तीसरा चैप्टर।"

"घर पर दिया था या दफ्तर में ?"

"घर पर दिया था।"

"उसकी दूसरी प्रति है ?"

"हां है, सर।"

"कल मेरे पास ले आना। देख लेंगे।"

"सर, मुझे माफ कर दीजिए।"

"इंदु, दो साल से यही कुछ हो रहा है। ये बातें तुम लोगों की समझ में कहां आयेंगी ?"

देशपांडे ने पूछा, "क्यों शांबु, किसी का प्रेमपत्र है क्या ?"

"नहीं देशपांडे।"

"क्या घरवाले शादी के लिए तुझ पर जोर डाल रहे हैं ?"

शांबु ने हंसते हुए कहा, "ऊं हुं।"

"तो फिर आज हो जाय ?"

"नहीं देशपांडे।"

"अरे मदरासी तू निरा मूर्ख है। तू जीवन का रस लेना नहीं जानता।"

"कोई बात नहीं।"

"तुझमें हिम्मत नहीं है। तू एक पेग पी ले तो तुझे शहरी मान लूंगा।"

"मुझे चुनौती मत दे।"

"तू सिर्फ बातें बनाना जानता है। क्या अम्मा डांटेगी ?"

"अच्छा, आज हो ही जाय।"

शाम को देशपांडे के कमरे में पांच-छः लोग इकट्ठे हो गये। गरमागरम कोई चीज गले से नीचे उतरी। थोड़ी देर में उसकी गर्मी सारे शरीर में फैल गयी। वे लोग सिक्किम के बारे में बातें कर रहे थे।

उसने अनुभव किया कि अचानक उसमें हाथी की सी शक्ति आ गयी है। कभी उसे लगता है कि वह तिरछी टोपी लगाये नेपोलियन बन गया है, तो कभी लगता है कि बुरुशनुमा मूछोंवाला हिटलर बनकर यहूदियों के दलों का विनाश कर रहा है। कभी उसे लगता है कि वह धोती-कुर्ताधारी अण्णादुरै बनकर किसी सभा में भाषण

दे रहा है। कभी अपने आप को शिवाजी गणेशन की शक्ल-सूरत वाला राजराज चोल समझकर अपनी छाती पीटने की बलवती इच्छा उसके मन में जागती। उसने अनुभव किया कि दिल्ली का यह वातावरण जिससे जुड़ जाना कठिन है, बराबर टाइप करते हुए बीच-बीच में अपनी उंगलियां चटखाती इंदु, बर्तन के तले में चिपके भात को बिना किसी आवाज के कड़छी से खुरचकर निकालती हुई अम्मा–सब लुप्त हो गये हैं। वह एक विशालकाय रूप धारण कर उन सबको उड़ा ले गया है और स्वयं बड़ा आदमी बन गया है।

उसने जोर से कहा, "हमें सिक्किम पर आक्रमण करना चाहिए।"

मणी ने पूछा, "क्यों शांबु, बहुत ज्यादा चढ़ गयी है क्या ?"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।"

"जरा संभल कर रहो। एक ही बार में ज्यादा मत पीयो। धीरे-धीरे पीयो।"

"नॉनसेंस। मैं बिल्कुल ठीक हूं। सविता नहीं आयी ?"

"सविता यहां क्यों आयेगी ?"

"यहां क्यों नहीं आ सकती ? मैं ही वह जोशीला जवान हूं, जिसे वह खोज रही है। मैं मध्यवर्ग का हूं, क्या इसीलिए वह मुझसे प्यार नहीं कर सकती ? मैं एक जोशीला जवान हूं।"

सिक्किम विषयक चर्चा समाप्त हो गयी थी।

शांबु बोलता जा रहा था।

"मुझे सविता अच्छी लगती है, लेकिन यह दुनिया बड़ी विचित्र है। इस दुनिया को राजनीति, शोध, विदेशों से हमारे संबंध आदि के बारे में बातचीत करने में कोई दिलचस्पी नहीं है। देशपांडे, मैं वह चूहा हूं, जो छेद बनाकर यहां प्रविष्ट हुआ है। मैं यहां के किसी भी व्यक्ति की तरह नहीं हूं। मैं वह चूहा हूं जिसे सब भगाते हैं। बिल्लियों की दुनिया में फंसा हुआ चूहा। सविता का सामीप्य न पा सकनेवाला चूहा। मैं उस दुनिया का भी नहीं हूं, जिसमें मेरी छोटी बहिन इंदु रहती है। अल्पना, मंदिर का गोपुरम्, साड़ी, सिनेमा, सतीत्व, पति, मां, बाप–इन सबके लिए मैं पराया हो गया हूं। वे कहां हैं ?" कहकर वह उठ खड़ा हुआ और पैर पटकता हुआ कमरे में चारों तरफ दौड़ने लगा, मानो कुछ ढूंढ रहा हो।

"अरे, तू ढूंढ़ क्या रहा है ?"

"अपनी जड़ों को, अपनी जड़ों को" अंग्रेजी में इतना कहकर शांबु रोने लगा।

अचानक वह खड़ा हो गया और, "मेरे लिए कहीं जगह नहीं है" कहकर दौड़ने लगा। फिर लड़खड़ाकर धरती पर गिर पड़ा। पूरा कमरा उलटी की दुर्गंध से भर गया।

"देशपांडे, यह सब तेरी गलती का परिणाम है। सारी शाम स्पाइल कर दी।"

"अरे, यह तो उठने का नाम ही नहीं ले रहा ?"

"सारा चेहरा पीला पड़ गया है।"

"हे ईश्वर ! जल्दी से टैक्सी ले आ। फुर्ती से विलिंगटन हॉस्पिटल पहुंचते हैं।"

आंखें खोलने पर उसे देशपांडे का चेहरा दिखायी दिया।

"आइ एम सॉरी।"

"कोई बात नहीं ! तूने कितने पेग पिये ?"

"नौ।"

"हे ईश्वर !"

"देशपांडे, मुझे उतने पेग पीने की जरूरत थी। देशपांडे, मैं इस जगह रहने लायक नहीं। सात साल तक पी-एच. डी. करने की मेरी हैसियत नहीं है। मेरी बहिन कुंआरी रहकर तड़पती रहेगी। मेरी मां की बड़ी दुर्दशा होगी। बुद्धिजीवी बनना भी मेरे लिए एक दिखावा मात्र है। उस क्षेत्र में भी मैं एक अजनबी हूं, किंतु फिर भी वहां मेरी आवश्यकता है।"

"शांबु थोड़ा आराम कर लो।"

सिर घुमाने पर उसे आरती आती हुई दिखायी दी।

देशपांडे उठ खड़ा हुआ। आरती को देखकर औपचारिक ढंग से मुस्कुराकर वह वहां से चला गया।

"शांबु यह क्या हुआ ? आपने ऐसा क्यों किया ?"

उसकी आंखों में आंसू आ गये।

"आरती, मैं अपने आपको बहुत अकेला अनुभव कर रहा हूं।"

"हूं।"

"मैं इस बात को नहीं सह सका।"

"हूं।"

"क्या तूने भी कभी ऐसा अनुभव किया है ?"

अपने हैंडबेग की तरफ देखते हुए आरती बोली, "हां, किया है। मेरा अनुभव इससे तीखा है। आप चाहें तो लौटकर घर आ सकते हैं। वहां आपको सबसे बड़ा बेटा होने का गौरव मिलेगा। मैं लौटकर घर नहीं जा सकती। मेरा परिवार मेरे बिना ही जीने का अभ्यस्त हो चुका है। जब-जब मैं वहां जाती हूं, अपने आपको पराया-सा अनुभव करती हूं। उनकी दृष्टि में मेरे जीवन में कोई समस्या नहीं है। मैं उनके विचारों को बदलना नहीं चाहती। मैं अपनी परिस्थितियों से समझौता कर चुकी हूं। कारण, मैंने दो सत्यों को जान लिया है। पहला, सबको नौकरी करके ही जीना चाहिए–इस सामाजिक चेतना से उत्पन्न ज्ञान और दूसरा, यह अनुभव कि हम सब किसी न किसी दृष्टि से अकेले हैं।"

"मैं सविता को चाहता हूं।"

आरती ने मुस्कुराते हुए कहा, "मैं जानती हूं।"

“क्या तू मुझे पागल समझती है ?”

“ऊं हूं, आप सचाई की ओर नहीं देखते।”

“मैं समझा नहीं।”

“आप सविता को इसलिए चाहते हैं, क्योंकि आपके मन में यह हीन भावना है कि आप मध्यवर्ग के हैं। उस वर्ग की भावनाओं से मुक्त होने की तीव्र इच्छा से ही आप ऐसा कर रहे हैं। यह भावना अपनी परिस्थितियों से बच निकलने का एक प्रयास मात्र है। सीढ़ी पर चढ़कर आप जिस वर्ग का उपहास करते हैं, उसी वर्ग की ओर झांककर देखते भी हैं। नीचे भी आपके लिए कोई जगह नहीं है और ऊपर भी आपके लिए कोई जगह नहीं होगी।”

“नाराज मत हो। यह बताओ कि क्या तुम मुझे चाहती हो ?”

वह उसे देखकर हंसने लगी।

“जैसा कि दूसरे लोग सोचते हैं, मैं सचमुच एक पति की खोज में नहीं भटक रही हूं। मुझ जैसे व्यक्ति भी सच्चे प्यार का प्रदर्शन कर सकते हैं।”

“आइ एम सॉरी।”

“कोई बात नहीं,” कहकर वह उठ गयी।

उसके जाने के बाद बहुत देर तक हृदय में उठती नाना भावनाओं की हलचल उसे बेचैन करती रही। जड़ों से रहित मैं कौन हूं ? मैं अपने आपको किस तरह के अनुभववाले व्यक्तियों से जोड़ सकता हूं ?

शोधकार्य करने के लिए न उसके पास समय है और न ही पैसा। वह एक दीर्घकालीन योजना है। वह एक ऐसा भोग्य पदार्थ है जो उस जैसे व्यक्तियों के पास नहीं है; समय की उपेक्षा करनेवाला एक दृष्टिकोण मात्र है। उसे या तो समय के साथ संघर्ष कर उसके सम्मुख नतमस्तक होना पड़ेगा, अन्यथा इंदु का जीवन नष्ट हो जायेगा, छोटे भाई का भविष्य अंधकारमय हो जायेगा। वह जान गया कि वह कहीं भी प्रविष्ट होकर जिस किसी तरह जीनेवाले चूहों में से है, किंतु इस स्थिति को वह स्वीकार नहीं कर सका। उसने अनुभव किया कि वह एक ऐसा चूहा है जो कूड़ेदान पर पड़ा-पड़ा मर गया है और एक कौवा अपनी चोंच से उसके पेट का मांस नोच रहा है। वह औरों से हटकर कुछ भी नहीं कर सकता। यह एक ऐसा अधिकार है, जिससे उसे वंचित रखा गया है। वह चाहे तो सामने के मकान में रहनेवाली संध्या से विवाह कर सकता है। एक अच्छे पति के रूप में उसके साथ सो सकता है। उस पर अधिकार जमा सकता है। बच्चे पैदा कर सकता है। धन के अभाव में पीड़ित हो सकता है। नौकरी से रिटायर हो सकता है, मर सकता है। कूड़ेदान पर मरे पड़े चूहे की तरह ये ही उसके लिए निर्धारित सीमाएं हैं।

सीमाएं, सीमाएं, सीमाएं।

अस्पताल का पलंग, उस पर लेटा वह, गोपाल अय्यर का पुत्र शांबमूर्ति। वह

स्वयं अपनी दृष्टि में एक अजनबी बन गया था।

वह लौटकर जायगा। अल्पनाओं के पास से होकर, भैंसों के समूह को पार करता हुआ दूसरी गली में जायेगा। किंतु वह स्थान उसके लिए नहीं है। उस गली की धूल, बस पकड़ने के लिए उस पर दौड़ती इंदु, साइकिल पर जाते पिताजी, किताबों से भरा थैला लादे छोटा भाई–सभी चूहे हैं, बिल बनाने के लिए दौड़ते चूहे। सीमाओं से बंधे हुए, उसी के भीतर दौड़ते रहने वाले चूहे !

उसने अनुभव किया कि हजारों चूहे, उसके परिवर्तित रूप को देखकर, उसे अपने पैने दांतों से खरोंच रहे हैं, अपनी दुमों से प्रहार करके उस पर आक्रमण कर रहे हैं। उसे यह भी लगा कि अचानक करोड़ों बिल्लियों ने चूहे के रूप में पड़े उसे अपने नाखूनों से चीरकर अपने मुंह में ठूंस लिया है।

शांबु जोर से चीख उठा।...

परछाइयां

आदवन

परस्पर एक दूसरे से बिछुड़ने का समय भी आ गया और स्थान भी।

उसके हॉस्टल का गेट। लोहे की सलाखों से बना ऊंचा सा गेट। उस गेट के पास खड़े वे दोनों कितने छोटे और महत्वहीन से प्रतीत हो रहे थे। हॉस्टल की बाहरी दीवार पर लगी बत्ती की धीमी रोशनी ने गेट की परछाई को बाहर की सड़क पर दूर तक फैला दिया था। आमने-सामने खड़े उन दोनों की परछाइयां एक के ऊपर एक करके उस गेट की परछाई पर पड़ती हुई सड़क पर बिछी हुई थीं।

वह बोला, "हमारी परछाइयां एक दूसरे का आलिंगन कर रही हैं।"

उसने उस ओर देखा, जिस ओर वह देख रहा था। फिर परछाइयों पर गौर किया। वह मुस्कुराने लगी। उसकी मुस्कुराहट मानो कह रही थी कि उसने उसके शब्दों के अर्थ पर कोई ध्यान नहीं दिया है। उसकी मुस्कान उसके मन के किसी भाव को प्रकट नहीं कर रही थी। परछाई आलिंगन करती है, किंतु मुस्कुराती नहीं। वह मुस्कुराती है किंतु–

वह बोला, "आज यहां बड़ी उमस है न ?"

"हूं।"

"इस धूल ने भी मेरी नाक में दम कर रखा है। आजकल मैं शाम को भी एक बार नहा लेता हूं। तू ?"

"हां, मैं भी।"

"तुझे नहाने में कितनी देर लगती है ?"

'पौने सोलह मिनट।"

"बहुत देर लगाती है। मुझे तो पांच मिनट भी नहीं लगते।"

"गुसलखाने में जाते ही मैं एकदम नहाना शुरू नहीं करती। थोड़ी देर तक बाल्टी में रखे पानी को हाथों से हिलाते हुए, कुछ सोचते हुए बैठी रहती हूं। पैर की हर उंगली के नाखून पर बूंद-बूंद करके पानी डालती हूं। अपने बालों का एक गुच्छा सा बनाकर, बुरुश की तरह उसे पानी में भिगोकर उससे अपने हाथ-पैरों को सहलाती हूं। लोटे को उलटा करके उसे पानी में दबा देती हूं। पानी के भीतर ही उसे सीधा

करने पर उसमें से 'पम्बुम् पम्बुम्' की जो आवाज आती है, उसे सुनती हूं।"

"हाय ! यदि मैं वह लोटा होता तो कितना अच्छा होता !"

"क्या आप यह कह रहे हैं कि मैं आपसे बातचीत नहीं करती ?"

"तुम्हारे साथ अकेले... ।"

"डोंट बी वल्गर।"

उसके स्वर में डांट का भाव था। उसकी उस डांट ने उसे संतुष्टि भी दी और प्रसन्नता भी। प्रसन्नता इसलिए कि वह उसके कवच को भेद सका था और उसने अपनी भावनाओं को उसके हृदय तक पहुंचाकर स्वयं को डांटने के लिए उसे विवश कर दिया था।

उसने पूछा, "क्या मैं वल्गर टाइप का आदमी नहीं ?"

"ऊं हुं, आप बहुत भले हैं।" कहकर उसने स्थिति को संभाल लिया। कुछ रुककर वह बोली, "इसी से मैं चाहती हूं कि आप भले आदमी ही बने रहें।"

"मुझे भला आदमी बने रहना पसंद नहीं। कभी-कभी कुछ वल्गर हो जाना ही मुझे अच्छा लगता है।"

"क्या आप चाहते हैं कि मैं भी आप ही की तरह हो जाऊं ?"

"हां, कभी-कभी–एक सीमा तक।"

"क्यों ?"

"माइ गॉड ! तुम्हारा अगला प्रश्न शायद यह होगा कि मैं तुमसे क्यों प्रेम करता हूं।"

"क्या इसी बात के लिए प्रेम करते हो ? क्या यही तुम्हारा लक्ष्य है ?"

"कौन सा लक्ष्य ?"

वह कुछ नहीं बोली। परछाइयों को देखने लगी। परस्पर एक दूसरे से लिपटी हुई, एक दूसरे में डूबी हुई परछाइयां।

उसने पूछा, "लोग प्रेम क्यों करते हैं ?"

"हम इस समय दूसरे लोगों के बारे में बातें नहीं कर रहे हैं।"

"अच्छा, तो यह बता कि तू क्यों प्रेम करती है ?"

"यह रुदन और हंसी के समान मेरे भीतर से स्वाभाविक रूप से और अनजाने ही फूट पड़नेवाली एक भावना है। मैं इसके विषय में कुछ नहीं जानती।"

"आइ सी !"

"रुदन और हंसी से यह भावना इस अर्थ में भिन्न है कि यह किसी विशिष्ट अवसर पर किसी विशिष्ट व्यक्ति के प्रति ही अभिव्यक्त होती है।"

"आहा, मैं कितना सौभाग्यशाली हूं।"

"किंतु आप धैर्यवान नहीं।"

"ऐसी बात है ?"

"हां।"

"मेरी मां भी ऐसा ही कहा करती थी। वह जो कुछ बनाती थी, मैं बर्तन में से ही निकालकर खा लेता था। कड़छी-थाली लाना, थोड़ा-थोड़ा करके परोसना, और पाने के लिए प्रतीक्षा करना–ये सभी बातें मुझे मेरे धैर्य की परीक्षा करती सी जान पड़ती थीं।"

उसके चेहरे पर मुस्कुराहट दिखायी दी। "मुझे देखकर मां की याद आ रही है ?"

"स्त्रियां आखिर स्त्रियां ही होती हैं।"

"वे हमेशा पुरुषों के धैर्य की परीक्षा लेती रहती हैं, हैं न ?"

"बिल्कुल।"

"फिर भी उनकी बातों को हमेशा सहते रहना पड़ता है।"

"यह हमारा दुर्भाग्य है।"

"हाय, बे...चारा !" कहकर उसने उसके कंधों को थपथपाया, प्रेम से उन्हें सहलाया। उसके कोमल मधुर स्पर्श ने जैसे उसके संयम का बांध तोड़ दिया। उसके भीतर ठोस रूप में जमी हुई कोई भावना अचानक पिघलने लगी; तेजी से बाहर निकलने की चेष्टा करने लगी। उसने झट से उसका हाथ पकड़ लिया। चेहरे पर झलकती उत्तेजना और मस्ती को देखकर लगता था कि वह अगले ही क्षण उसे अपने भुजपाश में बांध लेगा।

उसने बड़े शांत भाव से, कोमल और मधुर स्वर में कहा, "प्लीज...ऐसा मत कीजिए !" और जैसे-तैसे अपना हाथ छुड़ा लिया। उस क्षण उसने चाहा कि वह उसे जान से मार डाले। पहले आग लगाना, फिर फूंक-फूंककर उसे बुझाना–अच्छा तमाशा है !

उसने उसके चेहरे की ओर देखा। वह जान गयी कि वह गुस्से में है। बड़े प्रेम से उससे विदा लेने की इच्छा से उसके कंधे थपथपाने का ऐसा परिणाम निकला।

उसने धीरे से पूछा, "मुझसे नाराज हो ?"

"बिल्कुल नहीं; मैं बहुत प्रसन्न हूं। ये देख मैं मुस्करा रहा हूं।"

उसने अपने होंठ काट लिये। गिड़गिड़ाते स्वर में बोली, "प्लीज़ ! मेरी स्थिति को समझने की कोशिश कीजिए।"

"यह काम इतना आसान नहीं है, फिर भी मैं अपनी ओर से भरसक कोशिश कर रहा हूं। मुझ पर विश्वास करो।"

"आप जिसे समझना चाहते हैं, केवल उसी को समझते हैं। सारी बातों को अथवा किसी बात को पूरी तरह से नहीं।"

"मैं तुझे पूरी तरह कैसे समझूं ? क्या तूने अपने आपको मेरे प्रति पूरी तरह से समर्पित किया है ?"

वह कुछ नहीं बोली। यह इतना निर्दयी होकर कैसे उसे छेद रहा है ? करुणा और क्रूरता की विभाजक रेखा क्या इतनी महीन होती है ?

अचानक ठंडी हवा चलने लगी जो उनकी परिस्थिति और मनःस्थिति के ठीक विपरीत थी। मेन रोड पर बसों और कारों के चलने और उनके हार्न बजने की आवाजे हवा में तैरती हुई उन तक पहुंचीं। उनके सिर के ठीक ऊपर बैठा एक कौआ असमय उनकी बातों में दखल देने के कारण मानो 'कांव-कांव' कहकर माफी मांगता हुआ वहां से उड़ गया। उसे न तो किसी बस की प्रतीक्षा करनी थी (और न ही किसी 'मिस' की) फिर भी जाने क्यों आज उसे घर लौटने में इतनी देर हो गयी थी।

किंतु उसको बस की प्रतीक्षा करनी होगी। 'गुड नाइट' कहकर हल्की सी मुस्कान बिखेर कर मानो सांत्वना पुरस्कार देती हुई वह हॉस्टल के भीतर चली जायेगी। फिर उसे बस स्टैंड की ओर चलना होगा। अपनी स्मृतियों से जूझते हुए, उनके चंगुल में फंसकर तड़पते हुए, बस की प्रतीक्षा में बस-स्टैंड पर खड़े रहना होगा। दांत पीसते हुए हिम्मत बांधे खड़े रहना होगा। बसों पर उसका कोई विशेष अधिकार नहीं। वह जिस तरह दूसरों से प्रतीक्षा करवाती है, उसी तरह उससे भी प्रतीक्षा करवाये तो कोई हर्ज नहीं। किंतु यह–यह क्यों उससे प्रतीक्षा करवाती है ? हमेशा किसी भी वस्तु को पाने के लिए प्रतीक्षा करते रहना, तड़पते रहना ही जैसे उसकी नियति है। कुछ लोगों को हर वस्तु कितनी आसानी से मिल जाती है !

सड़क पर सामने से एक सफेद कुत्ता दौड़ता हुआ आ रहा है। उसके पीछे-पीछे एक काला कुत्ता भी है। सफेद कुत्ता रुक जाता है। काला कुत्ता उसकी पीठ सूंघता है। इसे देख वह बोला, "कुत्ते कुछ भी करने से पहले सोचते नहीं हैं।"

जिस ओर वह देख रहा था उसी ओर आंखें किये हुए और उसकी चुप्पी पर गौर करते हुए एकाएक वह जोर से हंस पड़ी। उसने सोचा था कि उसके शब्द उसे कंपा देंगे अथवा पीड़ित करेंगे, किंतु अपनी आशा के विरुद्ध उसे हंसती देखकर सकपका गया। उसे लगा कि वह स्वयं महामूर्ख है।

उसकी हंसी जिस तरह अचानक शुरू हुई थी उसी तरह अचानक रुक गयी। उसकी चेहरे पर थकावट और निराशा के भाव झलकने लगे। हंसी का कारण सदा कोई सुखद या आनंददायक घटना नहीं होती। वह बोली, "कभी-कभी आप मुझे यह सोचने के लिए विवश कर देते हैं कि मैं एक हृदयहीन राक्षसी हूं।"

"और तू क्या करती है ? मुझे अपने आपको सुंदर एवं कोमल भावनाओं से रहित जंगली व्यक्ति समझने के लिए विवश करती है।"

"एक जंगली व्यक्ति और एक राक्षसी के बीच प्रेम-संबंध" कहकर वह फिर हंसी। हाय राम ! यह तो सभी युक्तियां जानती है। कभी हंसकर धोखा देती है, तो कभी हंसे बिना; कभी बोलकर धोखा देती है, तो कभी बोले बिना।

इसी तरह बातें करते हुए, टालमटोल करते हुए यह सारी रात बिता देगी। प्रातः

होते ही उसे फिर बस स्टैंड की ओर चल देना होगा–इस नरक वेदना से बचने के लिए अभी चले जाना ही ठीक रहेगा। मिन्नतें करना, तर्क-वितर्क करना, छेदना–छिः क्या रखा है इनमें ! उसकी इच्छा हुई कि वह जल्दी से जाकर बिस्तर पर पड़ जाय। तंग कपड़ों को उतारकर, हाथ-पैरों को पूरी तरह फैलाये, लेटकर अपनी थकान मिटाये। यह सब चाहे जैसे समाप्त हो जाय। वह चाहे जिस परिस्थिति में स्वेच्छा से चाहे जैसा आचरण करे। कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं भी वास्तव में यह सब नहीं चाहता ? जब इसने उसे अपनी मर्यादा का प्रश्न बना लिया, तो शायद मैंने भी उसे अपनी मर्यादा का प्रश्न बना लिया हो।

"अच्छा, लगता है कि अब मुझे चल देना चाहिए।" कहकर वह मुस्कुराकर चलने के लिए तैयार हुआ। "गुड नाइट–विश यू हैप्पी ड्रीम्स–कम से कम सपनों में तो तुम नखरे नहीं करोगी न ?"

"क्या आप मेरे सपनों में आयेंगे ?"

"मुझे लगता है कि मुझे सपनों में ही आना पड़ेगा।"

वह हंसने लगी। उसने हाथ ऊंचा करके 'क्लिक' कहकर मानो उसकी तस्वीर खींचने का अभिनय किया फिर बोला, "थैंक यू मैडम ! तस्वीरें कल मिल जायेंगी।"

"शाम को ?"

"हां, शाम को।'

"कहां ?"

"मैडम, मैं स्वयं आपके यहां पहुंचा दूंगा।"

"अच्छा, धन्यवाद।"

"इट्स ए प्लेजर।" कहकर उसने झुककर उसे सलाम किया। फिर बोला, "मेरे योग्य कोई सेवा ?"

"आपको याद रखने के लिए क्या आप मुझे कुछ भी नहीं देंगे ?"

"अच्छा !" कहकर उसने अपनी जेबें टटोलने का अभिनय किया फिर बोला, "ओ हो ! अपना विजिटिंग कार्ड लाना तो भूल ही गया।"

"और कोई चीज दे दीजिए।"

"कुछ भी दे दूं ?"

"हां," कहकर वह उसके पास आ खड़ी हुई और अपना चेहरा उसकी ओर फेरते हुए बोली, "आई मीन इट।" उसने उसकी चमकती हुई आंखों को देखा। शैतानी से अपनी ओर झुके हुए चेहरे को देखा। छोटे-छोटे होठों को देखा–इसके होंठ कितने छोटे हैं। उसकी मां के होठ भी छोटे हैं। जब वह छोटा था तब उसकी मां उसके पास आकर अपना चेहरा उसकी ओर बढ़ाकर कहती थी, "राजा बेटे, अम्मा को पुच्ची दे दे।"

आज जो उसके पास खड़ी है, वह भी एक दिन मां बनेगी; मां बनने योग्य है।

एक छोटी-सी मां ! अपने जंगलीपन को भूलकर अचानक उसने बड़े प्रेम से उसका बायां हाथ पकड़ा और उसे अपने मुंह के पास ले जाकर उसकी उंगलियों पर हल्के से अपना चुंबन अंकित किया।

वह बोली, "यहां नहीं।"

"फिर कहां ?"

"अरे... ! यह बच्चा तो कुछ भी नहीं जानता।" कहकर सिर हिलाते हुए मानो वह उसे चिढ़ाने लगी। उसकी आंखों से शैतानी टपक रही थी। जब तक खेल उसके द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार चलता रहेगा, तब तक वह खुश रहेगी, संतुष्ट रहेगी। वह जो कुछ मांगेगा उसे वह कदापि नहीं देगी, किंतु वह जो कुछ देगी उसे वह सब बिना विरोध किये स्वीकार कर लेना होगा—अच्छा न्याय है !

अचानक उसे गुस्सा आ गया। वह मजाक और खेल की बातें भूल गया। उसने खेल ही खेल में जो फोटोग्राफर का खोल ओढ़ा हुआ था, वह जाने कहां उड़ गया। चेहरे पर कोमलता के स्थान पर कठोरता का भाव उभर आया। उसने धीमे स्वर में पूछा, "क्या मुझे भीख दे रही हो ?"

उसने चकित और तनिक भयभीत होकर प्रश्न किया, "क्या ?"

"मुझ पर दया करके क्या रेजगारी दे रही हो ?"

उसके चेहरे पर खेलती हुई मुस्कान की रेखा अचानक लुप्त हो गयी। वह मन ही मन पछताने लगा, 'मुझे अपनी बात इतने कठोर शब्दों में शायद नहीं कहनी चाहिए थी।' किंतु मुंह से जो शब्द निकल गये, सो निकल गये, उन्हें वापस नहीं लिया जा सकता। जो क्षण बीत गया सो बीत गया, उसे लौटाया नहीं जा सकता। यदि वह एक क्षण पहले उससे विदा लेकर चल देता तो सब कुछ कितना सुखदायक होता। किंतु अब !

उसकी आंखें जैसे भर आयी थीं, होंठ जैसे कांप रहे थे। क्या वह रोने की तैयारी कर रही है ? उसके मन में सहानुभूति के साथ-साथ विस्मय की भावना भी जागी—'इन लोगों ने अपने पास कितने प्रकार के अस्त्र छिपाकर रखे हैं ?' वह अब दीर्घ निश्वास लेने लगी। छाती एक दो बार जोर से धड़ककर शांत हो गयी। रुदन को रोकने का प्रयास करने के कारण ही शायद उसका सारा शरीर कांपने लगा था। वह व्यंग्य करती हुई, उसे चुनौती सी देती हुई गंभीर स्वर में बोली, "आपको रेजगारी नहीं, नोट चाहिए। अच्छा, ले लीजिए।"

वह लज्जित होकर चुपचाप खड़ा रहा—यही तो वह चाहती है ! उसे लज्जित कर दे। स्वयं को अपराधी मानते हुए पश्चाताप की अग्नि में जलने के लिए और 'आइ एम सॉरी' कहकर उससे माफी मांगने के लिए विवश कर दे। क्या योजना है, कैसी चतुराई है ? स्वेच्छा से आत्मसमर्पण न करके, उसे चिढ़ाते हुए, चुनौती देकर संकट में डाल रही है।

वह फिर भी झुक सकता था। अपनी गलती मानकर उसे समझा-बुझा सकता था। उसे माफ कर, उसके 'त्रियाचरित्र' को अनदेखा कर, अपने को बड़ा सिद्ध कर सकता था, किंतु कोई व्यक्ति आसानी से झुकना नहीं चाहता। जो उसे चुनौती देता है उसे वह भी चुनौती देता है, जो उसे वचन-बाणों से बेधता है उसे वह भी वचन-बाणों से बेधता है–यह स्वाभाविक है।

वह फिर बोली, "हां, ले लीजिए। जो चाहे ले लीजिए।"

"इस तरह नहीं, बेमन से ऐसा मत कहो।"

"मैंने यह बात बेमन से नहीं कही है।"

"रियली ?"

वह चुप रही।

उसने सिर हिलाते हुए कहा, "तेरी समझ में कुछ नहीं आया। इतने दिनों बाद भी तूने मुझे नहीं समझा, मुझ पर विश्वास नहीं किया।"

"यदि आप पर विश्वास नहीं होता, तो इतने लोगों में से मैं आप ही को क्यों चुनती ? सच तो यह है कि विश्वास की कमी आपमें है, मुझमें नहीं।"

"अच्छा ! बहुत खूब, बहुत खूब !"

"आप यही तो चाहते हैं कि मैं अपने विश्वास को इस तरह प्रमाणित करूं कि आप तृप्त हो जायें।"

"ऐसी कोई बात नहीं। प्लीज ! ऐसा मत सोचो।" कहकर उसने पुनः धीरे से उसका हाथ पकड़ लिया और बोला, "मुझे लगता है कि एक दूसरे के सम्मुख अपनी बात प्रमाणित करने की स्थिति को हम पार कर चुके हैं।"

"मैं भी ऐसा ही मानती हूं।"

"इस समय हमारे सम्मुख अपनी बात को प्रमाणित करने का प्रश्न नहीं है। हमने अपने लिए एक नये संसार का निर्माण कर लिया है। अब हमें उस संसार के नियमों के बारे में सोचना होगा। अपने एकांत कक्षों और परदों के बारे में भी हमें सोचना होगा।"

"हमें शायद यह सोचना होगा कि कौन-सा परदा कब हटना चाहिए–हैं न ?"

"हां ! किंतु–क्या तू सोचती है कि ये परदे आवश्यक हैं ?"

"हम पत्थरकाल के जीव नहीं हैं।"

"यह देख, मैं तुझसे वह नहीं चाहता। तू सोचती है कि मैं तुझसे कुछ छीनने का यत्न कर रहा हूं और तू उसे बचाने की कोशिश में है। ऐसी कोई बात नहीं है। मुझे सिर्फ तू चाहिए–सर्वथा आवरणों से रहित, अपने संपूर्ण रूप में। मेरी बात समझ रही है न ? यदि मुझे सिर्फ उसी की आवश्यकता होती तो मैं किसी दुर्गंधभरी गली में जाकर किसी को भी.. ।"

उसके मुंह पर हाथ रखते हुए वह बोली, "प्लीज !"

उसने फिर अपनी बात शुरू की, "मैं तुम्हें बता देना चाहता था कि यही कुछ पाने के लिए, मात्र अपनी कामवासना की पूर्ति के लिए मैं तुम्हारे पास नहीं आया। तुम मुझे अच्छी लगती हो। अनेक लड़कियों में से केवल तुम्हीं ने मुझे आकर्षित किया, मेरी भावनाओं को झकझोरा। यह बात सबसे महत्वपूर्ण है। बाकी बातें बाद में आती हैं। तुझे यह बात अवश्य जान लेनी चाहिए कि पूरी तरह अपनाने और चित्त को लीन करने योग्य किसी वस्तु को खोजकर पा लेने के बाद, देने योग्य सब कुछ देकर एवं पाने योग्य सब कुछ पाकर, उसके माध्यम से पूर्णता और संतोष पाने की बलवती इच्छा ही व्यक्ति को इस स्थिति तक पहुंचाती है।"

"मैं आपकी बात समझ रही हूं, किंतु–"

"बस" कहकर उसने उसे इशारे से चुप रहने को कहा। "यदि तू इतना समझ ले तो पर्याप्त है। बाकी बातें इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं। तू यही तो चाहती है कि हमारे निजी संसार के नियम समाज के सामान्य नियमों के विरोधी न हों ? जितना तू मुझे जानती है उतना ही मैं भी तुझे जानता हूं। तेरी आस्थाओं से परिचित हूं। जब तक मैं उनका आदर करूंगा तभी तक तेरे सम्मान का पात्र बना रहूंगा–हैं न ?"

उसके चेहरे पर निश्चिंतता की भावना प्रकट हुई। होठों पर एक पावन मुस्कान खेलने लगी। वह भावविभोर होकर बोली, "धन्यवाद ।"

"मैं तेरे विश्वासों का आदर करता हूं। किंतु..." कहकर उसने सिर हिलाया और बोला, "उनको स्वीकार नहीं करता।"

वह उसके और पास जाकर बोली, "आप मुझसे नाराज तो नहीं हैं ?" उसने धीरे से उसके कंधों को पकड़ा। उसे अपनी भुजाओं में भर लेने की इच्छा को रोकते हुए, उसने झटककर अपना हाथ पीछे कर लिया और बोला, "मैं तुझसे नाराज कैसे हो सकता हूं ?" उसने अनुभव किया कि हमेशा की तरह वह उस दिन भी हार गया है, ज्यादा बोलने के कारण ही स्वयं फंस गया है। उसने मन ही मन खीझते हुए, उसकी दृष्टि में अपने आपको एक सज्जन पुरुष प्रमाणित करने की अपनी विवशता का अनुभव किया।

धीरे-धीरे अपने आपको भावनाओं के बंधन से मुक्त कर वह वहां से चल पड़ा। चलते समय वह बोला, "अच्छा गुड नाइट ! अब मैं सचमुच तुझसे विदा लेता हूं।"

"तो आप जा रहे हैं ?"

"मालूम है, कितने बज रहे हैं ? साढ़े दस।"

"मैं भी आपके साथ चलती हूं।"

"बस स्टैंड तक ?"

"आपके कमरे तक।"

उसकी बात सुनकर वह विचलित हो गया, "छिः छिः ! ऐसी मूर्खतापूर्ण बातें

न करो ! इस संबंध में हमने पहले से ही सब-कुछ तय कर लिया है। तुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।"

"इस समय वह सब कुछ करने की इच्छा मेरे मन में जाग उठी है।"

"नहीं, बिल्कुल नहीं ! अब तुझे अपने साथ ले जाऊंगा तो मुझे यही दुख सालता रहेगा कि मैंने कोई अपराध किया है।"

"यदि आपको इस हालत में छोड़कर मैं अपने कमरे में लौटकर गयी तो मैं दुखी हो जाऊंगी।"

क्षण भर के लिए वह घबराया। फिर जैसे-तैसे अपने को संभालकर वह बोला, "आज मेरा मूड आफ हो गया है। फिर किसी दिन देखा जायेगा।"

"दूसरे दिन मेरा मूड न जाने कैसा होगा ?"

"कोई बात नहीं।" कहकर वह चुप हो गया। थोड़ी देर पहले जो बात उसे बड़ी महत्वपूर्ण लग रही थी, अब सहसा महत्वहीन-सी लगने लगी।

उसे अचानक अपने से दूर होता देख उसके मन में कई संदेह जागे। उसे भय हुआ कि उसका स्नेह कम हो गया है। सहसा भावावेश में जाकर उसने उसे अपनी भुजाओं में कस लिया और बोली, "मैं झूठ नहीं बोलती। मैं सचमुच आपके साथ इसी समय चलने को तैयार हूं।" ऐसा कहकर उसने अपने हाथों से उसके हाथों को कसकर पकड़ लिया। उसकी याचनाभरी दृष्टि और अपने प्रति समर्पण के भाव को देखकर वह उल्लसित होने के स्थान पर चौंक उठा। उसे अपने मन में अंकित उसका सुंदर बिंब खंडित होता जान पड़ा। "प्लीज, प्लीज ! ऐसा न करो !" कहकर उसने बहुत प्रयत्न करके, उसका मन दुखी न हो—इस बात का ध्यान रखते हुए, धीमे-धीमे अपने आपको उसकी भुजाओं के बंधन से मुक्त कर लिया और फिर बोला, "मुझे तेरी बातों पर पूरा विश्वास है। मैं तुझसे बिल्कुल नाराज नहीं हूं, किंतु आज हम वह सब नहीं करेंगे। ठीक है न ?"

"जैसी आपकी इच्छा।"

"ओ-के-बाऽऽ इ ! अब जरा मुस्कुरा दो तो।"

उसकी बात सुनकर वह मुस्कुराने लगी। उसकी मुस्कान को मन में बसाते हुए, अन्य किसी भी विषय पर सोच-विचार करने की इच्छा न रखते हुए वह बस स्टैंड की ओर चल दिया। वह मन ही मन सोचने लगा—'उसमें वह कौन-सी चीज है जो उसे दूसरों से अलग करती है और जिसने मुझे आकृष्ट किया है ? किस कारण से मेरे प्रति उसका विश्वास और आदरभाव अडिग रूप से बना हुआ है ?' सड़क पर जलती हुई बत्तियों के प्रकाश और दो लैंपपोस्टों के बीच की छाया को पार करता हुआ वह तेजी से चला जा रहा था। उसने सोचा, 'प्रकाश के आने पर उसके साथ परछाइयां भी आ जाती हैं।'

एस्तर

वण्णनिलवन

अंत में यही तय हुआ कि दादी और ईसाक को वहीं छोड़कर चल दिया जाय। नौकरी के लिए जहां जा रहे हैं वहां दादी का क्या काम ? वहां आकर वह हमारा कौन-सा काम कर देगी ? चल-फिर नहीं सकतीं। कान से ऊंचा सुनती हैं। कोई पास जाकर खड़ा हो जाय तो वहां प्रकाश होने पर ही वह उसे पहचान पाती हैं। एक जमाने में दादी ने ही इस घर के सब लोगों का लालन-पालन किया था। पोते-पोतियों को, यहां तक कि सबसे आखिर में जन्मे रूथ को भी दादी का लाड़-प्यार याद है। अब उनसे कोई काम नहीं होता। ऐसे में हम नौकरी के लिए जहां कहीं भी जायं वहां उन्हें कैसे ले जा सकते हैं ?

घर में बहुत दिनों से इसी बात की चर्चा थी। सब लोग अकेले-अकेले बरामदे में बने चबूतरे पर, धान के पीपों के बगल में या खिड़की के पास उस पुराने स्टूल को सरका, उस पर बैठकर अथवा घर के पिछवाड़े या दरवाजे के पास गलियारे में खड़े होकर, जो-कुछ सोचते थे सब खाना खाने के लिए एक साथ बैठते समय, एक दूसरे से कह देते थे। अतीत में भोजन का समय उस घर के लोगों के लिए बहुत आनंददायक हुआ करता था। अब उन्हें भात खाने को नहीं मिलता। घर की स्त्रियां बाजरे और रागी से ही भोज़न तैयार करती हैं। क्या धान के साथ-साथ जीवन की खुशियां भी लुप्त हो गयीं ?

ऐसा कहना ठीक नहीं। अब भी भोजन की लगभग पूरी जिम्मेदारी एस्तर बुआ पर ही थी। भूसे के से इस बाजरे और रागी से एस्तर बुआ कितना स्वादिष्ट और सुगंधित भोजन तैयार कर लेती हैं ? इन बुरे दिनों में एस्तर बुआ हमारे साथ न होतीं, तो हमारा क्या होता, इस बारे में सोचते हुए भी डर लगता है। यदि वे न होतीं तो तीन बेटियों और एक बेटे का पिता अगस्तियन भी अपनी धोती का फंदा बनाकर गोशाले की छत पर लगी ताड़ की लकड़ी की शहतीर पर लटककर जान दे देता।

उस समय तीनों की शादी हो चुकी थी और उनके बाल-बच्चे भी थे। अगस्तियन सबसे बड़ा था। उसके भरोसे कोई भी काम नहीं किया जा सकता। वह सदा बरामदे में चुप बैठा रहता था, मानो बड़े शांत स्वभाव का हो। किंतु भीतर से ऐसा न था;

सदा किसी चिंता में डूबा रहता था। दूसरे लड़के का नाम डेविड था। उसकी और अगस्तियन की पत्नी का नाम एक ही था। बड़े भाई अगस्तियन की पत्नी को लोग बड़ी अमलम और छोटे की पत्नी को छोटी अमलम कहकर पुकारते थे। छोटे भाई के दो लड़के थे।

इन दोनों के अतिरिक्त उस परिवार की तीसरी प्रमुख सदस्या थीं उनके पिता मरियदास की रिश्ते की बहिन एस्तर। मरियदास की मृत्यु के बारह वर्ष पूर्व ही एस्तर बुआ उस घर में आ गयी थीं। गांववाले कुछ समय तक यह कहकर उनका उपहास करते रहे कि एस्तर को पति के साथ रहना अच्छा नहीं लगा, इसी से वे उनका घर छोड़कर आयी हैं, किंतु ये बातें अब पुरानी हो चुकी हैं। यह कहना कठिन है कि एस्तर बुआ ने सबको क्या दिया। अगस्तियन और डेविड दोनों की पत्नियां बहुत सुंदर थीं, किंतु लोग एस्तर बुआ से जितना प्यार करते थे, उतना शायद ही अपनी पत्नियों से करते थे।

एस्तर बुआ ठिगनी थीं। लंबे समय से संभोग-सुख में लिप्त न होने के कारण संभवतः उनका पूरा शरीर इतना सुडौल था कि देखनेवालों के मन में बार-बार उसे देखने की इच्छा जागृत होती थी। उनके शरीर की सुडौलता का एक कारण उनके द्वारा किये गये शारीरिक श्रम के कार्य भी थे। उनके बाल घुंघराले थे। घने काले बालों के बीच जहां-तहां कुछ सफेद बाल भी थे। अंगिया पहनने की उन्हें आदत न थी। अतः उनके वक्षस्थल का सौंदर्य देखते ही बनता था।

बुआ हमेशा काम में लगी रहती थीं। हर समय अपनी साड़ी को ऊंचा करके कमर पर इस तरह खोंसे रहती थीं कि एड़ी के ऊपर टांगों पर उगे छोटे-छोटे बाल दिखाई देते थे। बुआ हर तरह की चालबाजियों से या काम साधने के लिए आवश्यक कठोर व्यवहारों से सर्वथा अपरिचित थीं। फिर भी कोई उनकी बातों का विरोध नहीं करता था। मरियदास की मृत्यु के बाद इतने बड़े परिवार का कार्यभार संभालना कितने दायित्व का काम था। इतने एकड़ जमीन में इतना धान बोना होगा—यह हिसाब तो बच्चे भी लगा सकते हैं, किंतु काम चाहे घर का हो चाहे खेती-बाड़ी का, उसमें देर न हो—यह ज्यादा जरूरी है। मजदूरों को डरा-धमकाकर समय से अपना काम करवा लेना इतना सरल कहां है ? बेचारी बुआ तो किसी को डराना-धमकाना जानती ही नहीं थीं।

बुआई का समय हो या सिंचाई का; घर के कामों से समय निकालकर सुबह, दोपहर अथवा शाम को बुआ खेत का चक्कर अवश्य लगा लेती थीं। उनका वहां जाना न जाने के बराबर ही होता था, किंतु सब काम जैसे किसी जादुई प्रभाव से ठीक-ठीक हो जाता था। यदि वे शाम को खेत पर जाती थीं, तो उनके वहां पहुंचने से पहले ही मजदूर लोग इतनी श्रद्धा के साथ सारा काम कर लेते थे कि वे उनके काम में कोई दोष नहीं निकाल पाती थीं। पूरा परिवार बुआ के लिए ही क्रियाशील

था। नौकर लोग ही नहीं, उस गांव के दूसरे लोग भी बुआ के बंधन में पड़े होने के कारण ही जैसे क्रियाशील थे।

घर की दोनों बहुएं बड़ी विचित्र प्रकार की स्त्रियां थीं। बड़ी बहू किसी बड़े परिवार की पहली संतान थीं। वह मितभाषी थी। यदि कोई उसके साथ रहता तो हिसाब लगाकर यह बता सकता था कि स्कूल में पढ़ते हुए, गांव की पाठशाला से पांचवीं कक्षा पास करने से पहले ही ऋतुमति होकर छः-सात साल तक घर में रहते हुए और अब इस घर में बड़े बेटे अगस्तियन की पत्नी बनकर, तीन बेटियों और एक बेटे को जन्म देने के बाद भी उसने कितने शब्द अपने मुंह से निकाले होंगे। अपने अट्ठाइस साल के जीवन में उसने शायद ही कुछ एक सौ शब्द बोले होंगे। बड़ी अमलम बहुत नादान थी। एस्तर एक और रिश्ते से भी उसकी बुआ लगती थीं। दूर के रिश्ते से उसकी दीदी भी लगती थीं। ऐसा कहा जा सकता है कि एस्तर बुआ द्वारा बताये गये सभी छोटे-छोटे कामों को बिना बुड़बुड़ाये पूरा कर लेना, पति और बच्चों के कपड़ों को नहर तक ले जाकर साबुन लगाकर साफ करना, उन्हें धूप में सुखाकर घर लाना और तह लगाकर रख देना—यही उसके जीवन के मुख्य कार्य थे। किसी भी वस्तु को जबदरस्ती अपना बना लेने और किसी से कुछ मांगकर पा लेने की रीति-नीति से वह सर्वथा अनभिज्ञ थी।

छोटी अमलम इसके ठीक विपरीत गुणोंवाली स्त्री थी। उसे लेस लगे पेटीकोट और तरह-तरह के डिजाइनों में कढ़ी हुई अंगिया पहनना बहुत अच्छा लगता था। बड़ी बहू की तुलना में वह तनिक निर्धन परिवार से आयी थी, किंतु यहां आकर उसने अपनी आवश्यकताओं को बढ़ा लिया था और उसकी बाहरी साज-सज्जा भी अधिक हो गयी थी। सब लोग नीचे सोते थे। नारियल एवं ताड़ के पत्तों से बनी छतवाले उस मकान में एक नीची अटारी थी। उसका फर्श भी कच्ची मिट्टी का ही बना था। फिर भी वह अपने बच्चों को नीचे सुलाकर बांस की बनी सीढ़ियों पर आवाज करते हुए चढ़कर पति के साथ अटारी पर ही सोने की इच्छा करती। जब दादी की आंखें ठीक थीं और वे घर में चलती-फिरती थीं, तब वे छोटी अमलम को वेश्या कहकर गाली देती थीं। अपने पति के अलावा दूसरे मर्दों से भी बातें करने की उसकी इच्छा होती थी, किंतु उसका चरित्र सर्वथा निष्कलंक था।

अब इस गांव में क्या रह गया है ? अय्यप्पन मंदिर के पासवाले खेत को और टीले पर स्थित खेत को यदि गायें चर लेंगी तो फिर यहां क्या रह जायगा ?

आस-पड़ोस के सभी लोग गांव छोड़कर जा चुके थे। ईसाक ने कल ही आकर उन लोगों को बताया था कि पश्चिम की ओरवाली गली में अब कोई नहीं रहता। वह गांव काफी छोटा था, फिर भी उसमें दो दुकानें थीं। कारोबार ठप्प हो जाने के कारण दोनों दुकानें बंद हो चुकी थीं। घर में माचिस की एक ही डिबिया बची थी। थोड़ी-सी रागी थी, जिसके सहारे कुछ दिन काटे जा सकते हैं। थोड़ा सा बाजरा भी

था, किंतु माचिस की एक डिबिया को कितने दिन चलाया जा सकता है ?

कल डेविड ने एस्तर बुआ की नजरें बचाकर बीड़ी पीने के लिए माचिस सुलगाकर बड़ा बुरा किया। हालांकि उसने तीली को डिबिया पर इतने धीमे पर घिसा था कि किसी को इस बात की कानों-कान खबर न हो, किंतु माचिस पर तीली घिसने की आवाज को वह कहां छिपा सकता था ? एस्तर बुआ उस समय गोशाले में थीं। अत्यधिक सावधानी से दियासलाई सुलगाने के कारण ज्यादा आवाज नहीं हुई, किंतु उस धीमी आवाज को भी एस्तर बुआ ने सुन लिया। गायों को पानी पिलाने का काम बीच में ही छोड़कर वे दौड़ती हुई अंदर आयीं। उनके चेहरे पर घबराहट थी। उस समय डेविड अंगीठी के पास खड़ा बीड़ी सुलगा रहा था। जलती हुई दियासलाई का प्रकाश उसके चेहरे पर पड़ रहा था।

यदि बुआ उससे कुछ पूछ लेतीं या कुछ कह देतीं तो उनके मन को चैन पड़ जाता। डेविड से भी कुछ कहते नहीं बना। बस दोनों ने मुंह उठाकर थोड़ी देर के लिए एक दूसरे को देखा। इस प्रकार चुपचाप एक दूसरे को ताकना उन्हें वचन-बाणों से भी अधिक तीखा लग रहा था। विशेषकर डेविड को यह लगा कि उसे बड़ी भयंकर सजा दी जा रही है। वह सोचने लगा कि बुआ के हृदय में व्याप्त दया और प्रेम की भावनाएं इस समय कहां चली गयीं ? इतने दिनों से बुआ के आदर-सम्मान और प्रेम का पात्र बना रहनेवाला वह इस मामूली से कर्म के कारण कितना नीचे गिर गया है ! वह उस बीड़ी को पूरा नहीं पी पाया। उसने उसे खिड़की से बाहर दूर फेंक दिया।

उस रात रागी पीसकर लपसी बनायी गयी थी। लपसी में डालने के लिए और घर के दूसरे कामों के लिए अब पानी कठिनाई से ही मिल पाता था। पानी के लिए ईसाक और बुआ को रेलगाड़ी छूटने के समय पर सब काम छोड़कर रेलवे स्टेशन जाना पड़ता था। पानी के लिए उन्हें इंजन-ड्राइवर के सामने कितना गिड़गिड़ाना पड़ता था ? एस्तर बुआ से बातें करने का मौका पाने के लिए ड्राइवर लोग थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद ही उन्हें पानी भरने देते थे। जब यह गांव लोगों से भरा हुआ था, तब स्टेशन के नल पर पानी भरनेवालों में परस्पर होड़-सी लगी रहती थी। लोगों के गांव छोड़कर चले जाने का एक फायदा यह है कि अब यहां चार-पांच लोग ही पानी भरने आते हैं। उनसे होड़ लेनेवाला अब कोई नहीं है।

उस रात सभी आधा पेट भोजन करके सो गये। छोटी अमलम बहुत देर पहले अटारी पर चढ़कर सो गयी थी, किंतु डेविड देर तक बरामदे में बने चबूतरे पर बैठा रहा। एस्तर बुआ ने उसे कई बार भोजन के लिए पुकारा। सबको खाना खिलाकर वे उसके पास गयीं। उसकी रोमिल बाहें पकड़कर उसे उठाकर खड़ा किया। उसे अपने साथ रसोईघर तक ले जाकर थाली के सामने बैठाया। वह सिर झुकाये बैठा रहा। उसकी इच्छा नहीं हुई कि वह कुछ खाये। बुआ ने उसकी ठोड़ी पकड़कर उसका चेहरा ऊंचा किया और बोलीं–"ए डेविड चुपचाप खाना खा ले। मैं तेरे गुस्से को

अच्छी तरह समझती हूं।"

तुरंत डेविड बुआ से लिपट गया। उसने अपना चेहरा उनकी छाती में छिपा लिया। बुआ ने उसे अपनी भुजाओं में कस लिया और उसे शांत करने का प्रयास किया। डेविड धीरे-धीरे रोने लगा। उसे देख बुआ भी सिसकने लगीं। दोनों ही उस परिस्थिति में पड़कर रोना चाह रहे थे। उन दोनों के हृदय में परस्पर एक दूसरे के प्रति ऐसी प्रेम और करुणा की भावना जागी, जैसी आज तक नहीं जागी थी।

डेविड का रोना न्यायसंगत था, किंतु बुआ क्यों रोयीं ? डेविड के प्रति अत्यधिक क्रूर व्यवहार करने के कारण दुखी होकर ही क्या वे रोयी थीं ? नहीं, उनके रोने का कारण कुछ और ही था। उन्हें सहसा अपने पति लारेंस की याद आ गयी थी। लारेंस और उससे संबंधित बातों को सभी लोग प्रायः भूल चुके थे। किसी को उसका चेहरा भी याद नहीं था। उससे संबंधित सभी कुछ जैसे मिट चुका था। अलग-अलग कारणों से ही सही, दोनों के लिए उस समय रोने से बढ़कर कोई काम नहीं था।

उस दिन रात को डेविड अटारी पर लेटकर अच्छी चैन की नींद सोया, किंतु एस्तर बुआ को नींद नहीं आयी। डेविड ने जिस कांसे की थाली में भोजन किया था उसे भी उन्होंने धोकर नहीं रखा। बहुत देर तक अकेली बैठी वे बीते दिनों की याद करती रहीं। न जाने कब वे वहीं पड़कर सो गयीं।

रेल की पटरी में क्या रखा है ? जब से वह इस घर की बड़ी बहू बनकर यहां आयी है, अपने खाली समय में पिछवाड़े खड़ी होकर रेल की पटरी को ही देखती रही है। रेल की पटरी पूर्ववत् अपनी जगह पर ही है। वह पटरी उसके लिए कोई नया समाचार लेकर नहीं आयी है। कभी-कभी भेड़-बकरियां झुंड बनाकर रेल की उस पटरी को पार किया करती थीं। छोटे कद की भेड़ों की अपेक्षा बकरियों को रेल की पटरी पार करते देखना उसे ज्यादा अच्छा लगता था। उसके घर में बकरियों का एक गल्ला था। शायद इसीलिए उसे बकरियां ज्यादा अच्छी लगती थीं। वह अक्सर सोचती—क्या ही अच्छा हो यदि बकरियों का एक रेवड़ रेल की पटरी को पारकर दूसरी तरफ चला जाय। आजकल गांव में भेड़-बकरियों का रेवड़ किसके यहां है ? जिनके यहां भेड़-बकरियां थीं, आज वे घर खाली पड़े हैं।

रेल की उस खाली पटरी को देख-देखकर उसका मन असहनीय दुख से छटपटाने लगता था। इस तरह दुखी होने के बदले वह घर के भीतर जा सकती थी। स्कूल बंद हो गये थे। अतः सभी बच्चे बरामदे में दादी मां के पास इकट्ठे होकर खेल रहे थे। वह भी वहां जाकर बच्चों के साथ थोड़ा समय बिता सकती थी, किंतु ऐसा करने की उसकी इच्छा नहीं हुई। एक दृष्टि से देखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि वह मन ही मन इस प्रकार के असहनीय दुख को सहते रहना चाहती थी। अपने मन को कष्ट देने में उसे एक विचित्र प्रकार का आनंद मिलता था।

उस समय गोशाला में गायें नहीं थीं। दुर्भाग्यवश ऐसे बुरे दिनों में गायों की भी

रक्षा करनी पड़ रही थी। उन दो बेजुबान प्राणियों को, जिन्होंने इतने दिनों तक उनकी सेवा की, इस समय कहां भगाया जा सकता है ? ईसाक उन्हें सास्ता (हरिहर पुत्र) मंदिर के पासवाले जलरहित खेतों में सूखी घास और फसल चराने ले गया है। ईसाक न होता तो इन गायों की क्या दशा होती, इसकी कल्पना करना भी कठिन है।

सब लोग दादी मां और ईसाक को यहां छोड़कर जाने की सोच रहे हैं ? ऐसा कैसे हो सकता है ?

दादी मां ने उससे ज्यादा बातें नहीं की थीं। इसका कारण स्वयं वह अर्थात् बड़ी अमलम थी। उसने किससे ज्यादा बातें की थीं ? वह दादी मां के सम्मुख अत्यधिक विनम्र बनी रहती थी। यह कहा जा सकता है कि उसे ये सब बातें उसकी मां ने सिखायी थीं। उसने बचपन से ही मां को, पिताजी की मां अर्थात् अपनी एलिस दादी के प्रति बड़ा विनम्र व्यवहार करते देखा था। मां और दादी के बीच कई तरह की बातें होती थीं। उसने मां को कभी दादी का विरोध करते या बुड़बुड़ाते नहीं देखा। हां, उन दोनों को शांतिपूर्वक प्रेमभरी बातें कर प्रसन्न होते अवश्य देखा है। उसके मन में इन सभी बातों की याद इतनी ताजा है, मानो वे कल-परसों ही हुई हों।

यदि दादी बीमार पड़ जातीं तो मां प्रार्थना करते हुए प्रायः पूरे समय दादी के स्वस्थ होने की मंगल-कामना ही किया करती थीं। मां पढ़ी-लिखी नहीं थीं। उनकी प्रार्थना के बारे में सोचने पर भी सबको मानसिक शांति मिलती थी। समझ में नहीं आता कि मां को प्रार्थना करना किसने सिखाया। शायद उन्होंने स्वयं उस प्रार्थना के बोल सीख लिये थे। प्रार्थना में छोटे-छोटे शब्द थे, ऐसे शब्द जो घर में प्रतिदिन व्यवहार में लाये जाते हैं। मां प्रतिदिन प्रार्थना नहीं करती थीं। वे जानती थीं कि उन्हें कब-कब प्रार्थना करनी है। मामाजी अक्सर उन्हें यह कहकर चिढ़ाया करते थे कि यह अनपढ़ लड़की है। इसी से झूठमूठ प्रार्थना करना नहीं जानती।

मां अपनी सास का आदर करती थीं। मां का यह गुण बड़ी अमलम ने भी पा लिया था। उसके मन में यह तीव्र इच्छा थी कि वह भी अपनी मां के समान परिवार के सभी लोगों के प्रति प्रेम का व्यवहार करे।

अमलम से प्रेम करनेवाला लंबे कद का एक व्यक्ति उसी के गांव में रहता था। उसके गांव में एक नाला था जो नीचे से ऊपर की ओर बहता था। नाले के पास से ही गांव शुरू होता था। नाले के उस पार पक्की सड़क तक की जमीन खाली पड़ी थी। उसमें कंटीली झाड़ियां उगी हुई थीं। जाने क्यों नाले के उस पार गांव का विस्तार नहीं हुआ। नाले के पार पक्की सड़क तक गांव का विस्तार करना कोई नहीं चाहता था। गांव की हर गली नाले से ही शुरू होती थी और नाले पर ही समाप्त होती थी।

अमलम का घर जिस गली में था उसका नाम था मंदिरवाली गली। वह गली रेत से भरी हुई थी। अमलम के घर के उत्तर में एक लंबा-सा मकान था। उसकी

दीवारें हल्के नीले रंग की थीं। उसी मकान में वह व्यक्ति रहता था, जिससे अमलम ने कभी प्यार किया था और हंस-हंसकर बातें की थीं। अमलम ने उससे नाममात्र के लिए प्रेम किया हो ऐसी बात नहीं। वह कभी-कभी यहां भी आ जाता है। क्यों आता है, यह बताना कठिन है। यहां आकर वह कभी क्षण भर के लिए भी नहीं बैठा। कोई नहीं बता सकता कि वह क्यों आता है और क्यों इस तरह भाग जाता है। क्या अमलम इसका कारण जानती है ? इतनी दूर से आनेवाला यहां बैठना भी नहीं चाहता; यहां पहुंचते ही तुरंत वापस चल देता है। इसका कारण कौन जान सकता है ? क्या अमलम भी नहीं जानती होगी ?

इतने कोमल स्वभाववाली नारी को इस भरे-पूरे परिवार में कौन-सा दुख सता रहा है ? घर में किसी से भी जुड़े बिना यह अकेले में क्या ढूंढ़ रही है ? उसकी वह इच्छा और उसका दुख कितना विचित्र है, जिसे उसने किसी के सम्मुख प्रकट नहीं किया ? अमलम की भावनाओं को उसके पति और देवर डेविड ने भी नहीं समझा।

ईसाक के जंगल से लौटने का समय हो गया। अब ईसाक के लिए जंगल में कोई काम नहीं रह गया था। जाने कैसे एस्तर बुआ ने यह जान लिया था कि जंगल ही ईसाक की दुनिया है। अतः वे उसे जब-तब धूप से तपते सूखे जंगल में भेज दिया करती थीं। ईसाक हमेशा जंगल की बातें करता रहता था। ऐसा लगता था मानो जंगल को देखे बिना वह जीवित नहीं रह सकता। जंगल धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे थे। देखते ही देखते सारी फसल लुप्त हो गयी थी। खेतों में स्थित कुओं के पास अब बैलों के गले में बंधी घंटियों की आवाज भी नहीं सुनायी देती।

यह जंगल किसी समय गांववालों के लिए बहुत उपयोगी था, किंतु आज वहां कुछ नहीं है। ईसाक कहता है कि वहां के खेतों पर धूप की एक सफेद चादर बिछी हुई है। वह धूप के सभी रंगों को पहचानता है। पीली धूप पड़ने पर यदि वह कहता कि कल वर्षा होगी तो अगले दिन वर्षा होती थी। गर्मियों की धूप और वर्षा ऋतु की धूप के बारे में ईसाक सब कुछ जानता है।

ईसाक खेतों में उगनेवाली फसल और भेड़-बकरियों के लिए ही शायद जी रहा था। ईसाक को जो फसलें अच्छी लगती थीं, वे धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही थीं। अंत में टीले पर स्थित खेत में चरने के लिए गायों को लेकर जब ईसाक गया था तब वह भूखा-प्यासा ही गया था। उस दिन वह कितना रोया था ? इसमें उसकी कोई गलती नहीं थी। जल के अभाव में, धूप से सूखी फसलों को नष्ट करने के लिए ही तो एस्तर बुआ ने उसे भेजा था। सूखी फसलों को नष्ट करने में भला उसे क्या हानि होती ? फिर भी ईसाक कितना रोया था ? हां, वह जमीन भी उसकी अपनी नहीं थी।

ऊपर से कौन इतनी आग बरसा रहा है ? न पीने के लिए पानी है न खाने के लिए अन्न। ऐसे में दिन की अवधि को किसने रात के सात बजे तक खींचकर

रख दिया है ? हवा ने भी मानो अपने छिपने के लिए जगह ढूंढ़ ली थी। दिन में आवश्यकता से अधिक प्रकाश था और रात में इतना घना अंधकार कि उसे देखते ही सांस घुटने लगे।

एक रात जब सब लोग लालटेन के सामने बैठे हुए थे तब एस्तर बुआ बोलीं, "ऐसा घना अंधकार नहीं होना चाहिए। जाने क्यों यह अंधकार बढ़ता जा रहा है। यह अमंगल का सूचक है।" अच्छा हुआ कि एस्तर बुआ ने जब यह बात कही, तब तक घर के सभी बच्चे आड़े-तिरछे लेटकर सो चुके थे। छोटी अमलम का गोद का बच्चा दूध पीने के लिए जाग रहा था। वे बच्चे सचमुच भाग्यशाली थे, जो बुआ की बातों का अर्थ नहीं समझ सकते थे। इस घटना को घटित हुए अब कई महीने बीत चुके हैं।

इस समय रात का यह अंधकार और गहरा हो गया है। चांदनी रात में भी यह अमंगलकारी अंधकार नहीं मिटता। गांव में लोगों की हलचल न होने से अंधकार और अधिक घना हो गया है। यदि घरों में लोग रहते तो, घरों के दरवाजे चाहे बंद रहते, चाहे खुले, भीतर का प्रकाश बहता हुआ अवश्य बाहर आ जाता। अमावस्या की अंधेरी रात में भी घरों के भीतर से आती हुई लोगों के बोलने की, चलने-फिरने की आवाज अंधकार को मिटाने में सफल हो जाती है। अंधकार को मिटाना वास्तव में बड़ा मामूली काम है। अंधेरे को मिटाने का काम न तो पंचायत बोर्ड द्वारा सड़कों के किनारे खड़े किये गये लैंप-पोस्ट करते हैं और न ही पंद्रह दिन में एक बार दिखायी देनेवाले चंद्रमा का प्रकाश। घरों से आती हुई लोगों के बोलने की, चलने-फिरने की आवाज ही अंधकार को मिटाती है। जब घरों में किसी तरह का प्रकाश न हो, सभी घरों की बत्तियां उखाड़ ली जायें, तब—इन घरों में मनुष्य रहते हैं—यह मामूली-सी बात ही अंधेरे को दूर भगाने के लिए काफी होती है। अंधेरे ने हमेशा एस्तर के परिवारवालों को दुख दिया हो, ऐसी बात नहीं। इस समय अंधकार जो दुख दे रहा था, वह उन्हें तीखी धूप के समान असहनीय प्रतीत हुआ।

धूप के कारण उन्हें उमस और जलन का अनुभव हुआ। धूप ने दिन में उनके दुखों को बढ़ाने का काम किया। अंधकार ने धूप के समान उनके शरीर में जलन उत्पन्न नहीं की, किंतु कुछ और काम किया। वह था भय उत्पन्न करना। यह भय उस भय के समान नहीं था, जो बच्चों के मन में अंधेरे को देखने पर उत्पन्न होता है। अंधेरा मानो घर की ड्योढ़ी पर खड़ा हुआ यह कहकर सबको भयभीत कर रहा था और सबकी नींद हराम कर रहा था कि अब गांव में कोई नहीं रह गया है।

अंधकार का रंग काला है। इतने वर्षों तक वह निर्जीव पड़ा रहा। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस वर्ष वह सजीव हो गया है। वह एस्तर बुआ के घर के बाहर खड़ा बुड़बुड़ा रहा है। वह क्या कह रहा है ? इतने काले रंग का, जुबान-रहित यह अंधकार कैसे सबको डरा रहा है ? हो सकता है कि स्पष्ट रूप से कुछ न कह पाने

के कारण ही अंधकार बुड़बुड़ाता हो। घर के बड़े-बूढ़े उसकी बुड़बुड़ाहट को सुन सकते हैं, समझ सकते हैं।

परम विवेकी और रोबीली एस्तर बुआ खास तौर से उसकी बुड़बुड़ाहट को सुन सकती हैं। अंधेरे की बात सुनकर अत्यधिक धैर्यशाली एस्तर बुआ भी डर गयी। वे भली प्रकार जान गयीं कि अब इस स्थिति से बचना असंभव है। अंधेरे के शब्द क्या थे ?

उनके मकान की छत खपरैल की बनी थी और दीवारें पक्की ईंटों की। दीवारों पर पुताई की गयी थी। वे काफी मजबूत थीं। इतनी मजबूत कि अंधकार भी उन्हें नहीं भेद सकता था। जिन दीवारों पर इतना भरोसा है क्या अंधकार उन्हें भी भेद डालेगा ? यह सोच एस्तर बुआ डर गयीं। अंधेरे की बात सचमुच बड़ी दुखदायी थी।

अपने प्रियजनों के साथ इस स्थान को छोड़कर चले जाने के अतिरिक्त तेरे सामने और कोई उपाय है ? क्या अब भी तुम लोग वर्षा की प्रतीक्षा करते हुए मर जाना चाहते हो ? अंधेरे ने एस्तर बुआ से यही कहा था। अंधेरा प्रतिदिन लगातार यही फुसफुसाता रहता था। वह हठपूर्वक और दृढ़ शब्दों में यही कहता रहता था।

दादी मां की आंखों से आंसू की बूंदे टपक रही थीं। घर में सब लोगों के सो जाने के बाद एस्तर बुआ अक्सर लालटेन की बत्ती को ऊंचा करके उनके पास आकर उन्हें देख जाया करती थीं। लालटेन के प्रकाश में उनकी सजल आंखों से एक अमिट विश्वास झलकता दिखायी देता था। इतने वर्षों से सब कुछ देखते रहने के बाद भी उन आंखों से विश्वास का झलकना सचमुच विस्मय की बात थी। क्या आंखें कभी बूढ़ी नहीं होतीं ? मन में दृढ़ विश्वास लिये अपलक छत की ओर देखती हुई दादी मां को यहां छोड़ जाने के अतिरिक्त दूसरा रास्ता कहां है ? क्या ईसाक उनका साथ देगा ? घरवालों के पास उसे देने लायक कुछ भी नहीं है, यह जानते हुए भी उसने निष्काम भाव से सबकी सेवा की थी। किंतु घरवालों के सम्मुख इस समय आत्मसम्मान की रक्षा का प्रश्न था।

इस छत में देखने लायक क्या है ? सदा खेतों में पड़ा रहनेवाला ईसाक जिस प्रकार फसलों के विकास की हर अवस्था को जानता है, उसी प्रकार क्या दादी मां भी यह न जानती होंगी कि ताड़ के पत्तों से बनी यह छत निरंतर धूप से तपते, वर्षा से भीगते और हवा के थपेड़े सहते हुए कमजोर हो गयी होगी और यह किसी भी क्षण गिर सकती है ? दादी जानती थी कि छत का कौन-सा हिस्सा कब से कमजोर हो गया है।

उस दिन रात को फिर सब लोग मिलकर बैठे। उस समय घर में थोड़ा-सा रागी का आटा ही बचा था। यह बड़े आश्चर्य की बात थी कि घर में मीठी नीम के कुछ सूखे पत्ते और थोड़ा सा तेल भी मिल गया। रागी के आटे से एस्तर बुआ ने हलवे

की तरह का एक व्यंजन तैयार कर लिया।

चूल्हा जलाने में इन्हें अधिक कठिनाई नहीं हुई। इसके लिए ईसाक जंगल से सूखी लकड़ियां बटोरकर ले आया था। जिस दिन उन लोगों ने आखिरी दियासलाई सुलगायी थी, उस दिन से वे लोग इसी कोशिश में लगे हुए हैं कि उनके चूल्हे की आग कभी न बुझे। यदि ईसाक जंगल से पतली-पतली सूखी लड़कियां बटोरकर लाने का काम नहीं करता, तो चूल्हे की आग को सुरक्षित रखना असंभव हो जाता। बिना आग के भला कौन सा काम हो सकता है ?

ऐसे विश्वसनीय सेवक को यहां छोड़कर कैसे जा सकते हैं ? उसने फसलों की सुरक्षा की। ढोरों का पालन-पोषण किया। चाहे वर्षा हो, चाहे गर्मी, वह घर के पिछवाड़े बान से बुनी चारपाई पर पड़ा रहता है। दादी मां के लिए हम ईसाक को कैसे मरने दें ? एस्तर बुआ ने ही उसे खिला-पिलाकर बड़ा किया था। उनके सामने ही उसकी छाती पर बाल उगे, दाढ़ी-मूंछें उगीं। रात में कितनी ही बार वे ईसाक की चारपाई के पास पहुंच जाती थीं और चुपचाप खड़ी उसे सोता देखती रहती थीं।

ईसाक के पास क्या है ? निरंतर धूप में जंगलों में भटकते रहने के कारण काली पड़ी सूखी चमड़ी से ढके शरीर के अतिरिक्त ईसाक के पास और क्या है ? पिछवाड़े गोशाला में खड़े होकर पसीने की दुर्गंध से भरी खाकी रंग की अपनी पेंट बदलते समय एस्तर बुआ ने बचपन से लेकर अब तक कितनी ही बार ईसाक को पूरी तरह से नंगा देखा है। इसके अतिरिक्त उस जंगली की करुणाहीन आंखों में एक विचित्र-सा भाव छिपा हुआ था। वह भाव भेड़-बकरियों या गाय-भैंसों को देखने पर उसकी आंखों में झलकनेवाले भाव से भिन्न था। पकी हुई फसल के पास से निकलते हुए आंखों में दिखायी देनेवाली चमक से भी भिन्न था। एस्तर बुआ को देखने पर उसकी आंखों में एक सर्वथा अनोखी चमक दिखायी देती थी।

एस्तर बुआ ने थोड़े से भोजन को सबकी थालियों में परोस दिया। खाना इतना कम था कि बच्चों का पेट भी नहीं भर सकता था। इसे देख छोटी अमलम मुंह फुलाकर बैठ गयी। ऐसा करना उसकी आदत थी।

एस्तर बुआ ने बड़ी और छोटी अमलम की ओर देखते हुए कहा, "तुम दोनों अपने-अपने मायके चली जाओ। बच्चों को भी साथ ले जाओ।" उन्होंने दोनों को जवाब देने का मौका न देते हुए आदेश के रूप में ही यह बात कही थी। अतः वे दोनों कुछ न बोलीं।

लड़कों से वे बोलीं, "तुम दोनों मेरे साथ आओ। हम मदुरै जाकर बेलदार का काम करेंगे। जब तक बारिश नहीं होती, किसी-न-किसी तरह दिन तो काटने होंगे ? ईसाक भी हमारे साथ चलेगा।"

उनकी बात सुनकर अगस्तियन और डेविड चुप रहे। कुछ देर बाद डेविड ही बोला। रागी के आटे से बने हलवे में सनी हुई अपनी उंगलियों को एक-एक कर

चाटते हुए उसने पूछा, "दादी जिंदा हैं ?".

एस्तर बुआ ने उसे पैनी दृष्टि से देखा, किंतु उसके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। रात को सोने के लिए जाते समय भी उन्होंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया। उस रात लगभग एक बजे के बाद गरम हवा चलने लगी। तब घर के बीचवाले हिस्से में बच्चों के साथ लेटी एस्तर बुआ उठीं और दादी मां के पास जाकर लेट गयीं।

प्रातःकाल भी गरम हवा चलती रही। यदि हवा में ठंडक आ जाती तो वर्षा हो जाती, किंतु हवा में ठंडक नहीं आयगी। हवा स्वयं ठंडी नहीं होना चाहती। भरपेट भोजन न मिलने के कारण दुर्बल हुए दोनों बैल रह-रहकर आहें भर रहे थे। कच्ची नींद में करवटें बदलते हुए सभी लोगों ने उन आहा को अच्छी तरह सुन लिया होगा। बैलों की आहों को अधिक देर तक नहीं सुना जा सकता है। न जाने कैसे वे बैल अपनी आहों के माध्यम से अपनी असहनीय वेदना को व्यक्त कर रहे थे। हवा तनिक धीमी गति से चलती तो कितना अच्छा होता ! उमस फैलानेवाली हवा को इतनी तेजी से चलने की क्या आवश्यकता है ? वह हवा सूखे पड़े पश्चिमी दिशा के जंगलों से आ रही होगी। जंगलों में इधर-उधर पड़े गाय-भैंसों के सूखे गोबर और बकरी के मींगों की गंध उस हवा में मिली हुई थी। पश्चिमी जंगलों में ही इस वर्ष अंतिम बार सबसे अधिक मात्रा में ढोर एकत्रित हुए थे।

दादी मां को कब्रिस्तान ले जाने के लिए ईसाक ने पास के गांव कुरुंबूर से एक पुरानी शवपेटिका बहुत सस्ते दामों में खरीदी और उसे अपने ही सिर पर रखकर ले आया। तब तक शाम हो चुकी थी। गिरजाघर के पादरी गांव में नहीं थे। अतः पालैयंचेट्टि कुलत्तूर से सहायक पादरी को बुला लिया गया। गांव छोड़कर जाने के लिए एस्तर बुआ ने जो रुपये जमा करके रखे थे, उसका एक हिस्सा दादी मां की अंत्येष्टि में लग गया।

घर में कोई भी नहीं रोया। उनके घबराये हुए चेहरों को देखकर साफ पता चल जाता था कि वे भीतर ही भीतर बहुत डरे हुए हैं। कब्रिस्तान बहुत दूर नहीं, पास ही था। चर्चवाली गली और नाडार गली में जो दो परिवार रहते थे, उनके सदस्य थोड़ी देर के लिए इनके यहां आकर लौट गये। जिस घर में मौत हुई हो, वहां जाकर पीड़ित परिवार को धीरज बंधाने के दायित्व को क्या इतनी सरलता से पूरा किया जा सकता है ?

मात्र एस्तर बुआ को रह-रहकर आंसुओं से भीगी, एकटक छत की ओर देखकर दादी मां की आंखों की याद आती रही। वे बहुत दिनों तक उन आंखों को न भुला सकीं।

व्यवसाय की रेखा

चार्वाकन

मैंने घर आते ही मां से पूछा, "आजकल पिच्चुमणी क्या कर रहे हैं ?"

मां ने उत्तर दिया, "उसे तो मरे हुए चार-पांच महीने हो गये।"

मां को पिच्चुमणी फूटी-आंखों न भाते थे। कारण पूछे जाने पर वह कभी ठीक तरह से जवाब न देती। केवल इतना कहती, "वह बड़ा तिकड़मी आदमी है। हमेशा इधर की उधर और उधर की इधर करता रहता है। उसका काम किसी की समझ में नहीं आ सकता। वह तो सारे संसार को धोखा देने की सामर्थ्य रखता है।"

आज सुबह बस में जाते हुए मैंने एक व्यक्ति को देखा। रंग काला, शरीर दुबला-पतला, गंजी चांद, उसके चारों ओर थोड़े से सफेद बाल, चिपकी हुई ठोड़ी, एकदम सफेद दाढ़ी और मूंछें, मानो किसी ने रूई चिपका दी हो, तंबाकूवाला पान मुंह में दबा लेने के कारण फूला हुआ बायां गाल, कोहनी से नीचे लटकती हुई आधी बांह की कमीज, कमर पर लुंगी और कंधे पर एक झोला। वे एक झलक में पिच्चुमणी जैसे लग रहे थे। मैं उन्हें आवाज दे देता, किंतु इतने में ही मुझे यह पता चल गया कि वह कोई और आदमी है, इसी से चुप रह गया। इसी बात का ध्यान करके मैंने घर आते ही मां से उनके बारे में पूछा था।

जब मां ने बताया कि उनका स्वर्गवास हो चुका है, तब मैं सन्न रह गया।

अचानक मेरे मुंह से निकला, "बेचारे पिच्चुमणी।"

"उसे बेचारा कहने की क्या जरूरत है ? ब्याहता बीबी को छोड़ दिया और वह बेचारी रो-रोकर मर गयी। जिस औरत ने उसे जन्म दिया, अपनी उस मां को बुढ़ापे में अपने साथ नहीं रखा। 'घर में कोई औरत नहीं है। मेरा कोई ठिकाना नहीं, कभी इस शहर तो कभी उस शहर भटकता रहता हूं। तू मेरे साथ रहेगी तो ठीक नहीं होगा। सुलोचना के घर जाकर रह ले' कहकर उन्हें अपने घर से भगा दिया। अंत में उनकी चिता को आग देने भी वह नहीं पहुंचा। उसे मरते समय भी कोई तकलीफ नहीं हुई। सुख-चैन से जिया और आराम से मौत के मुंह में पहुंच गया। एक दिन वह विलुप्पुरम् या उलुंदूरपेट्टै गया था। वहां किसी होटल में रात का खाना खाकर सो गया। बस अगले दिन उठा ही नहीं।"

मां गुस्से से भरी हुई थीं। पिच्चुमणी का नाम लेते ही उनकी यह दशा हो जाती थी।

"फिर क्या हुआ ?"

"होना क्या था ? सुबह होटलवाले ने उसे मरा हुआ पाया। उसका थैला टटोलकर उसके घर का पता मालूम किया। फिर नाणू को तार दिया और फोन भी किया। वह और शामा झटपट वहां पहुंचे। दुनिया भर की मुसीबतें उठाकर, डॉक्टर, पुलिसवाले और टैक्सीवाले को रुपया लुटाकर वे उसका शव अपने गांव ले गये और वहां उसका अंतिम संस्कार किया। जलकर राख होने तक उसने किसको सुख दिया ?" कहकर मां चुप हो गयीं।

मैंने पूछा, "वे विलुप्पुरम् या उलुंदूरपेट्टै कैसे पहुंच गये ?"

मां ने रूखाई से जवाब दिया, "उसके पास काम ही क्या था ? किसी लड़के की खोज में वहां गया होगा।"

मां की बात सुनकर शायद आप सोचेंगे कि पिच्चुमणी के घर विवाह योग्य आधी दर्जन लड़कियां होंगी, लेकिन ऐसी कोई बात नहीं।

मैं पिच्चुमणी के बारे में अधिक नहीं जानता। उनकी आयु कम से कम साठ साल की होगी। वे सेवा-निवृत्त हो चुके थे। उनके एक लड़का है। बस, इतनी बातें ही जानता हूं। वे क्या काम करते थे, इस बारे में न मैं कुछ जानता था और न मेरी मां। पूछने पर मां मुंह बनाकर कहती थी, "कहते हैं कमीशन एजेंट है–शहर-शहर भटकने की नौकरी।" नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के बाद भी जाने क्यों पिच्चुमणी का शहर-शहर भटकना बंद न हुआ। मैंने बस इतना सुना था कि वे हमेशा किसी की किसी से जोड़ी मिलाने की कोशिश में ही लगे रहते हैं। यद्यपि मेरी जानकारी के अनुसार उनका वैवाहिक जीवन सुखी नहीं था। लगभग 10-15 वर्ष पहले जब मैं पहली बार उनसे मिला था उस समय भी उनकी पत्नी जीवित नहीं थी।

तीन-चार साल में एक बार कभी किसी विवाहोत्सव में उनसे भेंट हो जाय, यही बहुत था। केवल एक बार मैंने उस व्यक्ति के भीतर छिपे सच्चे इंसान को कुछ क्षणों के लिए देखा और परखा। उस समय मैं धर्मसंकट में पड़ गया था। आज भी उस स्थिति को याद करने पर मेरा दिल भर आता है।

छह साल पहले मैं दूर के अपने एक रिश्तेदार के विवाह में सम्मिलित होने गया था। विवाहोत्सव कोयंबत्तूर में संपन्न हुआ। वहां जाने के बाद ही मुझे यह मालूम हुआ कि पिच्चुमणी किसी रिश्ते से वर के निकट के रिश्तेदार लगते हैं। प्रातः मुझे देखते ही पिच्चुमणी ने अत्यंत खुश होकर मेरा स्वागत किया और मुझसे कुशलक्षेम पूछा। उन्होंने शिकायत-भरे स्वर में मुझसे कहा कि कहां तो उन्होंने मेरे लिए एक सुंदर-सी लड़की देखी थी और कहां मैंने सभी को धोखा देकर, उन्हें और किसी भी अन्य व्यक्ति को बिना बताये अपनी मर्जी से शादी कर ली। "हाय ! तुमने दो लाख

की संपत्ति खो दी !" कहकर उन्होंने मेरे प्रति संवेदना व्यक्त की। उनकी बातें सुनकर मुझे हंसने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझा। जैसे-तैसे मैंने उनसे अपना पिंड छुड़ाया। विवाह-संस्कार के बाद भोजनादि से निवृत्त होकर मैं बारातघर की छत पर स्थित एक कोनेवाले कमरे में सोने चला गया।

थोड़ी देर बाद जब मेरी नींद खुली, उस समय तीन बज रहे थे। मेरी नींद पूरी हो चुकी थी। अतः नीचे क्या हो रहा है—यह जानने के लिए मैं नीचे उतर आया।

विवाह-मंडप खाली पड़ा था। एक तरफ वहां बिछी सिलवटों से भरी दरी के एक कोने में एक बच्चा पेट के बल सो रहा था। बच्चे के शरीर पर कोई कपड़ा नहीं था, केवल कमर पर एक काला धागा बंधा हुआ था। सोते हुए बच्चे की मुद्रा वैसी ही थी, जैसे पेट के बल चलते हुए बच्चे की होती है। विवाह-मंडप के द्वार पर द्वारपालकों की तरह खड़े किये गये केले के पेड़ों के पत्तों को खाने के लिए भूरे रंग की एक गाय बार-बार उछल रही थी। मंडप के एक तरफ विवाहोत्सव में सम्मिलित होनेवाले 'बड़े लोगों' के बैठने के लिए सोफा बिछाया गया था। उसपर एक सज्जन बाहर की तरफ पीठ किये पैरों को घुटनों तक मोड़े हुए पड़े खर्राटे भर रहे थे। दूसरे कोने में नीला, हरा, लाल, पीला चमकदार रेशमी लहंगा और दुपट्टा पहने छह-सात युवतियां बैठी धीमे स्वर में बातें करती हुई हंस रही थीं। उनकी बातचीत और हंसी में सम्मिलित न होकर, साथ ही उन लोगों से दूर न जाकर, युवकों का एक दल उन्हीं के चारों ओर मंडरा रहा था। पता नहीं वे लोग पुरातनपंथी थे अथवा सचमुच एक दूसरे से अपरिचित। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि युवक-युवतियों के समूह में जो कोलाहल सुनायी देता है, उसका वहां सर्वथा अभाव था।

वातावरण में तनिक हलचल उत्पन्न करने के विचार से मैं बातें करतीं और हंसती हुईं उन युवतियों के समूह के पास पहुंचा और उनके बीच बैठ गया। मेरे ऐसा करते ही वे सब एकदम चुप हो गयीं। उस समूह में मैं केवल नलिनी को जानता था। वह मेरे चाचाजी की सबसे छोटी लड़की थी। उसने अपने हाथों पर नये ढंग से या तो मेंहदी लगायी हुई थी या आलता।

मैंने उससे कहा, "नलिनी जरा अपना हाथ दिखाओ।"

उसने अपना हाथ फैलाया। जब मैं उसका हाथ देख रहा था, तब ऐनक पहने एक लड़की ने मेरे पास आकर पूछा, "मामा जी, क्या आपको हाथ देखना आता है ?"

"हां, आता है।" यह कहकर मैं नलिनी के हाथ की रेखाओं को देखने लगा।

वास्तव में हस्तरेखा-शास्त्र में मेरा एकदम विश्वास नहीं। यह बात सच है कि चौदह-पंद्रह वर्ष की आयु में मैंने हस्तरेखा-शास्त्र की कुछ पुस्तकें पढ़ी थीं, किंतु

अब यह बात बीस वर्ष पुरानी हो चुकी है। फिर भी एक युवती द्वारा पूछे जाने पर मैं यह नहीं कह सका कि 'मुझे हाथ की रेखाओं के बारे में कोई जानकारी नहीं है' अथवा 'हस्तरेखा-शास्त्र कोरा बकवास है।' इससे पहले कि मैं कुछ सोच-विचार करूं, अचानक मेरे मुंह से निकल गया, "हां, मैं हाथ देखना जानता हूं।"

अब ऐनकवाली लड़की मेरे पीछे पड़ गयी। "आप मेरा हाथ देखिए।" यह कहकर उसने अपना बायां हाथ मेरे सामने फैला दिया। मैंने हंसते हुए उसका हाथ पकड़ कर रेखाओं को देखना शुरू किया। कुछ देर तक हाथ की रेखाओं पर गौर करने का और ऊपर छत की ओर देखते हुए कुछ हिसाब लगाने का अभिनय करने के बाद मैं बोला, "तू कुछ आलसी है। होशियार है, किंतु शारीरिक श्रम करना तेरे बस की बात नहीं है। दिमाग तेज है, खूब पढ़ाई करेगी।" ऐसा कहकर मैंने उस लड़की के और दूसरी लड़कियों के चेहरों की ओर देखा। उसकी सहेलियों में से एक जोर से हंस पड़ी।

"मामा जी, आपका कहना बिल्कुल ठीक है। यह अपने घर में एक तिनका भी यहां से वहां उठाकर नहीं रखती। कॉलेज के हर काम में पहला नंबर पाती है।" यह कहकर उसने मेरा उत्साह बढ़ाया। युवतियों के उस समूह में अचानक मेरा महत्व बढ़ गया। लज्जा से संकुचित होती हुई लड़कियों ने जब अपना हाथ फैलाकर हाथ की रेखाओं को देखने के लिए कहा, तब मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैं हर लड़की का हाथ देखकर विनोदपूर्वक और उस लड़की की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए जो कुछ मुझे सूझ रहा था, कहता जा रहा था।

अचानक एक आवाज सुनायी दी, "अरे ! तुझे हाथ देखना भी आता है ?"

मैंने चौंककर सिर ऊपर उठाया। सामने पिच्चुमणी खड़े थे।

मेरी दशा बड़ी विचित्र हो गयी। मैं संकोच में पड़ गया। यह सोचकर लज्जित भी हुआ कि पिच्चुमणी ने मुझे इतनी सारी लड़कियों के बीच बैठकर उनका हाथ पकड़कर हंसते-बोलते देख लिया।

मैं झटपट उठ खड़ा हुआ और हंसते हुए बोला, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मुझे कुछ नहीं आता।" और बाहर जाने का प्रयास करने लगा। वे भी मेरे पीछे-पीछे चले आये।

"ऐसा करने में हर्ज ही क्या है ?" कहकर उन्होंने नाणू को पुकारा, "अरे नाणू यहां आ।" फिर मुझे आदेश देते हुए बोले, "तू जरा नाणू का हाथ देख।"

मैंने पूछा, "यह नाणू कौन है ?"

"तू नाणू को नहीं जानता ? वह मेरा बेटा है। मेरा इकलौता बेटा, प्रिंस ऑफ वेल्स। मेरी संपत्ति का वारिस। किंतु न मैं राजा हूं और न मेरे पास कोई संपत्ति है।" ऐसा कहकर उन्होंने अपने बेटे को पुकारा।

"अरे नाणू इधर आ। शरमा मत।" कहकर उसको उत्साहित किया।

उन्होंने दोबारा मेरी तरफ देखते हुए कहा, "उसका हाथ देखकर कुछ तो बता दे।"

मैं धर्मसंकट में पड़ गया। मैंने सोचा कि इस स्थिति में सच का सहारा लेना ही सबसे अच्छा होगा।

मैं बोला, "देखिए मुझे हस्तरेखा-शास्त्र का कोई ज्ञान नहीं है। हस्तरेखा-शास्त्र, ज्योतिष, भविष्यवाणी आदि में मेरा कोई विश्वास भी नहीं है। मैं अपना समय हंसी-खुशी बिताना चाहता था। इसी से मैंने उन लोगों से कह दिया कि मुझे हाथ देखना आता है। वास्तव में मैं हाथ की रेखाओं के बारे में कुछ नहीं जानता।" अपनी बात वहीं समाप्त न कर मैं शरारत से हंसता हुआ बोला, "हाथ देखने की बात न करता तो ये लड़कियां मुझे अपना हाथ कहां छूने देतीं ?" आखिर कुछ न कुछ कहकर मुझे अपना पिंड छुड़ाना था न ?

किंतु उन्होंने मुझे इतनी आसानी से नहीं छोड़ा।

"ऐसा करने में कोई हर्ज नहीं है। मैंने स्वयं देखा था कि तुम एक-एक रेखा देखकर उसका फल बता रहे थे।" मुझसे ऐसा कहकर उन्होंने उन लड़कियों को पुकारकर कहा, "ए लड़कियो, तुम्हीं बताओ, इन्होंने हाथ देखकर सब कुछ ठीक-ठीक बताया था न ?"

वे मूर्ख लड़कियां मुझसे बदला लेने की भावना से अथवा मेरी बातों पर विश्वास करने के कारण एक स्वर में बोल पड़ीं, "मामा जी, ये हाथ बहुत अच्छा देखते हैं। रहस्यात्मक बातों को भी खोज निकालते हैं।" उनकी बातें सुनकर मुझे गुस्सा आया। मैंने कदापि यह आशा नहीं की थी कि इतनी सुंदर, आकर्षक और पढ़ी-लिखी लड़कियां इस सीमा तक मूर्ख हो सकती हैं। मैंने गुस्से से उन्हें घूरा।

तब पिच्चुमणी ने मुझे प्यार से फटकारते हुए कहा, "तुमने इनकी बातें सुनीं ? मेरे सामने इतने नखरे क्यों कर रहे हो ?" मैं भी अपनी बात पर अड़ा रहा।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। सचमुच मुझे हाथ देखना नहीं आता।"

मेरी बातें सुनकर वे लड़कियां जोर से हंसती हुई पिच्चुमणी को देखकर बोलीं, "मामा जी, ये झूठ बोल रहे हैं। आप इन पर विश्वास मत कीजिएगा। हम सच कहती हैं कि इन्हें बहुत अच्छी तरह से हाथ देखना आता है।"

इतने में नाणू भी वहां आ पहुंचा। वहां बैठी युवतियों के चारों ओर मंडरानेवाले युवकों में एक वह भी था।

"अरे नाणू, यहां आकर इन्हें प्रणाम करो।" पिच्चुमणी द्वारा यह आदेश दिये जाने पर नाणू ने मुझे विधिवत् साष्टांग प्रणाम किया।

मेरे क्रोध की कोई सीमा न रही। कोई किसी को धरती पर लेटकर साष्टांग प्रणाम करे, यह मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। मेरा निश्चित मत है कि हस्तरेखा-शास्त्र, ज्योतिष आदि भविष्यफल बतानेवाले सभी शास्त्र मिथ्या हैं। यों

ही खेल-खेल में मैंने एक काम शुरू किया और अब ऐसी मुसीबत में फंस गया हूं, यह सोचकर मुझे गुस्सा आया। मैं उन मूर्ख युवतियों को, हस्तरेखा-शास्त्र को, पिता के आदेश का उल्लंघन न करनेवाले पुत्र को और पिच्चुमणी को जी भर कर कोसते हुए उन्हें एक एकांत स्थान पर तनिक दूर स्थित एक खंभे के पास ले गया।

खंभे के पास पहुंचते ही अपनी आवाज को धीमा कर मैं बोला, "देखिए, मैं सच कहता हूं कि मुझे न तो हाथ देखना आता है और न ही इन बातों में मेरा कोई विश्वास है। यों ही समय बिताने के लिए, मजाक के तौर पर मैंने हाथ की रेखाओं का अध्ययन करने का अभिनय मात्र किया था, और कोई बात नहीं। मुझे बस इतना ही कहना है।"

मेरी बात समाप्त होने से पहले ही, उसे अनसुना करते हुए पिच्चुमणी बोले, "मैंने कह दिया न कि तू इन बातों की चिंता मत कर। तू जिस तरह हाथ देखता है उसी तरह दूसरे लोग देख लें तो काफी है। इस शास्त्र में तेरा विश्वास नहीं है तो कोई बात नहीं। कौन तुझे इस पर विश्वास करने को कहता है ? मेरा इस पर विश्वास है। मेरे लिए यही काफी है।" कुछ रुककर वे फिर बोले, "प्लीज, मेरी खातिर उसका हाथ देख ले न।'

मुझसे आयु में इतने बड़े होकर भी जब वे मेरे सामने इस तरह गिड़गिड़ाने लगे, तब मुझे लगा कि अब इनकी बात को टालना ठीक न होगा। मैं और क्या करूं, मेरी समझ में कुछ नहीं आया। जब मैंने 'अच्छा' कहकर अपनी स्वीकृति दे दी, तो वे नाणू को लेकर मेरे साथ विवाह-मंडप के बीच में आ गये।

पिच्चुमणी ने अपने बेटे को आदेश दिया, "नाणू, इन्हें अपना हाथ दिखा।"

मैंने गुस्से से नाणू की ओर देखा। बलि के बकरे की तरह सिर झुकाये हुए उसने चुपचाप अपना हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया।

मैं यह कहना चाहता था कि वह पूरा बिजूका लग रहा है। तनिक सोच-विचार करने पर लगा कि यह उपमा ठीक नहीं। बिजूका का चेहरा गोल होता है और शरीर भूसे से भरा होने के कारण फूला-फूला दिखायी देता है। नाणू उसके जैसा बिल्कुल नहीं था। वह तो फूल से तुरंत निकले हुए कच्चे केले की तरह पतला और किसी पुराने बर्तनों की दुकान के एक कोने में बहुत दिनों से पड़े हुए कालिख-भरे और पिचके हुए पीतल के बर्तन जैसा दिखायी दे रहा था। अंतर केवल इतना था कि वह गोल-मटोल नहीं था। उसने चाहे अपनी छाती को कमीज में छिपा रखा था किंतु आंखों को प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले कोहनी, हाथ, कलाई, गर्दन, चेहरा आदि अंगों को देखकर साफ पता चल जाता था कि वह कोई पहलवान नहीं है। उसके चेहरे पर आंखें और कालिमा लिये होंठ ही बड़े-बड़े थे। गालों पर गड्ढे पड़े हुए थे। हाथ की उंगलियां दुबली-पतली थीं।

उसका हाथ पकड़कर मैंने अंतिम बार पिच्चुमणी की ओर देखते हुए कहा, "मुझे

सचमुच हाथ देखना नहीं आता।" यदि उस दिन वे पुत्र-मोह में अंधे न हुए होते तो मेरा चेहरा देखकर ही जान लेते कि मैं कितने कष्ट में हूं और जो कुछ मैं कह रहा हूं, उन्हें टालने के लिए नहीं, अपितु सच्चे दिल से कह रहा हूं।

उन्होंने मुझसे कहा, "कोई बात नहीं। जितना आता है, उतना ही बता दे तो काफी है।"

कोई और उपाय न देख मैंने नाणू का हाथ देखना शुरू किया। मुझे हल्दी के दाग से युक्त तर्जनी और मध्यमा उंगलियों तथा बहुत दिनों से काटे न जाने के कारण मैल से भरे नाखूनों के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखायी दिया।

"शरीर बहुत स्वस्थ नहीं रहेगा। छाती कमजोर है, किंतु प्राणों को कोई खतरा नहीं है।" अपनी बात शुरू करने के बाद मुझे जो कुछ सूझता गया, मैं कहता चला गया। उसकी बड़ी-बड़ी किंतु निर्जीव-सी उन आंखों में जो अधमुंदी अवस्था में बकरी की आंखों की तरह दिखायी दे रही थीं, मेरी बातें सुनते ही जैसे चेतना का संचार होने लगा। वहां खड़े पिच्चुमणी अपना सिर हिला-हिलाकर मेरी बातों का समर्थन करते हुए मुझे उत्साहित कर रहे थे। मैंने घुमा-फिराकर, बना-बनाकर न जाने क्या-क्या कह डाला। उसका स्वास्थ्य, बुद्धि की तीक्ष्णता, ललित कलाओं में उसकी रूचि, कला-चातुरी, दूसरों के प्रति उसका व्यवहार, बावन वर्ष की आयु में उसके जीवन में आनेवाली 'पहाड़ के समान भीषण किंतु कोहरे के समान सहज छंट जानेवाली' विपत्ति, पुत्र-प्राप्ति का भाग्य आदि के बारे में मैंने बताया। अंत में जब मुझे लगा कि अब कुछ भी कहना बाकी नहीं रहा तब मैं बोला, "जो कुछ मैंने बताया वह काफी है न ? इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं सूझ रहा है।"

पिच्चमुणी ने खंखारकर गला साफ किया। मैंने सिर उठाकर उनकी ओर देखा। उनका चेहरा बता रहा था कि वे अभी संतुष्ट नहीं हुए हैं।

तनिक धीमे स्वर में वे मुझसे बोले, "मैं तुमसे एक बात पूछता हूं, नाराज मत होना। व्यवसाय के संबंध में इसका भाग्य कैसा है ?"

मैंने निर्लिप्त भाव से उत्तर दिया, "क्यों, यहां भी उसका भाग्य अच्छा ही है।"

"जरा देखकर बता कि व्यवसाय की रेखा लंबी है या नहीं ? बी. ए. पास करके चार साल से घर बैठा है। इसके लिए मैं लगभग सभी शहरों में घूम आया हूं। कोई ऐसी जगह नहीं जहां नौकरी की तलाश नहीं की, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जिससे इस संबंध में नहीं मिला। हां, किसी का पैर पकड़कर मैं नहीं गिड़गिड़ाया। हर व्यक्ति आज आना, कल आना कहकर अंत में हाथ झाड़ देता है। चपरासी की नौकरी भी कोई नहीं दिलवाता। वह जरा नादान है। हुकुम बजानेवालों की जात में पैदा होकर कोई यह कैसे कह सकता है कि मुझे नौकरी नहीं चाहिए अथवा मैं वहां जाकर उस आदमी से नहीं मिलूंगा ? घर बैठे कौन बुलाकर नौकरी दे देगा ? जो कुछ हम कर सकते हैं वह सब हमें करना चाहिए न ? यह बात इसकी समझ में नहीं आती।

इसी से मैं तुझसे इसकी नौकरी के बारे में पूछ रहा हूं।" यह कहकर उन्होंने कंधे पर पड़े तौलिये से अपनी गर्दन पोंछी।

"हाथ की रेखाओं को देखना जन्मपत्री देखने जैसा नहीं है। हाथ में व्यवसाय की कोई अलग रेखा नहीं होती। विभिन्न रेखाओं को देखकर हमें इसके बारे में स्वयं अनुमान लगाना पड़ता है।" कहकर मैंने अपनी बात शुरू की। जैसे ही ध्यान आया कि मैं यों ही बोलता जा रहा हूं, मैं चुप हो गया और उसके दुर्बल हाथ की रेखाओं में जैसे किसी छिपे हुए खजाने को खोजने लगा। मैं नहीं जानता था कि मैं क्या खोज रहा हूं। कुत्ते का भेष धारण करने के बाद भौंकते हुए शरमाना कैसा ?

क्षण भर के लिए उसके हाथों में कुछ खोजने के बाद मैंने पूछा, "इस समय तुम्हारी आयु क्या है ?" मानो वह बड़ी महत्वपूर्ण बात हो।

नाणू बोला, "चौबीस साल पूरे हो चुके हैं, पच्चीसवां चल रहा है। साढ़े तीन महीने बाद पूरे पच्चीस साल का हो जाऊंगा।"

हाथ देखने का नाटक शुरू होने के बाद नाणू ने इस समय पहली बार अपना मुंह खोला था। उसकी आवाज सुनते ही मैं सन्न रह गया। असामान्य रूप से भारी आवाज में वह बोल रहा था। उसके मुंह खोलते ही भीतर से निकली दुर्गंध ने मुझे उतना व्याकुल और दुखी नहीं किया, जितना उसकी भारी आवाज से व्यक्त होती हुई उसकी तीव्र इच्छा और उत्कंठा ने किया था।

कुछ क्षण और हिसाब लगाने का अभिनय करने के बाद अंततः मैं बोला, "नौकरी मिलने में अभी छह-सात महीने और लगेंगे। छब्बीसवें साल के आरंभ में या मध्य में नौकरी मिलेगी। इसके बाद किसी तरह का कष्ट नहीं होगा।" आत्म-रक्षा के विचार से मैंने ये शब्द भी साथ जोड़ दिये, "ऐसा मेरा विचार है।"

मैं उन लोगों को इससे अधिक धोखा नहीं देना चाहता था, अतः "कॉफी तैयार हो गयी या नहीं, देखकर आता हूं," कहकर मैंने वहां से उठने का प्रयत्न किया। किंतु पिच्चुमणी ने मुझे नहीं छोड़ा।

वे मुझसे बोले, "नहीं, तुम नहीं जाओगे। नाणू जाकर देख आयेगा।" और फिर नाणू से बोले, "नाणू, देखकर आ कि कॉफी तैयार हो गयी है या नहीं। यदि तैयार हो गयी हो तो दो कप बढ़िया कॉफी यहां भिजवा देना।" उसने सिर हिलाकर 'अच्छा' कहा और वहां से चला गया।

हाथ देखना अब खेल नहीं, एक गंभीर विषय बन गया था। अतः सभी लड़के-लड़कियां एक-एक करके वहां से खिसक गये थे। अब उस विशाल विवाह-मंडप में पेट के बल सोते हुए उस बच्चे के अतिरिक्त मैं और पिच्चुमणी ही रह गये थे। उन्होंने एक बार चारों तरफ देखा और फिर मेरे दोनों हाथों को कसकर पकड़ लिया।

रूंधे हुए कंठ से वे बोले, "समझ में नहीं आता कि किन शब्दों में तुझे धन्यवाद

दूं। नाणू तनिक नादान है। मेरी तरह जैसे-तैसे अपना काम बना लेने की चातुरी उसमें नहीं है। मेरा हार्ट 'वीक' है। डॉक्टर साहब का कहना है कि उसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। कल ही एकदम रुक सकता है या फिर दस साल तक धड़कता रह सकता है। मुझे हमेशा इसी की चिंता लगी रहती है। अपने रहते हुए यदि मैंने इसे कोई अच्छी नौकरी नहीं दिलवायी तो मेरे जाने के बाद उसे कोई नौकरी नहीं मिलेगी। एक वर्ष के भीतर ही भीतर इसे अवश्य अच्छी नौकरी मिल जायेगी—ऐसा कहकर तूने मुझे आश्वस्त और निश्चिंत कर दिया है। ईश्वर तुझे लंबी आयु दे। तेरा जीवन सब प्रकार से सुखी हो।"

मुझे वहां बैठे रहना अच्छा नहीं लगा।

"अभी एक मिनट में आता हूं।" कहकर मैं झटपट उठा और ऐसा अभिनय करते हुए, मानो बड़ी देर से भूली हुई कोई बात अचानक याद आ गयी हो, तेजी से वहां से खिसक गया। इसके बाद जो कुछ घंटे मैंने वहां बिताये, मैं उनकी नजरों से दूर ही दूर रहा।

इस समय यह समाचार सुनकर कि वे दूर किसी स्थान पर, अनाथ की तरह, एक होटल के कमरे में मृत पाये गये, मुझे सचमुच बहुत दुख हो रहा है।

मैंने अपनी मां से पूछा, "वे किसके लिए लड़का देखने गये थे ? मेरी जानकारी में तो उनके नाणू नाम का एक लड़का ही है। क्या उनकी कोई लड़की भी है ?"

"उसके लड़की कहां है ? एक लड़का नाणू ही है। उस इकलौते लड़के की अच्छा घर देखकर शादी कर देता, तो उसका क्या बिगड़ जाता ? किंतु उस आदमी ने कभी भी अपने परिवार के लिए एक तिनका भी इधर से उठाकर उधर नहीं रखा।"

"फिर वे किसके लिए लड़की देखने गये थे ?"

"अच्छा, तू वह कहानी नहीं जानता ? लो, सुनाती हूं।" कहकर मां ने अपनी बात शुरू की।

"पिच्चुमणी नाणू के लिए नौकरी मांगने किसी बड़े अफसर के पास गये (वे कहां के अफसर थे, यह बात मां नहीं जानती थीं)। उस अफसर ने कहा कि वे इस शर्त पर नौकरी देंगे कि पिच्चुमणी उनकी बेटी के साथ नाणू का विवाह करने के लिए राजी हो जाय। पिच्चुमणी ने उनकी बात मान ली। नौकरी मिलने के बाद उन्होंने सारी बात नाणू को बतायी। नाणू ने उनकी बात टाल दी। लड़की सुंदर नहीं है, भेंगी है, उसकी आवाज अच्छी नहीं है आदि, न जाने क्या-क्या तर्क देकर उस लड़की से विवाह करने से साफ इन्कार कर दिया। पिच्चुमणी ने उसको समझाने की कोशिश की, किंतु उसने उनकी बात बिल्कुल नहीं मानी। 'भेंगे लोग भाग्यशाली होते हैं। तुझे क्या देवलोक की अप्सरा मिलेगी ? क्या तू अपने आप को कामदेव समझता है ? तेरी दृष्टि से देखें तो दुनिया की आधी लड़कियां कुंवारी ही रह जायेंगी।' इस तरह की अनेक बातें पिच्चुमणी ने नाणू से कहीं, किंतु नाणू टस से मस नहीं

हुआ। अंत में उन्होंने उसे अपने वचन की रक्षा करने के लिए इस बात को मान लेने को कहा। इस पर नाणू बोला, 'यह सिनेमा या नाटक तो नहीं कि आप जो चाहें, मैं वहीं करूं ? यदि आपको अपना वचन निभाने की इतनी ही चिंता है, तो आप स्वयं उस लड़की से विवाह कर लीजिए।' तब पिच्चुमणी ने उस अफसर के पास जाकर माफी मांगी और उनके सम्मुख यह प्रतिज्ञा की, 'जब तक मैं आपकी लड़की के लिए कोई अच्छा वर ढूंढ़कर उसका विवाह नहीं करवा देता, तब तक मैं अपने घर में कदम नहीं रखूंगा।' यही कारण था कि वे पिछले पांच सालों से उस लड़की के लिए वर खोजते हुए शहर-शहर भटकते रहे थे।

"तीन साल पहले रामू के विवाह के अवसर पर भेंट होने पर उसने ये सारी बातें मुझे बतायी थीं। उसे शुरू से ही शहर-शहर घूमने की आदत है। रिटायर होने के बाद भी उसे इधर-उधर भटकने के लिए एक़ बहाना मिल गया, बस और कोई बात नहीं। बेटे को किसी तरह नौकरी मिल जाय, इस विचार से उसने बिना सोचे-समझे कुछ भी कह दिया होगा और बाद में उसका दंड भोगा होगा। वैसे उसकी बात पर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता। वह हर बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहता है।" कहकर मां ने अपनी बात पूरी की।

कोई पिच्चुमणी पर विश्वास करे या न करे, मैं उन पर विश्वास करने के लिए तैयार हूं। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैंने उनके बेटे का हाथ देखकर जो कुछ कहा, वह सच निकला। सबसे अधिक प्रसन्नता इस बात की है कि उन्होंने उस दिन मुझसे यह नहीं पूछा कि नाणू का विवाह कब होगा।

दूरी

इंदिरा पार्थसारथी

जनपथ चौक। हरी बत्ती होते ही अब तक शिलाओं की तरह अडिग खड़ी विशालकाय बसें तेजी से चल पड़ीं।

"पिताजी, वह रहा स्कूटर..." कहते हुए कमली अपने पिता वासू का हाथ छुड़ाकर पैदल पार-पथ के दूसरी तरफ जलती हुई लाल बत्ती की ओर बिल्कुल भी ध्यान न देते हुए सड़क पर आड़े भागने लगी।

वासू जोर से चिल्लाया, "कमली ई ई... ।"

उसने निराश होकर पीछे मुड़कर देखा। वासू उसका हाथ पकड़कर तेजी से पीछे खींच लाया।

"मैंने तुम्हें कितनी बार समझाया है कि पैदल पार-पथ की दूसरी तरफ हरी बत्ती के जलने पर ही हमें सड़क पार करना चाहिए ? सात साल की हो गयी, इतना भी नहीं जानती ?"

"पिताजी, वह स्कूटर खाली है। कोई और उस पर सवार हो जायगा।"

"होने दो। हम इस समय सड़क पार नहीं कर सकते।"

"पिताजी, वह देखो सभी सड़क पार कर रहे हैं।"

"एक आदमी गलती करे तो सभी को गलती करनी चाहिए ?"

कमली को अपने पिता पर बहुत गुस्सा आया। आधे घंटे से दोनों स्कूटर के लिए भटक रहे थे। वासू उसे प्लाजा से यहां तक पैदल ही चलाकर ले आया था।

वे लोग बस में जा सकते थे, किंतु हर बस खचाखच भरी हुई थी। बच्चे के साथ भीड़ में धक्कामुक्की करते हुए कहीं बस पर चढ़ा जा सकता है ? वासू इसकी कल्पना भी नहीं कर सका। टैक्सी में जाने की उसकी हैसियत नहीं थी। लोदी कॉलोनी जाने के लिए चार रुपये देने पड़ेंगे। अंतरिम सहायता मिलनेवाली है, सो तो ठीक है। पिछले महीने दीदी की तबियत खराब हो जाने से उसे बंबई जाना पड़ गया था। उस यात्रा के लिए लिया गया कर्ज भी चुकाना है। कर्ज लेना उसे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता, किंतु अचानक खर्च बढ़ जाय तो वह कर्ज लिये बिना कैसे अपना गुजारा करे ?

कमली ने ऊबते हुए कहा, "पिताजी, उस स्कूटर में कोई बैठ गया।"

बच्ची का दुख वह समझ रहा था, किंतु वह करे तो क्या करे ? शाम को पांच बजे के बाद क्नाट प्लेस में कोई खाली स्कूटर नहीं मिलता। स्कूटर का मिलना या न मिलना प्रत्येक व्यक्ति के भाग्य पर निर्भर करता है।

वासू ने सोचा कि भाग्य ने कभी उसका साथ नहीं दिया। वह मेडिकल कॉलेज में भर्ती होना चाहता था। उसने परीक्षा में अच्छे अंक भी प्राप्त किये थे। किंतु इंटरव्यू में जब उससे पूछा गया कि, "दो साल पहले मध्य अफ्रीका में कितने इंच वर्षा हुई थी ?" तो वह इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। अगले साल इंटरव्यू में जाने से पहले उसने इस बात की पूरी जानकारी प्राप्त कर ली कि संसार भर में कहां-कहां वर्षा होती है ? कहां कितनी धूप पड़ती है ? आदि, आदि। अब उससे यह प्रश्न पूछा गया कि, "मेक्सिको में लोग दोपहर के समय क्या करते हैं ?" उस वर्ष भी उसे मेडिकल कॉलेज में प्रवेश नहीं मिला। उसने यह स्वीकार कर लिया और कि बी. ए. पास करके दिल्ली में केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में नौकरी करना ही शायद उसके भाग्य में लिखा है।

"पिताजी, सामने हरी बत्ती हो गयी है।"

"अच्छा, मेरा हाथ पकड़कर चल। भागना नहीं।"

दोनों अब सिंधिया हाउस की तरफ आकर खड़े हो गये।

कमली बोली, "मेरे पैरों में दर्द हो रहा है।" मरीना होटल के पास खड़े स्कूटर पर सवार हो जाते तो वे लोग अब तक घर पहुंच जाते। स्कूटरवाले की बात से लगा कि उसे भी लोदी कॉलोनी की तरफ जाना है। वह वासू को अपने स्कूटर पर बैठाने के लिए तैयार था। इतने में गुस्से से भरी हुई एक लड़की वहां आयी और बोली कि उस स्कूटर को पहले उसने रोका है। स्कूटरवाले ने उससे पूछा कि वह कहां जाना चाहती है। लड़की बोली कि उसे कर्जन रोड जाना है। स्कूटरवाला बोला कि वहां तक पैदल जाया जा सकता है। वासू को लगा कि लड़की ने चूंकि स्कूटरवाले को पहले रोका था, अतः उसका गुस्सा होना उचित ही है। उसने स्कूटरवाले से लड़की को अपने स्कूटर पर बैठा लेने को कहा और स्वयं वहां से दूर चला गया। लड़की ने उसे धन्यवाद नहीं दिया, अपितु अकड़ते हुए स्कूटर पर जा बैठी, मानो अधिकारों की लड़ाई में उसने विजय पा ली हो। इस बात का वासू को बहुत दुख हुआ। यदि वह उस समय उचित-अनुचित का इतना ध्यान नहीं रखता तो उस समय कमली के पैरों में दर्द होने की नौबत ही नहीं आती।

यदि हम जीवन के आधारभूत सिद्धांतों को महत्व नहीं देते, तो हमारे जीवित रहने का क्या लाभ ? किंतु निरंतर जटिल रूप धारण करते हुए समाज में क्या ऐसा करना संभव है ?

प्लाजा के पास तीन स्कूटर खाली खड़े थे। कमली का हाथ पकड़े हुए वासू

बड़ी दयनीय स्थिति में खड़ा था। किसी ने भी आंख उठाकर उसकी ओर नहीं देखा। वासू ने पैर पर पैर चढ़ाकर बैठे हुए सिगरेट पीते हुए व्यक्ति से कहा, "मुझे स्कूटर चाहिए।"

उसने वासू की तरफ देखे बिना पूछा, "कहां जाना है ?"

"लोदी कॉलोनी।"

वह कुछ नहीं बोला। जोर से सिगरेट का कश लेते हुए धुआं छोड़ने लगा। दूसरा बोला यदि लाल किला जाना हो तो वह उसे ले जाने को तैयार है। वासू ने सोचा–काश ! उसका मकान लोदी कॉलोनी में न होकर लाल किले के पास होता। इतने में दीवार के पास खड़े होकर लघुशंका करके अपने पायजामे को कसकर बांधते हुए एक आदमी उसके पास आया और बोला कि चार रुपये देने पर वह उसे लोदी कॉलोनी पहुंचा देगा। 'टैक्सी में भी चार ही रुपये लगेंगे। इतनी हैसियत होती तो स्कूटरवालों से मिन्नतें क्यों करता' यह सोच वासू को बड़ा क्रोध आया। स्वयं वह नहीं जान सका कि उसके क्रोध का आधार क्या है।

कमली बोली, "पिताजी, वह रहा स्कूटर।"

उस स्कूटर का ऊपरी हिस्सा खुला हुआ था। उसमें बैठकर धूप और हवा का आनंद लिया जा सकता था। चार्ट देखकर किराया देने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उस पर किराया बतानेवाला नया मीटर लगा हुआ था। वासू तेजी से दौड़ा। ऐसा लगा मानो उसने अपने जीवन का लक्ष्य पा लिया हो। उसने दो बार स्कूटर वाले से पूछा कि क्या वह चलने को तैयार है। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। तीसरी बार पूछने पर भी वह चुप रहा। कुछ देर बाद वह गुस्से से बोला, "रेडियेटर गर्म हो गया है। एक घंटे तक कहीं नहीं जाऊंगा।" वासू को लगा कि रेडियेटर की अपेक्षा वह स्कूटरवाला ज्यादा गर्म हो रहा है।

वासू यह सोचकर खीझ उठा कि वह उस स्कूटर पर भी नहीं बैठ सका जो उसे बहुत पसंद आया था। स्कूटर का किराया बढ़े छह महीने हो चुके थे। पचहत्तर फीसदी स्कूटरों पर रेट-चार्ट लटकते दिखायी देते थे। रेट-चार्ट देखकर हिसाब लगाकर किराया देने के लिए व्यक्ति को अपनी समूची बौद्धिक शक्ति का उपयोग करना पड़ता था। ऐसा करने पर वह धोखा खा सकता था। नया मीटर देखकर चाहे पुराने मीटर के हिसाब से बननेवाले किराये से ज्यादा किराया देना पड़े, तो भी कोई हर्ज नहीं। वासू ने सोचा कि पुराने मीटरवाले स्कूटर पर बैठकर धोखा न खाना विरोधी शक्तियों से अपनी रक्षा करने जैसा है। दिल्ली जैसे बड़े शहरों में रहनेवाले व्यक्ति को यदि हर पल इसी बात की चिंता लगी रहे कि कहीं वह धोखा न खा जाय तो वह जीवन में उन्नति कैसे कर सकता है ?

अब कमली ने उससे पूछा, "पिताजी, हम टैक्सी में चलें ?"

इस समय उसके सामने यही सचाई थी कि उसके पैरों में दर्द हो रहा है। केंद्रीय

सरकार के कार्यालय में असिस्टेंट की पद पर कार्यरत कोई व्यक्ति महीने में अंतिम सप्ताह में टैक्सी में जाने की बात कैसे सोच सकता है–इस आर्थिक समस्या की ओर उसका ध्यान बिल्कुल नहीं गया। इस समय की बात छोड़ो, महीने का पहला सप्ताह क्यों न हो, वह किसी भी दिन बिना अपराध-बोध के टैक्सी में कहीं आ-जा नहीं सकता था। ऐसा लगता है कि अर्थ पर आधारित, यंत्रवत् चलते हुए इस समाज के आचरण-संबंधी नियम व्यक्ति को अपराध-बोध से छटपटाने के लिए बाध्य कर देते हैं।

"अब कोई स्कूटर नहीं मिलेगा," कहकर कमली ने मानो शाप दिया।

"जल्दी मत कर, अवश्य मिलेगा।"

वह जान गयी कि पिता उसे टैक्सी में ले जाने को तैयार नहीं हैं। अतः बोली, "हम बस में चलेंगे !" उसे लगा कि निरंतर स्कूटर की खोज में भटकने से कहीं अच्छा है कि वे बस से चले जायें।

"इस भीड़ में तू चढ़ पायेगी ?"

"और नहीं तो क्या करें ? क्या आप चाहते हैं कि हम घर न जाकर यहीं खड़े रहें ?"

उसके इस प्रश्न ने वासू के मन की आंखों के सम्मुख भविष्य का एक भयंकर चित्र प्रस्तुत किया। उन्हें स्कूटर नहीं मिला। वे दोनों स्कूटर की खोज में जीवन भर क्नाट प्लेस में भटकते रहे। वह बूढ़ा हो गया है। कमली भी जवान हो गयी है। स्कूटरवालों की अगली पीढ़ी भी उन्हें अपने स्कूटर पर बैठाने के लिए तैयार नहीं होती।

"पिताजी, देखिए यह बस काफी खाली है। इस पर चलते हैं।"

वासू ने मुड़कर देखा। बस लगभग खाली थी, किंतु वह लोदी कॉलोनी नहीं, मद्रास होटल तक जा रही थी। इसी से उसमें भीड़ नहीं थी।

वासू बोला, "यह बस लोदी कॉलोनी नहीं जायगी।"

"सभी बसें लोदी कॉलोनी क्यों नहीं जातीं ?"

इस प्रश्न का उत्तर वह कैसे दे ? लोदी कॉलोनी रोम तो नहीं कि सारी सड़कें उस ओर ही जायें। क्षण भर के लिए उसने सोचा कि क्या वह कमली को यह समझा सकेगा कि सरकार किस उद्देश्य से बसें चलाती है। समाज की चिंता करनेवाली सरकार को व्यक्ति-विशेष की कोई चिंता नहीं है। जब व्यक्ति अपने अधिकारों का त्याग करने के लिए तैयार हो जाता है, तभी समाज का उदय होता है। क्या कमली इन सब बातों को समझ सकेगी ?

कमली ही क्यों, ये बातें किसी और की समझ में भी कहां आती हैं ? ऐसा लगता है कि व्यक्ति समाज में इसीलिए प्रवेश करता है, कि वह समाज नामक अवधारणा का अपनी सुविधानुसार प्रयोग कर सके। मुट्ठी-भर लोग जो ऐसा करने

में सफल हो जाते हैं, वे अपने आपको 'फ्रेंकनस्टीन'[1] नामक यांत्रिक भूत समझकर सभी व्यक्तियों पर शासन करने लगते हैं। व्यक्तिगत स्तर पर किन्हीं नियमों में बंधकर समाज के आचरण संबंधी नियमों का पालन करना किसी सीमा तक समाज की यांत्रिक कठोरता के विरुद्ध संघर्ष करने जैसा ही तो है ? जब विश्वामित्र ने देखा कि हरिश्चंद्र सत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं बोलते, तब उन्हें कितनी ईर्ष्या हुई थी, कितना क्रोध आया था ?

"पिताजी, वह देखो मूर्ति मामा जा रहे हैं !"

वासू ने मुड़कर देखा। कमली की आवाज सुनते ही मूर्ति ने गाड़ी रोक दी। वह वासू का सहपाठी था। कॉलेज में पढ़ते समय उसका नाम गोपालन था। नाम की शायद इतनी महिमा थी कि वह मक्खन के बदले अन्य छात्रों की साइकिल आदि चुराकर बेच दिया करता था। एक दिन वह पकड़ा गया। वह चोरी उसने और नादन नामक दूसरे छात्र ने मिलकर की थी। दोनों को छह महीने की जेल की सजा हुई। नादन इस समय मद्रास में प्रसिद्ध 'क्रिमिनल लॉयर' है। गोपालन 'मूर्ति' के नाम से दिल्ली की एक कंपनी में 'लायसन ऑफिसर' के रूप में कार्यरत है।

दो-तीन महीने पहले वासू मूर्ति से उद्योग भवन में मिला था। 'गोपालन' कहकर पुकारने पर उसने तनिक चौंककर पीछे देखा। फिर ऐसा व्यवहार करने लगा मानो वह वासू को जानता ही न हो। वह बोला, "मेरा नाम मूर्ति है, गोपालन नहीं। आप मुझे पहचानने में भूल कर रहे हैं।" उसकी बात सुनकर वासू चकराया। क्या दो व्यक्तियों की शक्ल-सूरत इतनी समान हो सकती है ? दो दिन बाद जब वह वासू के घर आया तब सारी बातें स्पष्ट हो गयीं। "अब से मेरा नाम मूर्ति है। तू गोपालन को भूल जा। मैं यहां काफी सुखी हूं। जो काम करता हूं, वह लगभग उसी तरह का है, जैसा कॉलेज के दिनों में किया करता था। उस समय नादन मेरा पार्टनर था और इस समय हमारी सरकार... । मेरे पास अपनी गाड़ी है। सुंदरनगर में रहता हूं। किसी दिन तू मेरे घर जरूर आना।"

मूर्ति के घर जाने के बाद ही वासू ने जाना कि वह उद्योग भवन में उसकी नौकरी का लाभ उठाना चाहता है। उसने उसके घर जाना छोड़ दिया, किंतु मूर्ति उसके घर पांच-छह बार आ चुका है।

"हलो वासू ! कहां जाना है, घर ?"

"हां, घर ही जा रहे हैं।" कहकर कमली ने वासू को विश्वासभरी दृष्टि से देखा।

एक क्षण वासू ने सोचा, 'स्कूटर तो मिला नहीं, क्यों न इसके साथ चला जाऊं ?' दूसरे ही क्षण उसने अपने आप से कहा, 'नहीं। मैं उसका एहसानमंद हूं, ऐसा विचार मेरे मन में कदापि उत्पन्न नहीं होना चाहिए। यह विचार ही उससे

---

1. प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि शैली की पत्नी मेरी शैली के उपन्यास 'फ्रेंकनस्टीन मौंस्टर' का प्रमुख पात्र।

अन्य अनेक सुविधाओं की प्राप्ति की इच्छा करने के लिए खोखली दलील देगा। मूर्ति तो इसी ताक में है कि मैं उससे कुछ मांगने की स्थिति में पहुंच जाऊं। समाज उसे कहते हैं जहां एक व्यक्ति दूसरे के साथ मिल-जुलकर रहता है। आज इसका यह रूप कैसे हो गया कि यहां एक व्यक्ति दूसरे का लाभ उठाते हुए समाज द्वारा प्रस्तुत सभी सुविधाओं को अपने वश में कर लेता है ! मूर्ति के साथ जाने का तात्पर्य होगा समाज के वर्तमान स्वरूप का समर्थन। तत्कालिक सुविधा के लिए क्या हमें अपने सिद्धांतों का त्याग करना चाहिए ? कदापि नहीं।'

वासू बोला, "मैं नहीं आऊंगा, तू जा।"

"मैं लोदी कॉलोनी की तरफ ही जा रहा हूं, आ जा।"

"तू दूसरी तरफ जा रहा है और मुझसे कहता है कि लोदी कॉलोनी जा रहा हूं ?"

"यहां एक व्यक्ति से मिलकर मुझे लोदी कॉलोनी ही जाना है। तू भी आ जा।"

"तू सुंदरनगर रहता है। मेरे कारण लोदी कॉलोनी की तरफ से घूमकर जायेगा ? तू जा, मैं नहीं आऊंगा, थैंक यू !"

"इतने नखरे क्यों कर रहा है ? मैं उद्योग भवन आकर तुझे परेशान नहीं करूंगा। ठीक है न ? आई नो लॉट्स ऑफ अदर पीपुल इन उद्योग भवन।"

इसने यह बात क्यों कही ? क्या यह मुझसे कहना चाहता है कि दफ्तर में तू मामूली-सा अफसर है। मुझे तेरी सहायता की जरूरत नहीं। अथवा क्या यह मुझे इस बात का संकेत दे रहा है कि जब मैं ऐरे-गैरे व्यक्तियों को रुपये देने को तैयार हूं तो तू मेरा सहपाठी होकर स्थिति का लाभ क्यों नहीं उठा लेता ? पैसों से कौन-सा काम नहीं साधा जा सकता ? पैसे होते तो मुझे यहां खड़े होकर इस तरह इसकी भावनाओं की छानबीन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मैं कभी का टैक्सी से घर चला गया होता। शायद मेरे पास अपनी गाड़ी होती।

"क्या सोच रहा है ? झटपट गाड़ी में चढ़ जा।"

"नो...प्लीज.." कहकर वासू कमली का हाथ पकड़कर खींचते हुए आगे बढ़ गया।

कमली ने गुस्से से अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा, "मुझे पैदल चलना आता है।"

वासू उसके गुस्से का कारण समझ गया। वह कुछ नहीं बोला।

सिंधिया हाउस के सामने दो स्कूटर खड़े थे। उनके ड्राइवर वहां दिखायी नहीं दिये। एक स्कूटर के पास खड़े होकर वासू ने इधर-उधर दृष्टि घुमायी। इतने में कमली ने स्कूटर का हॉर्न बजाया।

"नहीं, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए।"

अचानक कहीं से एक ड्राइवर वहां प्रकट हुआ। उसने पूछा,

"कहां जाना है ?"

"लोदी कॉलोनी।"

"वहां से वापस भी आना है ?"

"नहीं।'

ड्राइवर ने बिना कुछ कहे बीड़ी सुलगा ली।

"चलोगे कि नहीं ?"

"इस समय मेरी बारी नहीं है। आप दूसरे स्कूटरवाले से पूछ लीजिए।"

"उस स्कूटर का ड्राइवर कहां है ?"

"नहीं मालूम।"

इतने में पांच-छह लोग स्कूटरों के लिए वहां इकट्ठे हो गये। सभी को एक ही उत्तर सुनने को मिला।

पंद्रह मिनट बाद दूसरा स्कूटरवाला वहां आया। वासू उसके पास दौड़ा और बोला, "मुझे लोदी कॉलोनी जाना है।"

इतने में एक सुंदर सी लड़की ने आकर मुस्कुराते हुए उससे पूछा, "काकानगर जाना है, चलोगे ?"

जैसे ही स्कूटरवाले ने लड़की से स्कूटर पर बैठने को कहा, वासू बोला, "मैं यहां पंद्रह मिनट से आपका इंतजार कर रहा हूं। आप चाहे तो इस स्कूटरवाले से पूछ लीजिए... ।"

जैसे ही वासू ने गवाही देने के लिए दूसरे स्कूटरवाले को पुकारा, उसने दूसरी ओर मुंह फेर लिया। वासू ने उसे नहीं छोड़ा। उसके पास जाकर पूछा, "बताओ, यहां कौन पहले आया था ?"

उस स्कूटरवाले ने हंसते हुए कहा, "कोई भी पहले आये, इससे क्या ? उधर देखो, वह स्कूटरवाला उस लड़की को लेकर चला गया।"

वासू को लगा कि स्कूटर पर बैठी लड़की मानो 'टा-टा, बाइ-बाइ' कहकर उसे चिढ़ा रही है। स्कूटर चला गया। वासू का शरीर क्रोध से कांपने लगा। उसके मन में यह क्रूर विचार जागा कि वह वहां खड़े उस दूसरे स्कूटर, टैक्सी-स्टैंड पर खड़ी टैक्सियों, सड़क पर चलती कारों और बसों—सभी को चूर-चूर कर दे। आज से दस साल पहले कुंभकोणम् से स्वामिमलै जाने के लिए उसने बस, स्कूटर या टैक्सी की प्रतीक्षा कहां की थी ? आज वह कमली को गोद में उठाकर क्या लोदी कॉलानी तक पैदल नहीं चल सकता ?

हो सकता है कि कमली पैदल चलने के लिए जिद करे। यदि वह उसे समझा-बुझाकर गोद में लेकर चल भी पड़े, तो उसे पागल की ही संज्ञा मिलेगी। आज के इस जटिल समाज में हर व्यक्ति जानता है कि समाज का अर्थ है 'अपने अतिरिक्त बाकी सभी लोग' और उसे उनके विचारों के अनुरूप ही जीवन-यापन करना पड़ता है। हमें इस बात का डट कर विरोध करना चाहिए।

वासू बोला, "आओ कमली, हम पैदल चलें।"

उसने आश्चर्य से पूछा, "पैदल !"

वासू ने कहा, "जब थक जाओ तब मुझे बता देना, मैं गोदी में उठा लूंगा।"

कार और टैक्सियों की बहुत सी कतारें उनके पास होकर निकलती रहीं।

वासू और कमली को अभी बहुत दूर जाना है।

युद्ध और शांति

नील पदमनाभन

"अम्मा..."

बहुत करीब से आती हुई, धीमी किंतु साफ सुनायी देने वाली उस आवाज के कानों में पड़ते ही मारियम्मै जान गयीं कि वह आवाज किसकी है, किंतु उन्हें एकबारगी विश्वास नहीं हुआ।

क्या चेल्लैया आ गया ?

मारियम्मै की आंखें भारी हो गयीं।

चार दिनों से भूखे रहने के कारण उत्पन्न थकान, ज्वर की तेजी और बुढ़ापे की कमजोरी के कारण उनकी दृष्टि कुछ धुंधली हो गयी थी, किंतु उसके चौड़े चेहरे और दोनों ओर से तनी हुई लंबी-लंबी मूंछों को देखकर वे अपनी धुंधली दृष्टि से भी उसे पहचान गयीं।

मां को बुखार है या नहीं, यह देखने के लिए जैसे ही उसने अपना हाथ उनके माथे पर रखा, उन्होंने उसका हाथ कसकर पकड़ लिया, मानो मंझधार में डूबती हुई को कोई सहारा मिल गया हो।

मारियम्मै के चेहरे पर प्रसन्नता की रेखाएं खिंच गयीं। उनकी आंखें सहसा सजल हो उठीं। चेल्लैया कुछ नहीं बोला। भर्राये हुए स्वर में मां ने पूछा, "तू कब आया ?"

"मैं दो-तीन घंटे पहले आ गया था। आते ही मैंने तुम्हें पुकारा भी था। थकी हुई होने के कारण तुम गहरी नींद सो रही थीं। मैंने सोचा तुम्हें जगाना ठीक नहीं, इसी से सीधे छत पर जाकर भाई-बहनों से गप्पें मारने लगा।"

"अच्छा !"

मारियम्मै के चेहरे पर कुछ समय पहले विश्वास का जो प्रकाश अचानक प्रकट हुआ था, वह एकदम लुप्त हो गया। उनका चेहरा फिर से निराशा के अंधकार से घिर गया।

"तू सचमुच बहुत जल्दी आ गया था ?"

मां ने एक लंबी सांस छोड़ी।

चार-पांच दिनों से वे बिस्तर पर इस तरह पड़ी हुई थीं कि उन्हें दिन और रात का कोई अंतर मालूम न हुआ। इस समय वे चारों ओर उड़ती-उड़ती दृष्टि से देखने लगीं।

वहां बिजली के बल्ब का मंद प्रकाश फैला हुआ था। सामने दिखायी देनेवाली खिड़की के सींकचे मानो उसके पीछे से दिखायी देनेवाले गहरे नीले आकाश में दूर-दूर तक लंबी-लंबी रेखाएं खींच रहे थे।

क्या रात हो गयी ? तब तो मेरी बहू तमिलक्कोडि भी स्कूल से आ गयी होगी।

गली में लड़के-लड़कियां आंखमिचौनी खेल रहे हैं और उसका शोर सुनाई दे रहा है। गोद के बच्चे को कमर पर लादे दहलीज पर खड़ी दो-चार स्त्रियों के चेहरों की झलक भी जब-तब दिखायी दे जाती है।

नीचे के हिस्से में रहनेवाली मकान-मालकिन स्वर्णम्मा धीरे से बाहर आकर दहलीज पर खड़ी हो गयी।

"चाहे कुछ भी हो, तेरी मां को इस उम्र में इतनी जिद नहीं करनी चाहिए। पिछले चार-पांच दिनों से खाना नहीं खा रही हैं। चाहे मैं मर जाऊं, किंतु अपने बड़े बेटे के बैंगलूर से आने के पहले न मैं पानी पिऊंगी और न ही दवा लूंगी, यह कहकर बिस्तर पर पड़ी है... ।"

वह पैंट और जूते पहने हुए था। अतः जमीन पर बैठने में उसे कठिनाई होती, किंतु इसकी चिंता किये बिना, मां जिस चटाई पर लेटी हुई थी, उसके एक कोने में थोड़ी जगह बनाकर वह जैसे-तैसे बैठ गया।

"अच्छा तो तुम चार-पांच दिनों से उपवास कर रही हो। अब भी कुछ पियोगी या नहीं ?"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए। हो सके तो थोड़ा जहर ला दे। इतने दिन जी ली, यही काफी है।"

'सीधे मेरे पास आकर सारी जानकारी लेने के बदले यह तंगसामी और उसकी प्यारी पत्नी तमिलक्कोडि से मिलकर, उनके माध्यम से सारा समाचार जानकर, आराम से मेरे पास आया है' यह सोचकर उन्हें चेल्लैया पर भी क्रोध आया। अपना सिर पीटते हुए वे रो पड़ीं।

चेल्लैया उस दृश्य को देखकर अत्यंत दुखी हुआ है, यह उसके चेहरे से साफ झलक रहा था।

वह तंगसामी से दस साल बड़ा था। उस समय चेल्लैया की आयु 35 वर्ष की लगभग थी। वह नागरकोइल स्थित नागम्माल मिल में मिस्त्री के पद पर काम कर रहा था। किसी नयी मशीन के बारे में पूरी जानकारी हासिल करने के लिए छह महीने की ट्रेनिंग पर मिलवालों ने उसे बैंगलूर भेजा था। उसे बैंगलूर पहुंचे तीन महीने भी नहीं हुए थे कि मां का अर्जेंट पत्र पाकर वह तिरुवनंतपुरम् आ गया।

छोटे भाई की अपेक्षा वह मां से अधिक प्यार करता था। इस बात को मारियम्मै भली प्रकार जानती थी।

"अच्छा, तो तुम मेरे छोटे भाई के घर की चाय-वाय नहीं पियोगी। मैं बाजार से ला दूं तो पी लोगी न ? अभी आया।" कहकर वह उठ खड़ा हुआ।

मारियम्मै की स्वीकृति की प्रतीक्षा किये बिना वह फुर्ती से बाहरी दरवाजे तक पहुंच गया। वहीं से मुड़कर उसने स्वर्णम्मा से कहा, "चाय लाने के लिए कोई छोटा बर्तन हो, तो दे दीजिए।" उसकी बात सुनकर वे अंदर गयीं और स्टील का एक ढक्कनदार बर्तन लाकर उसे दिया। बर्तन लेकर वह बाहर निकला और गली में आगे बढ़ गया।

अब चेल्लैया के लौटने पर ही खेल पुनः शुरू होगा, यह जानकर और बीच के उस समय को इंटरवल मानकर, तमाशा देखने के लिए वहां एकत्रित अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियां अपने-अपने घर लौट गयीं।

अपनी भारी पलकों को खोल न पाने के कारण मारियम्मै उस बरामदे के एक कोने में सिकुड़ी हुई अकेली पड़ी रहीं।

उन्हें देखकर समझना मुश्किल था कि वे सो रही हैं या बेहोश हैं। सभी तरफ शोर था। ऊपर उनके छोटे बेटे के परिवारवालों का कोलाहल। नीचे के हिस्से में स्वर्णम्मा के परिवारवालों का शोर। घर के भीतर और बाहर लोगों के चलने-फिरने की आवाजें।

बुखार चढ़ने से पहले तक वे भूख की पीड़ा का अनुभव भली प्रकार कर सकी थीं, पर इस समय उन्हें भूख का कोई अनुभव नहीं हो रहा था। फिर भी वे मन ही मन सोचने लगीं कि चेल्लैया के हाथ से गरम-गरम चाय लेकर, उसे पीकर अपनी भूख-हड़ताल समाप्त कर दूं, तो अच्छा है।

थोड़ी देर बाद गली में जूतों के चर्र-मर्र की आवाज आयी और चेल्लैया भीतर आया। उसके एक हाथ में डबलरोटी का छोटा पैकेट और संतरे थे और दूसरे हाथ में एक बर्तन में गरम-गरम चाय।

उसने अपनी पैंट की जेब से रंगबिरंगी पन्नियों में बंद छह-सात गोलियां निकालीं। पन्नी फाड़कर एक गोली अपने हाथ में ली। मारियम्मै को हाथ का सहारा देकर बैठाकर वह गोली उनके मुंह में डाल दी और उनके नखरों की चिंता किये बिना थोड़ी-थोड़ी करके उन्हें सारी चाय पिला दी। एक संतरा और डबलरोटी का एक टुकड़ा जबरदस्ती उन्हें खिलाकर लिटा दिया। फिर एक सिगरेट सुलगाकर, पास की दीवार का सहारा लेकर चेल्लैया आराम से चटाई पर बैठ गया।

अब मारियम्मै को देखकर लगा कि उनमें थोड़ी शक्ति आ गयी है।

चेल्लैया ने धीरे से बात शुरू की, "अब बताओ कि तुमने मुझे तुरंत आने का आदेश देते हुए पत्र क्यों लिखा था ?" वे बोलीं, "तेरे प्यारे भाई और भाई की पत्नी

ने तो तुझे सब कुछ नमक-मिर्च लगाकर बता दिया होगा ? अब मेरे कुछ कहने की जरूरत क्या है ?" उनकी आवाज से झलकते व्यंग्य और उनकी खीझ की परवाह न करते हुए वह फिर बोला, "उन्होंने जो कुछ कहा उसकी चिंता मत करो। तुम बताओ कि क्या हुआ था।" यह कहकर जैसे ही उसने सिर उठाया, अड़ोस-पड़ोस की कुछ स्त्रियों को दहलीज पर खड़ी पाया।

उसकी आंखों ने जो कुछ कहा, उसे स्वर्णम्मा ने भांप लिया। उस मकान के नीचे के हिस्से में स्वर्णम्मा के साथ उनका बेटा, बहू, बेटे की दो जवान बेटियां रहते थे। घर के खर्च के लिए कुछ पैसे मिल जायेंगे, यही सोचकर उसने मकान का ऊपर वाला हिस्सा तिरूवनंतपुरम्-स्थित आइ. जी. के दफ्तर में क्लर्क की नौकरी मिल जाने के कारण हाल ही में कन्याकुमारी जिले से आये तंगसामी के परिवार को 40 रुपये प्रति माह के हिसाब से किराये पर दे दिया था। अपने बेटे तंगसामी से झगड़कर मारियम्मै इस समय जिस बाहरी बरामदे में पड़ी हुई हैं, वहीं से होकर ऊपर रहने वालों को नीचे पिछवाड़े बने स्नानघर या बाहर गली में जाना या वहां से लौटना पड़ता है। तंगसामी के परिवारवालों को सिर्फ मकान का ऊपरी हिस्सा किराये पर दिया गया है। वे लोग इस बरामदे का उपयोग आने-जाने के लिए एक रास्ते के रूप में ही कर सकते हैं। इससे अधिक उनका इस पर कोई अधिकार नहीं।

फिर भी मारियम्मै पिछले चार-पांच दिनों से यहां पड़ी हुई हैं। इस समय उनका बड़ा बेटा चेल्लैया भी यहीं बैठा हुआ है। मैंने उन्हें ऐसा करने से कहां रोका ? लेकिन यदि मेरी परिचित आस-पड़ोस की औरतें यहां तमाशा देखने आती हैं तो मैं उन्हें, 'जाओ, अपना-अपना काम करो' कहकर यहां से कैसे भगा सकती हूं। अपने चेहरे से इन भावों को व्यक्त करती-सी स्वर्णम्मा वहीं खड़ी रहीं।

चेल्लैया इन सब बातों को जानता था। अतः उसने किसी की परवाह नहीं की। वह बड़े ध्यान से मां की बातें सुनने लगा।

"बेटा चेल्लैया...तू तो जानता है कि तंगसामी दफ्तर जाने के लिए हर रोज सुबह नौ बजे घर से चल देता है। पंदुरै स्थित एक स्कूल में अध्यापिका के रूप में काम करनेवाली तमिलक्कोडि भी सुबह सात बजे घर से चल देती है। गोद के बच्चे को मेरे जिम्मे छोड़ जाती है। मैं इस बुढ़ापे में मुंह-अंधेरे पांच बजे के करीब उठकर खाना तैयार करके उसे देती हूं। तंगसामी सुबह जाता है तो शाम को ही दोबारा उसकी सूरत दिखायी देती है। दोपहर को किसी लड़के के हाथ उसका खाना भिजवा देती हूं। बच्चे को संभालना, रात का खाना तैयार करना, अगले दिन सुबह नाश्ते के समय दोसा तैयार करने के लिए दाल-चावल पीसना—ये सभी काम इस बुढ़ापे में मैं अकेली ही करती रही।"

मारियम्मै ने अब तक जो दुख झेले थे, उनके बारे में सोच-सोचकर वर्णन करते हुए अचानक उनका गला भर आया।

चेल्लैया के यह पूछते ही कि, "मां, क्या इस समय किसी ने यह कहा है कि तुमने कोई दुख नहीं झेला ?" मारियम्मै को और गुस्सा आ गया।

"कोई ऐसा कहेगा तो क्या भगवान चुप रहेगा ? लेकिन मैं पूछती हूं कि क्या इन दोनों ने मुझे अपनी नौकरानी समझ लिया है ? बड़े ठाठ से दोनों नौकरी करने निकल जाते। मैं अकेली घर में पड़ी-पड़ी सारे दुख सहती रहती। मैंने इनके भोजन का प्रबंध किया। इनके बच्चे का पालन-पोषण किया। अंत में उस बच्चे का जन्मदिन मनाने इन लोगों ने तमिलक्कोडि के मायके मुलमुट्टु जाने की सोची। जब ये दोनों बच्चे को लेकर जा रहे थे, तब मुझसे कहकर जाते, तो इनका क्या बिगड़ जाता ? क्या मैं भी इनके साथ चली जाती ?"

इतना कहते-कहते मारियम्मै को रोना आ गया। वे आगे कुछ बोल न सकी। बाकी सारी बातें स्वर्णम्मा ने चेल्लैया को बतायीं।

चार महीने पहले की बात है। एक दिन मारियम्मै मकान के पिछवाड़े जाकर नहा-धोकर जब ऊपर अपने घर पहुंची तो उन्हें वहां न अपना बेटा दिखायी दिया और न ही अपनी बहू। पालने में उनका पोता भी नहीं था। जब अचानक उन्हें ध्यान आया कि अगले दिन उनके पोते का पहला जन्मदिन है, तब उनके दुख और क्रोध की सीमा न रही। अपने बेटे का पहला जन्मदिन मनाने दोनो कहां गये होंगे, इसे मारियम्मै अच्छी तरह जानती थीं, किंतु उन दोनो का यह व्यवहार उनसे सहा नहीं गया। उन्होंने जल्दी-जल्दी अपना सामान बांधा, ऊपरवाले अपने मकान का दरवाजा बंद कर उसमें ताला लगाया और नीचे आकर स्वर्णम्मा के हाथ में चाभी देते हुए बोलीं–

"इतने दुख सहकर मैंने उस बच्चे का पालन-पोषण किया। ये लोग उसका जन्मदिन मना रहे हैं और चाहते हैं कि मुझे इसकी खबर तक न हो। लोग नौकरानी को भी इससे ज्यादा आदर देते हैं। यहां सगी मां का भी कोई मूल्य नहीं। जो लोग मेरा आदर नहीं करते, मैं उनके यहां कदापि नहीं रहूंगी। मैं अपनी बेटी के पास पणकुडि चली जाऊंगी। जब स्कूल खुल जायेंगे और दोनों नौकरी पर जाने लगेंगे, तब देखती हूं कि कौन आकर उन्हें खाना बनाकर देता है।" ऐसा कहकर मारियम्मै पणकुडि में रहनेवाली अपने बेटी के घर चली गयीं।

इसके बाद जो कुछ घटित हुआ, उसका विवरण भी स्वर्णम्मा ने ही चेल्लैया को दिया।

"बच्चे का जन्मदिन मनाकर दो-तीन दिन बाद जब तंगसामी और तमिलक्कोडि घर लौटे, तब मैंने उन्हें बताया कि तुम्हारी मां बहुत दुखी होकर पणकुडि चली गयी है। उस समय स्कूल बंद हो चुके थे। अतः यह समाचार पाकर वे अधिक चिंतित नहीं हुए ! स्कूल खुलने का दिन पास आने पर तमिलक्कोडि अपने मायके गयी और मां के कहे अनुसार 10-12 साल की एक लड़की को अपने साथ लेकर लौटी। स्कूल

खुलने के बाद, पिछले दो महीनों से तमिलक्कोडि सुबह-सुबह उठकर नाश्ता, खाना आदि तैयार कर, बच्चे को उस लड़की के पास छोड़कर, अपने खाने का डिब्बा लेकर स्कूल जा रही थी। मुझसे उसकी हालत देखी नहीं गयी। मैंने ही दो-तीन बार तंगसामी से कहा, 'बेचारी ! अपनी मां को चिट्ठी लिखकर बुलवा लो न।' 'बिल्कुल नहीं, जैसे गयी हैं, वैसे ही आ जायेंगी। वे क्या मेहमान हैं कि मैं उन्हें यहां आने का निमंत्रण दूं ?' यह कहकर तंगसामी मेरी बात टाल देता था।"

अब तक मारियम्मै का मन कुछ शांत हो चुका था। घर में जो कुछ हुआ था, उसका विवरण देते हुए वे चेल्लैया से बोलीं, "मां की ममता के ही कारण मैं यह सोचकर बेटे की राह देखते हुए पणकुडि में बेटी तायि के घर पड़ी रही कि स्कूल खुलने के बाद मेरा बेटा तंगसामी मुझे लेने आयेगा, अवश्य लेने आयेगा, किंतु स्कूल खुलने के दो महीने बाद भी उसने मुझे घर बुलाने के लिए एक चिट्ठी तक नहीं डाली। उसका दिल जैसे पत्थर का हो गया था। जब तक वह नहीं बुलायेगा तब तक मैं भी नहीं जाऊंगी, यह सोचकर मैं वहीं पड़ी रही। इस बीच दामाद का तबादला मदुरै हो गया। वहां मकान का प्रबंध किये बिना पत्नी-बच्चों को ले जाना ठीक न होगा, यह सोचकर उसने उन्हें वहीं तक्कलै में रहनेवाले अपने माता-पिता के घर पहुंचा दिया और अकेले ही मदुरै जाने का निश्चय किया। अब मैं वहां कैसे रह सकती थी। अतः सीधे यहां चली आयी। यदि तू होता तो मैं तेरे पास नागरकोइल ही आती। तू तो बैंगलूर चला गया है न !" कहकर मारियम्मै अत्यंत दुखी हुई।

चेल्लैया चुपचाप बैठा हुआ था कि मां को जो कुछ कहना हो, कह दें। कुछ रुककर वे बोलीं, "जब मैं यहां पहुंची तब दोपहर हो चुकी थी। घर में सिर्फ वह लड़की नौकरानी थी जो पोते की देखभाल कर रही थी। जब मैंने पोते को अपने हाथों में लिया, मेरे दुःख की कोई सीमा न रही। वह बहुत दुबला हो गया था। तंगसामी के दफ्तर से लौटने का समय नहीं हुआ था। उसके लौटने के कोई दो घंटे बाद ही तमिलक्कोडि स्कूल से लौटती थी। मुझे जोर की भूख लग रही थी। मैंने रसोईघर में जाकर देखा। वहां तमिलक्कोडि के लिए शाम को खाने लायक थोड़ा सा भात पड़ा हुआ था। मैंने अटारी पर रखे डिब्बे में से थोड़ा सा रागी का आटा निकालकर गूंथा। उसकी एक रोटी सेंककर खायी और ठंडा पानी पी लिया। स्कूल से लौटते ही उस अफसरानी ने 'यह आटा तो मैं अपनी मां के घर से लायी थी। महारानी ने बिना हाथ-पैर चलाये उसे खा लिया,' वगैरह कहकर मुझे इतनी गालियां दीं, इतनी गालियां दीं, जिसका कोई हिसाब नहीं। इसके बाद मैंने उस घर का पानी तक नहीं पीया।" यह कहकर मारियम्मै रो पड़ीं।

चेल्लैया ने तनिक भावावेश मे आकर पूछा, "क्या तंगसामी ने कुछ नहीं कहा ?"

"तंगसामी...वह क्या कहता ?" कहकर बुढ़िया ने लंबी सांस ली। फिर बोली,

"मुंह खोलता तो मोती न बिखर जाते ? इतने दिनों बाद मेरी मां घर आयी है, यह सोचकर भी कुछ कहता पर, सिर उठाकर उसने मुझे देखा तक नहीं। इस तरह मुंह फेरकर घर से बाहर निकल गया, मानो उसकी पत्नी किसी पराये व्यक्ति को भला-बुरा कह रही हो।"

चेल्लैया ने ऊपर जाती सीढ़ियों की तरफ गुस्से से देखा। उस समय उसकी हालत देखकर लगा कि वह इस असमंजस में है कि तंगसामी को बुलाकर कुछ पूछे या नहीं। मौका पाकर स्वर्णम्मा बोली :

"मकान के ऊपर के हिस्से का किराया आपका छोटा भाई देता है, इसलिए मुझे उसे दोष नहीं देना चाहिए, किंतु अब तक जो कुछ हुआ उसका विवरण दिये बिना मैं नहीं रह सकती। ये उसकी सगी मां है या कोई और ? पणकुडि से आकर इन्होंने एक रोटी सेंककर खायी थी। बस, उसके बाद से निराहार व्रत कर रही हैं। अब बुखार हो जाने से इनकी हालत और बिगड़ गयी है। उस दिन से इस चटाई पर इसी जगह पड़ी हैं। पहले तो मैं यह सोचकर चुप रही कि जब सगे बेटे और बहू को इनकी चिंता नहीं, तो मैं क्यों चिंता करूं। वे लोग इन्हें पार कर इधर-उधर आते-जाते रहे, किंतु भूलकर भी इनका हालचाल नहीं पूछा। मुझसे यह सब सहा नहीं गया। वह ठीक समझे या गलत—मुझे इसकी चिंता नहीं, यह सोचकर मैंने उसे अपने पास बुलाया और कहा, 'देख तंगसामी, ये तेरी सगी मां हैं न ? ये भूखी हैं, बीमार हैं। यहां ठंड में पड़ी-पड़ी ठिठुर रही हैं। यदि तू अपने घर ले जाकर इन्हें कुछ खिला-पिला देगा, इनकी दवा-दारू कर देगा तो तेरा क्या बिगड़ जायेगा ? मां से ऐसा व्यवहार करना पाप है। यह मत भूल कि तेरा भी एक बेटा है।' इसी तरह की बातें कहकर मैंने उसे समझाया। मेरी बातें सुनकर तंगसामी बोला, 'ये मेहमान की तरह यहां क्यों पड़ी हुई हैं ? इन्हें ऊपर अपने बेटे के घर जाकर अधिकारपूर्वक लेटना चाहिए न ? इन्हें जो कुछ चाहिए, यदि ये उसे अपनी बहू तमिलक्कोडि से मांगकर ले लेंगी तो इस बुढ़ापे में क्या इनकी शान घट जायेगी ? आपने मुझे मकान का ऊपरी हिस्सा ही किराये पर दिया है न ? इस बरामदे पर इनका अधिकार कैसा ? इनसे कहिए कि या तो ये ऊपर आ जायें या घर से बाहर चली जायें।' ऐसा कहकर वह तुरत दफ्तर के लिए रवाना हो गया।"

चेल्लैया झटपट उठा। उसे देखकर लगा कि वह तंगसामी को वहां बुलाकर, सबके सामने उससे पूछताछ करके, अपने परिवार की मर्यादा को और कम नहीं करना चाहता है। किंतु उसके चेहरे से तंगसामी के प्रति अपार क्रोध और घृणा की भावना झलक रही थी। उसने मन ही मन जैसे कोई निर्णय ले लिया था। वह जोर से पैर पटकता हुआ लकड़ी की उन सीढ़ियों पर चढ़कर मकान के ऊपरी हिस्से में पहुंच गया।

कुछ समय तक मारियम्मै को ऊपर चेल्लैया के गरजने की आवाज सुनायी दी।

बीच-बीच में धीमी आवाज में तमिलक्कोडि भी कुछ कहती जा रही थी। थोड़ी देर बाद कोई आवाज नहीं सुनायी दी।

थकान और नींद के कारण मारियम्मै की आंखें मुंदती जा रही थीं। न जाने कितनी देर तक वे सोती रहीं। अचानक पोते के जोर-जोर से रोने की आवाज कानों में पड़ते ही वे जाग गयीं।

उन्होंने इधर-उधर देखा। उन्हें कोई नहीं दिखायी दिया। दोनों भाइयों के बीच भीषण युद्ध होगा, यह सोचकर वहां एकत्रित स्वर्णम्मा और अन्य स्त्रियां मानो निराश होकर अपने-अपने घरों को लौट गई थीं।

थोड़ी देर तक रोते हुए बच्चे को किसी ने नहीं उठाया। इसके बाद तमिलक्कोडि के बुड़बुड़ाने की और बच्चे को गोद में लेकर उसे कुछ-कुछ कहकर चुप कराने की आवाज सुनायी दी।

कुछ देर बाद मारियम्मै ने देखा कि चेल्लैया धीरे-धीरे सीढ़ियों से उतरकर उनके पास आ खड़ा हुआ है। ऊपर जाते समय उसमें जो आवेग था वह प्रायः शांत हो चुका था।

वह मां से बोला, "इस बुढ़ापे में इतना अहंकार तुम्हारे लिए अच्छा नहीं। उनकी बातों से लगता है कि गलती तुम्हारी ही है। क्या तुम्हें यहां कोई अधिकार नहीं मिला ? मेहमानों की तरह तुम अलग-अलग क्यों पड़ी हुई हो ? मिलकर काम करने, जो हो उसे सबके साथ बैठकर खा लेने के बदले तुम व्यर्थ ही क्यों दुख झेल रही हो ? इस बुढ़ापे में 'जो मैं कहूंगी वही होगा' यह जिद न करके उनके साथ मिल-जुलकर रहने की कोशिश करो। तमिलक्कोडि परायी तो नहीं है ? यदि वह कुछ कह भी दे, तो तुम तिल का ताड़ न बनाकर चुपचाप पड़ी रहने की कोशिश करो। हां, ऐसा करना ही तुम्हारे लिए ठीक रहेगा। मैं अधिक समय तक यहां नहीं रुक सकता। मुझे अगली गाड़ी से जाना है। अच्छा, तो मैं चलता हूं।"

चेल्लैया ने लगभग डांटते हुए कठोर स्वर में मां से यह सब कहा।

मां के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना तेजी से कदम बढ़ाते हुए जब चेल्लैया दरवाजे तक पहुंचा, तब तंगसामी घर में प्रवेश कर रहा था।

"बैंगलूर वापस जा रहे हो ? थोड़ी देर पहले बाहर जाते हुए यहां से निकला था। तब तुम दिखायी नहीं दिये ? कहां गये थे ?"

चेल्लैया ने उस समय वहां तंगसामी से भेंट हो जाने की कल्पना भी नहीं की थी। अतः उसके चेहरे से लगा कि वह तनिक विचलित हो गया है। किसी तरह अपने को संभालकर वह बोला, "मैं मां के लिए दवा लाने जरा बाहर चला गया था। उस समय तू यहां से होकर बाहर गया होगा। अच्छा तो मैं चलता हूं। मुझे अगली गाड़ी से जाना है। मेरे पास छुट्टियां नहीं हैं।" ऐसा कहकर सिर उठाकर अपने भाई के चेहरे की ओर बिना देखे चेल्लैया गली में उतर गया और अपने बूटों से चर्र मर्र की आवाज करते हुए तेज कदमों से चलने लगा।

नादस्वरम्

आ. माधवन

मृत सज्जन कुछ नहीं जानते। मलमल का नया कुर्ता और धोती पहने, माथे पर तीन अंगुल का विभूति का आड़ा तिलक लगाये, पैर फैलाये सिर ऊंचा किये चिरनिद्रा में पड़े हैं। रंग काला, वयोवृद्ध। ऊपर के दांत कुछ बड़े। होठों से बाहर निकले हुए दांतों को देखकर लगता था कि वे व्यंग्य की हंसी हंस रहे हैं। उनके सिरहाने दीपक, केले के पत्ते पर पके केलों का एक गुच्छा, अगरबत्ती, लाल रंग के कनेर के फूलों की माला आदि चीजें सजायी हुई थीं। अगरबत्ती की सुंगध फैलकर मानो किसी की मृत्यु की सूचना दे रही थी।

उनके पैताने बैठी स्त्रियों के झुंड में से उनकी चालीस वर्षीया बेटी करूप्पि, "हाय मेरे बापू...इस दुनिया में अब मेरा कौन रह गया...?" कहती हुई और उनके पैरों पर अपना सिर पीटती हुई रो रही थी। हरे रंग की सस्ती सूती साड़ी उस पर फब रही थी।

संध्या होनेवाली थी। नारियल के बगीचे के परे केलों के खेत के उस पार बहती हुई, चट्टानों से भरी नदी के नूतन जल की शीतलता लिये हवा चल रही थी। कौवे घोंसलों की ओर लौट रहे थे। केवड़े की झाड़ी से बनी मेड़ के बीच से, नहर के किनारे उगे हुए सुपारी के मजबूत पेड़ काटकर लाये गये थे। घर के आंगन में उसी से अर्थी तैयार की जा रही थी। आंगन में जहां-तहां कटे-अधकटे सुपारी के पेड़ बिखरे पड़े थे।

द्वार पर मातम मनाने के लिए एकत्रित लोगों के बीच मृत सज्जन के हट्टे-कट्टे दो पुत्र सिर झुकाये बैठे हैं। मैला अंगोछा पहने, काले रंग के वे दोनों युवक तेल से सनी मूर्तियों के समान दिखायी दे रहे हैं। छोटा बेटा धीमे-धीमे रो रहा है। बड़ा बेटा चेहरे को हाथों पर टिकाये छत के बीचोंबीच लगी शहतीर की ओर देख रहा है। अब तक भीतर से आती रोने-कलपने की आवाज के सब लोग आदी हो चुके थे। वह सभी को सहज लग रही थी।

"इसी तरह बैठे रहे तो अंधेरा हो जायेगा। रात होने से पहले हमें जैसे-तैसे यह काम पूरा कर लेना चाहिए। क्यों तंगप्पा ?"

"ठीक कहा आपने। नादस्वरम् बजानेवाला अभी तक नहीं आया। उसे बुलाने कौन गया है ?"

"वडिवेलु और चिन्नणन गये हैं। मेलात्तूर में आज नादस्वरम् बजानेवाला मिलना मुश्किल है। सबके सब मुत्तुप्पट्टि के उत्सव में शामिल होने चले गये होंगे।"

"साथ में चिन्नण्णन गया है न, वह किसी न किसी को अवश्य पकड़ लायेगा। उसे आने दो, तब तक हम लोग बाकी काम निपटा लेते हैं।"

वर्षा होने के सभी लक्षण दिखायी दे रहे थे। शाम गहरी हो चुकी थी। वातावरण में ठंडक थी। सिर पर गैसलाइट उठाये हुए, मेड़ पर से होते हुए नहर पार करके कोई व्यक्ति इस ओर आता दिखायी दिया। गैसलाइट के प्रकाश में केले के पेड़ों और ताड़ के हरे-हरे पत्तों से बने पंडाल की परछाइयां विशाल आकार धारण कर उसी प्रकार विलुप्त होती जा रही थीं, जिस प्रकार चलचित्र के विभिन्न दृश्य एक-एक करके विलुप्त होते जाते हैं।

जो व्यक्ति गैसलाइट ढोकर लाया था, वह पसीने से लथपथ था और हांफ रहा था। उसने गैसलाइट को बरामदे में एक स्टैंड पर रख दिया। गैसलाइट की 'उस् ऽ ऽ ऽ स्' की आवाज वातावरण में व्याप्त हो गयी। अंदर लोगों का रोना-धोना समाप्त हो गया था। स्त्रियां धीमे स्वर में बातें कर रही थीं। अगरबत्ती का सुगंधित धुआं अब भी चारों ओर फैल रहा था। प्रकाश की व्यवस्था हो जाने के कारण बरामदे की भीड़ तितर-बितर हो गयी। लोग इधर-उधर खड़े होकर अंधेरे में खेतों और मेड़ों की ओर देखने लगे। ऊब के कारण सभी के चेहरे खिन्न हो गये थे। खाली बैठे कोई कितनी बार पान खाये ? कितनी बार बीड़ी पिये ?

"सुबह से कुछ नहीं खाया। कब यह काम पूरा होगा और कब हम नहा-धोकर, कपड़े बदलकर खाना खायेंगे ? अच्छी मुसीबत में फंस गये।"

सफेद कपड़े पहने एक व्यक्ति अंधेरे को भेदते हुए दौड़ता हुआ वहां आया।

वह बोला, "चिन्नण्णन और वडिवेलु साइकिल लेकर तट्रामपट्टी गये हैं। मेलात्तूर में उन्हें नादस्वरम् बजानेवाला कोई नहीं मिला। आप लोगों को यह समाचार देने के लिए ही मुझे यहां भेजा गया है।" क्षणभर के लिए उसने पंडाल पर, गैसलाइट पर, एक दूसरे पर गिरती-पड़ती भीड़ पर, भीतर सुन पड़नेवाले स्त्रियों के निरर्थक प्रलाप पर गौर किया और फिर बीड़ी सुलगाने के लिए आग खोजता हुआ कहीं चला गया। तट्रामपट्टी जाकर नादस्वरम् बजानेवाले को बुला लाने में कम से कम एक या डेढ़ घंटे लगेंगे—यह सोच कर वहां एकत्रित सभी लोगों के चेहरे कुम्हला गये।

"इस जमाने में कौन नादस्वरम्वाले का और पालकी का इंतजाम करता है ? नाते-रिश्तेदारों और पड़ोसियों को परेशान किये बिना सारा काम निपटाने के

बदले ये लोग यह क्या कर रहे हैं ? अब देखो, यहां कितने लोग उनके इंतजार में बैठे हैं ?"

"उनका बड़ा लड़का कह रहा था कि बाबूजी मरने से पहले उससे कह गये थे कि मेरी शवयात्रा पर ढोल, नादस्वरम् आदि का प्रबंध जरूर करना। इसी बात को लेकर उनकी लड़की फूट-फूटकर रोयी थी। मृतक की आत्मा की शांति के लिए ही उनका लड़का मेलात्तूर गया था। वहां नादस्वरम् वाला नहीं मिला, इसलिए तट्रामपट्टी गया है।"

"अच्छी मुसीबत है। मरनेवालों का क्या ? वे तो चले गये। मुसीबत तो हम झेल रहे हैं, जो जिंदा हैं।"

सहसा वर्षा होने लगी। पत्तों से बनी छत और हरे पत्तों के पंडाल पर पानी बरसने से जोर की आवाज होने लगी। चारों ओर खड़े सुपारी और नारियल के पेड़ों तथा केवड़े की झाड़ी पर वर्षा होते ही वह आवाज और तीखी हो गयी। गैसलाइट को उठाकर बरामदे में बने चबूतरे पर रख दिया गया। बरामदे में बैठे लोगों की पगड़ियों और उनके सिरों की बड़ी-बड़ी और विकृत परछाइयां सामने की दीवार पर दिखायी देने लगीं।

अंदर कोई बच्चा हठ करते-करते रोने लगा। मां उसे डराने के लिए कभी भूत को बुलाती है, कभी फाड़कर फेंक देने की धमकी देती है। कभी गुस्से में भरकर कहती है, "कमबख्त क्यों मेरी जान ले रहा है।" बच्चा बराबर रो रहा है।

सभी के चेहरों पर ऊब, चिंता, बेसबरी, असंतोष और भय के भाव दिखायी दे रहे थे। बड़े-बूढ़ों की भी समझ में नहीं आया कि किससे क्या कहकर स्थिति को संभाला जाय। सभी लोग अंधकार से घिरे खेतों की मेड़ पर से होकर आते हुए मार्ग की ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं। अचानक बारिश बंद हो जाती है। पानी बरसने से होनेवाली आवाज भी रुक जाती है। पत्तों से बनी छत से पानी टपकने लगता है। बरामदे में एकत्रित पानी भी धीरे-धीरे बहने लगता है।

अब तक अर्थी तैयार हो गयी थी। मृत व्यक्ति के शव को लाल रंग के रेशमी कपड़े में लपेटकर पंडाल में लाकर रख दिया गया था। पानी भरने गये उनके दोनों लड़के वर्षा में पूरी तरह नहा गये थे। सिर पर कांसे का कलसा उठाये हुए, शव के सिरहाने खड़े वे दोनों घूंघट काढ़े खड़ी विधवा के समान दिखायी दिये।

"अरी.औरतो, कोरस-गान शुरू करो। क्या यह सब भी तुम लोगों को सिखाना होगा ?" ग्रामसेवक के ये शब्द सुनते ही बूढ़ी स्त्रियां, जो इस काम के लिए तैयार खड़ी थीं, ऊंची आवाज में शोकगीत गाने लगीं। दो-चार लोग जो अंधेरे में इधर-उधर खड़े थे, वे भी पंडाल से होते हुए बरामदे में आ खड़े हुए।

ग्रामसेवक बोला, "यदि अंदर बैठी स्त्रियों में से किसी ने मृत सज्जन के मुंह में चावल न डाला हो तो वे बाहर आकर यह काम कर लें, अभी थोड़ा समय है।"

"अजी यह काम तो कब का पूरा हो चुका। अब नये सिरे से क्यों शुरू कर रहे हो ? जो काम पूरा हो गया उसके आगे की बात सोचने के बदले, उन्हीं कामों को दुहराना कहां की बुद्धिमानी है ? भाई चिन्नतंबु, तुम्हारी घड़ी में इस समय कितने बज रहे हैं ?"

"समय पूछ रहे हो ? समय तो बहुत हो गया। नौ बजनेवाले हैं। जाने कब नादस्वरम्‌वाला आयेगा और कब हम यहां से चलेंगे ?"

सभी की आंखें खेतों की मेड़ पर लगी हुई थीं। वहां एकत्रित सभी लोग मृत्यु की घटना को जैसे भूल गये थे। नादस्वरम्‌वाले की व्यवस्था करने की समस्या ही विशाल रूप धारण कर उनके सामने खड़ी थी।

अंधेरे में आंखें गड़ाये हुए अचानक एक व्यक्ति बोल उठा, "शायद कोई आ रहा है।"

"तुम्हारा अनुमान ठीक है, भाई। जरूर कोई आ रहा है। कोई है यहां, जरा लालटेन लेकर आओ। बारिश के कारण सारा रास्ता कीचड़ से भरा हुआ है। वह चिन्नण्णन ही है। कंधे हिलाने के ढंग से साफ पहचाना जा रहा है न ?"

सभी के चेहरों पर छाया निराशा का अंधकार जैसे दूर हो गया। धोती कसकर, पगड़ी ठीककर, लोग चलने के लिए तैयार हो गये। कुछ पुरुष भीतर जाकर स्त्रियों से विदा लेकर आये। अंदर से फिर से धीमे स्वर में रोने की आवाज सुनायी देने लगी।

गैसलाइट के प्रकाश में सबसे आगे चिन्नण्णन और वडिवेलु युद्ध जीतकर लौटे हुए योद्धाओं की तरह तनकर खड़े हो गये।

"अजी हम मेलात्तूर पहुंचे तो देखा कि वहां तो कोई मक्खी-मच्छर भी नहीं है। सीधे भागे वीरण्णन गांव की ओर। पता लगा कि वहां एक नादस्वरम् विद्वान रहते हैं। देवी मारियम्मन के उत्सव पर वे हमारे गांव भी आ चुके हैं। नाम है मुनिरत्नम्। हमने सोचा, किसी तरह उन्हें अपने साथ ले आयेंगे। किंतु हाय रे दुर्भाग्य ! वे बीमार होकर बिस्तर पर पड़े थे। सोचा, चुप बैठने से काम नहीं होगा, सो साइकिल लेकर तट्रामपट्टी पहुंचे। यह देखो, इन्हें वहीं से पकड़कर ला रहे हैं। भगवान की कृपा थी कि समय से ये हमें मिल गये।"

सबने आंखें उठाकर देखा।

सूखे हुए बांस की नली सा पतला, मटमैले रंग का नादस्वरम् हाथ में लिये, भैंगी आंख और छोटे-छोटे बालोंवाला, कंधे पर गेरुए रंग का अंगोछा डाले, नाटे कद का एक आदमी सामने खड़ा था। नादस्वरम्‌वाले का इंतजार करते-करते सभी ऊब चुके थे। अतः उस आदमी को देखकर जहां एक क्षण लोगों के मन में क्रोध जागा कि 'यह आदमी नादस्वरम् क्या बजायेगा ?' वहीं दूसरे क्षण सभी ने अपने आप को यह कहकर समझाया कि, 'इस मौके पर कोई मिला तो।' ढोल बजानेवाला

रसोइये की तरह पसीने से लथपथ हो रहा था। वह बड़े दीन भाव से सबकी ओर देखता हुआ, आगे बढ़ने में संकोच करता-सा, पीछे खड़ा था।

"डोम को बुलाओ। अग्नि आदि सभी चीजें तैयार हैं। शंख फूंकने को कहो। तो फिर चलें ? अंदर जाकर पूछ आओ।"

लांगदार धोती बांधे चार आदमी अर्थी के पास जा खड़े हुए। पिता का अंतिम संस्कार करने के लिए आये दोनों लड़के वहीं खड़े थे। बड़े लड़के ने डोम के हाथ से आग की हंडिया ले ली। छोटा लड़का गीले कपड़ों मे थर-थर कांपता हुआ किंकर्तव्यविमूढ़-सा अपने बड़े भाई के पीछे खड़ा हो गया।

"चलो भाई, चलो। अर्थी को उठाओ।" यह आदेश सुनते ही लांगदार धोती बांधे चारों व्यक्ति अर्थी के चारों ओर खड़े हो गये। भीतर बैठी स्त्रियां एक दूसरे को धकियाते हुए बेहताशा बाहर की ओर दौड़ीं। वे करुण स्वर मे चीत्कार करने लगीं, "हाय ! आप हम सबको अकेला छोड़कर जा रहे हैं !" चारों तरफ कीचड़ होने के कारण लाश के पास बैठकर रोने से वे स्त्रियां कतरा रही थीं। मृत सज्जन की बेटी, "हाय मेरे बाबू...इस दुनिया में अब मेरा कौन रह गया ?" कहते हुए उनके पैरों पर गिर पड़ी।

ऊंची आवाज में "गोविंदा ! गोविंदा !"* कहते हुए लोगों ने अर्थी सहित शव को कंधे पर उठा लिया। "नादस्वरम्‌वाला कहां है...आप लोगों की सूरत देखने के लिए यहां नहीं बुलाया गया है। आगे जाइए। गैसलाइटवाले के साथ-साथ चलिए। हां, तो बाजा बजाना शुरू कीजिए।"

उस समय नादस्वरम्‌वाले की दशा बड़ी शोचनीय थी। उसे अपने साथ लिवाकर लाये वेलण्णन ने उसके कान में कुछ कहा। नादस्वरम्‌वाले ने नादस्वरम् को अपने होंठों से लगाकर उसे धीरे से बजाकर देखा, 'पी...प् पी... ।' शवयात्रा कीचड़भरे खेतों के बीच से निकलते रास्ते पर आगे बढ़ रही थी। गैसलाइट के प्रकाश में सभी की परछाइयां केवड़े की झाड़ियों और सुपारी के पेड़ों के शिखर पर पड़ती दिखायी दीं।

डोम ने अपना जुड़वां शंख बजाया—'कू ऽ ऽ ऊ ऽ ऽ।' नादस्वरम्‌वाले ने भी नादस्वरम् बजाया। 'पीऽ ऽ पी ऽ ऽ' की उसकी कारुणिक ध्वनि कानों को खटक रही थी। जैसे बच्चा परिस्थिति को समझे बिना जोर-जोर से रोने लगता है, वैसे ही ढोलकवाला बिना कुछ सोचे-समझे जोर-जोर से ढोल पीटने लगा।

असमय होनेवाली वर्षा से उत्पन्न अव्यवस्था, खेतों की मेड़ पर से होकर जाते हुए रास्ते में फैली कीचड़, केवड़े की झाड़ियों और सुपारी के वृक्षों के शिखर पर टिका शीतल अंधकार, मृत्यु की घटना, भूख, थकान, घृणा, दुख, चिढ़, क्रोध आदि

*** तमिलनाडु में शव को ले जाते समय 'राम नाम सत्य है' न कहकर 'गोविंदा ! गोविंदा !' कहा जाता है।**

के कारण नादस्वरम् की कर्णकटु ध्वनि सभी को बेसुरी प्रतीत हुई और वे जल-भुन गये।

गैसलाइटवाला आगे-आगे चल रहा था। आग की हांडी में से उठते उपले के धुएं के कारण शंख फूंकनेवाले का दम जैसे घुटने लगा। सभी लोग मौन शोक की प्रतिमूर्ति बने चल रहे थे। उनकी परछाइयां दूर-दूर तक बिछी हुई थीं।

'पी ऽ ऽ प् पी ऽ ऽ पी ऽ ऽ पी ऽ ऽ।'

सभी लोगों का जी मिचलाने लगा, सांस घुटने लगी, मानो छाती पर मनों बोझ रखा हुआ हो। सिर फटने लगा।

दोबारा आवाज आयी, 'पीऽ ऽ पॅं पी ऽ ऽ पी ऽ ऽ पीऽ ऽ।'

शवयात्रा में सम्मिलित हुए सभी लोग नादस्वरम्वाले को घूरने लगे, मानो कह रहे हों, 'तेरा सत्यानाश हो।' कई लोग कीचड़ से लथपथ उस रास्ते में फिसल गये। लोगों के पीछे-पीछे चलता हुआ एक छोटा-सा लड़का कीचड़ से भरे एक गड्ढे में गिर पड़ा। साथ चलते हुए एक व्यक्ति ने उसे उठाया और क्रोधित स्वर में पूछा, "अरे मूर्ख ! तू हम लोगों के साथ श्मशान क्यों चल रहा है ?" ऐसा लगा कि किसी और कारण से मन में उत्पन्न क्रोध वे उस लड़के पर निकाल रहे हों।

अब सभी लोग नदी किनारेवाले रास्ते पर चलने लगे। झींगुरों का शोर सुनायी दिया। नदी के उस पारवाले घाट से मेंढक टर्र-टर्र कर मानो उनकी पुकार का जवाब दे रहे थे। काले रंग के सूअरों की तरह छोटे-छोटे शिलाखंडों से भरी नदी में नये जल का गर्जन करते हुए बहने का शोर सुनायी दिया। ठंड की चुभन और बढ़ गयी।

श्मशान की दूरी असीम-सी प्रतीत होने लगी। फिर से आवाज आयी, 'पी ऽ ऽ प् पी ऽ ऽ पी ऽ ऽ।'

"अरे मूर्ख तू किस तरह नादस्वरम् बजा रहा है ?" ग्रामसेवक मुत्तन खूंखार प्रकृति के थे। उनकी फटकार सुनकर अर्थी उठाये आगे-आगे चलते हुए व्यक्तियों ने भी तनिक भयभीत होकर पीछे मुड़कर देखा।

बस !

पलक झपकने भर की देर थी कि ग्रामसेवक ने नादस्वरम्वाले का गिरहबान पकड़कर उसे दो-चार घूंसे जमा दिये। ऐसा लगा मानो कोई घाट पर कपड़े धो रहा हो। उन्होंने उसका नादस्वरम् छीनकर अपने घुटने पर रखकर उसे दोनों हाथों से दबाया। 'खटाक्' से उसके दो टुकड़े हो गये। उस अंधेरे में नादस्वरम् के वे टुकड़े गर्जना के साथ बहती हुई नदी की नये जल की धारा में जा गिरे।

"हरामजादे, भाग जा यहां से। तू यहां नादस्वरम् बजाने आया है ? यहीं खड़ा रहा तो तेरे भी टुकड़े-टुकड़े करके नदी में फेंक दूंगा !"

शवयात्रा कुछ देर के लिए रुक गयी। सभी ने चैन की सांस ली। मौन भाव से वे मानो कह रहे थे, 'भाई मुत्तन ! तूने जो काम किया है, उसके लिए तुझे सोने

का तमगा दिया जाना चाहिए।'

"आप लोग रुक क्यों गये ? आगे चलिए। बस, श्मशान आने ही वाला है। बड़ा अच्छा नादस्वरम् बजानेवाला पकड़ लाये !"

उनकी इस बात को सुनने के लिए उस जगह न नादस्वरम्वाला था और न ही ढोल बजानेवाला। वे दोनों 'जान बची और लाखों पाये' सोचकर नदी की बायीं ओर वाली एक अंधेरी गली में से होकर दक्षिण की ओर जाती एक सड़क पर जैसे सिर पर पांव रखे भाग रहे थे।

व्यर्थ ही गले पड़ी मुसीबत के टल जाने से सभी ने चैन की सांस ली। अब शवयात्रा श्मशान के बहुत निकट पहुंच चुकी थी।

नगर

सुजाता

काल्डवेल के 'तुलनात्मक व्याकरण' में लिखा है–"मदुरै पांडिय लोगों की दूसरी राजधानी है। हमारे देश में प्राचीन मानचित्रों में 'मथरा' नाम से उल्लिखित, अंग्रेजों द्वारा 'मदुरा' और यूनानी लोगों द्वारा 'मेदोरा' कहे जाने वाला नगर तमिल लोगों का मदुरै ही है।"

दीवारों पर मोटे अक्षरों में छपे, विविध वस्तुओं का विज्ञापन करनेवाले, तरह-तरह के पोस्टर लगे हुए थे। निजाम लेडी तंबाकू, ए. के. ब्रांड ब्रेसियर्स, सावधान ! क्रांति की आग भड़क रही है। खास सभाएं, हाजी मूसा की कपड़ों की दुकान (कपड़ों का सागर), 30.9.73 को नास्तिक लोग आग की हांड़ियां लेकर चलेंगे।

मदुरै नगर में एक साधारण दिन। हमेशा की तरह सड़कों पर नलों के सामने मनुष्यों के बदले घड़े लाइन बनाकर खड़े थे। छोटे बच्चे 'टिटनेस' जैसे भयानक रोग की चिंता किये बिना मिट्टी में खेल रहे थे। पांडियन परिवहन निगम की बसें सर्वत्र स्वदेशी की भावना से युक्त डीजल का धुआं फैला रही थीं। कलफ लगी निकर-कमीज़ पहने, प्रोटीन की कमी से पीड़ित से पुलिसवाले इधर-उधर आने-जानेवाले वाहनों और मनुष्यों की गति को नियंत्रित कर रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो वे 'ब्राउनीय गति सिद्धांत'* का पालन कर रहे हों।

खादीधारी लोगों का एक जूलस, जो न ज्यादा बड़ा था और न लंबा, मंहगाई के लिए सरकार को कोसता हुआ सड़क की बायीं ओर मानो रेंग रहा था। चप्पलरहित गंवार लोगों की भीड़, मीनाक्षी मंदिर के स्तब्ध से खड़े अनेक गोपुरम्, सूखी हुई बैगै नदी का पुल...यही है मदुरै।

हमारी कहानी एक ऐसी लड़की से संबंधित है जो आज ही इस नगर में आयी है। वल्लि अम्माल् अपनी लड़की पाप्पात्ति के साथ मदुरै स्थित बड़े अस्पताल के बहिरंग रोगी विभाग के बाहर बरामदे में बैठी प्रतीक्षा कर रही थी। पहले दिन पाप्पात्ति

*** मौतिकी का एक सिद्धांत, जिसके अनुसार अणु द्रव्य या पदार्थ में विभिन्न दिशाओं में निरंतर गतिशील रहते हैं।**

को बुखार था। उसे गांव के प्राइमरी हेल्थ सेंटर ले जाये जाने पर वहां के डाक्टर ने उन्हें डरा दिया। वे बोले, "सुबह की पहली बस लेकर झटपट बड़े अस्पताल पहुंच जाओ।"

पाप्पात्ति स्ट्रेचर पर लेटी हुई थी। छह डाक्टर उसे घेरे खड़े थे। पाप्पात्ति लगभग बारह साल की थी। उसकी नाक दोनों ओर से छिदी हुई थी। नाक की लौंग में जड़े मामूली नगीने अस्पताल की रोशनी में चमक रहे थे। माथे पर विभूति का आड़ा तिलक लगा था। छाती तक चादर ओढ़ायी हुई थी। उसमें से बाहर निकले उसके हाथ दुबले-पतले से लग रहे थे। बुखार की तेजी के कारण पाप्पात्ति बेहोश-सी पड़ी थी। उसका मुंह खुला हुआ था।

बड़े डाक्टर ने उसका सिर घुमाकर देखा। आंखों की पलकों को उठाकर देखा। गालों को उंगली से दबाकर देखा। खोपड़ी को उंगलियों से ठोक-ठोककर उसका परीक्षण किया। बड़े डाक्टर विदेश से शिक्षा पाकर लौटे थे। स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाते थे। वे प्रोफेसर थे। उनके चारों ओर खड़े डाक्टर उनके छात्र थे। वे बोले, "एक्यूट केस ऑफ मेनिनजाइटिस। नोटिस दि.... ।"

वल्लि अम्माल् न समझ में आनेवाली उनकी बातों को सुनती हुई अत्यंत चिंतित होकर अपनी पुत्री को एकटक देख रही थी। चारों ओर खड़े डाक्टरों ने बारी-बारी से आकर 'ऑफ्थलमस्कोप' की सहायता से उस लड़की की आंखों के भीतरी भाग का परीक्षण किया। टार्च से रोशनी फेंककर यह देखा कि उसकी पुतलियां हिलती हैं या नहीं। फिर अपनी-अपनी कॉपियों पर आवश्यकतानुसार टिप्पणियां लिख लीं।

बड़े डाक्टर बोले, "कह दीजिए कि इसे एडमिट कर लें।"

वल्लि अम्माल ने बारी-बारी से उनके चेहरों की ओर देखा। डाक्टरों में से एक बोला, "माताजी ! इस लड़की को तुरंत अस्पताल में भर्ती करना होगा। वह देखिए, वहां जो सज्जन बैठे हुए हैं, उनके पास जाइए। आपकी चिट कहां है ?"

वल्लि अम्माल के पास चिट नहीं थी।

"कोई बात नहीं, वे दे देंगे। अरे यार ! तू चल। बाबूजी इस तरफ से।"

वल्लि अम्माल ने बड़े डाक्टर की तरफ देखते हुए पूछा, "बाबूजी ! बच्ची अच्छी हो जायेगी न ?"

"पहले इसे एडमिट करवा दे। हम इसकी देखभाल करेंगे। डॉ. धनशेखरन, इस केस को मैं स्वयं देखूंगा।"

दूसरे लोगों द्वारा घिरे हुए वे किसी मंत्री की तरह वहां से चल दिये। डॉ. धनशेखरन वहां बैठे श्रीनिवासन को सारी बातें समझाकर बड़े डॉक्टर के पीछे दौड़े।

श्रीनिवासन ने वल्लि अम्माल की ओर देखा।

"अम्मा ! इधर आओ। तुम्हारा नाम क्या है ? अरे ओ हरामजादे ! वह रजिस्टर उठा दे।"

"वल्लियम्मा।"

"पेशेंट का नाम ?"

"वे मर चुके हैं।"

श्रीनिवासन ने सिर उठाकर देखा।

"पेशेंट यानी रोगी, किसे भरती करना है ?"

"मेरी बेटी को ।"

"नाम क्या है ?"

"जी वल्लियम्मा।"

"क्या मजाक कर रही है ? तेरी बेटी का नाम क्या है ?"

"पाप्पात्ति।"

"पाप्पात्ति !...हे ईश्वर। ये ले। इस चिट को लेकर सीधे चली जा। वहां सीढ़ियों के ऊपर एक सज्जन कुर्सी पर बैठे मिलेंगे। वे लोगों से वेतन आदि के बारे में पूछताछ करते हैं। उन्हें यह चिट दे देना।"

"बच्ची का क्या होगा ?"

"बच्ची को कुछ नहीं होगा। उसे यहां लेटी रहने दे। तेरे साथ कोई नहीं आया ? तू जा। यहां विजयरंगम कौन है ?"

वल्लि अम्माल पाप्पात्ति को अकेली छोड़कर नहीं जाना चाहती थी। वहां की लंबी कतार देखकर और वहां फैली एक विशेष गंध के कारण उसका जी मिचलाने लगा। उसे अपने मृत पति पर बहुत गुस्सा आया।

वह चिट लेकर सीधे चली गयी। कुर्सी खाली पड़ी थी। उसकी पीठ पर धूल जमी हुई थी। पास बैठे एक व्यक्ति को उसने चिट दिखायी। उन्होंने कुछ लिखते हुए कनखियों से उस चिट की ओर देखा। "मां जी ! तनिक ठहरो, उन्हें आने दो" कहकर खाली कुर्सी की ओर संकेत किया। वल्लि अम्माल के मन में अपनी बेटी के पास लौट जाने की तीव्र इच्छा जागी। उस अनपढ़ स्त्री के हृदय में इस प्रश्न ने अत्यंत विशाल रूप ले लिया कि "मैं यहां प्रतीक्षा करूं या बच्ची के पास लौट जाऊं ?"

उसे यह पूछते हुए डर लग रहा था कि, "क्या उन्हें आने में बहुत देर लगेगी ?"

वेतन के बारे में पूछताछ करनेवाले वे सज्जन अपने भानजे को भर्ती करवाकर आराम से लौटे। आकर कुर्सी पर बैठे। उन्होंने तीन बार नसवार ली। फिर रूमाल को रस्सी की तरह बटकर नथुनों मे डालकर सुरसुराकर चुस्त होकर बोले–"देखो भाई, तुम लोगों को लाइन बनाकर खड़े होना चाहिए। फतिंगों की तरह झुंड बनाकर चले आओगे तो कैसे काम चलेगा ?"

तीस मिनट तक इंतजार करने के बाद वल्लि अम्माल के हाथ की चिट को

जैसे किसी ने छीन-सा लिया।

"इस चिट पर तो डाक्टर साहब के दस्तखत ही नहीं हैं। जाकर डाक्टर साहब के दस्तखत करवा ला।"

"मुझे इसके लिए कहां जाना होगा ?"

"तू कहां से आयी है ?"

"मूनांडिप्पट्टि से !"

"अच्छा मूनांडिप्पट्टि से !" कहकर क्लर्क जोर से हंसे फिर बोले, "अपनी वह चिट मुझे दे दे।"

उसने दोबारा अपनी चिट उन्हें दी। उन्होंने उसे उलट-पलटकर देखा।

"तेरे पति का वेतन कितना है ?"

"वे मर चुके हैं।"

"तेरा वेतन कितना है ?"

उसकी समझ में नहीं आया कि वह क्या कहे।

"महीने में कितने रुपये कमाती है ?"

"जब फसल काटने जाती हूं तब वेतन के रूप में धान मिलता है। दूसरे मौकों पर बाजरा, रागी आदि मिलता है।"

"रुपये नहीं मिलते ! अच्छा, अच्छा। तेरा वेतन नब्बे रुपये लिख लेता हूं।"

"एक महीने मे ?"

"घबरा मत। तुझसे पैसे नहीं लेंगे। ले इस चिट को लेकर यहां से सीधे जाकर बायें हाथ की तरफ मुड़ जा। दीवार पर तीर का निशान बना होगा। वहां से तू 48 नंबरवाले कमरे में चली जाना।"

वल्लि अम्माल ने उस चिट को दोनों हाथों में ले लिया। क्लर्क ने उसे जो संकेत दिये थे, उनसे उसके सरल मन में और अधिक उलझन पैदा हो गयी। हवा के झोंकों में पड़े कागज के टुकड़े की तरह वह अस्पताल में इधर से उधर भटकती फिरी। वह पढ़ना नहीं जानती थी। उस समय उसके ध्यान से यह बात उतर गयी थी कि उसे 48 नंबर कमरे में जाना है। लौटकर उस क्लर्क से दोबारा कुछ पूछते हुए उसे डर लग रहा था।

अचानक उसने अपने पास से दो रोगियों को एक ही स्ट्रेचर पर ले जाते देखा। उनमें एक बैठा हुआ था और दूसरा अधलेटी अवस्था में पड़ा था। दोनों की नाक में नली डाली गयी थी। दूसरी ओर एक ट्राली में एक चौड़े मुहवाले बर्तन में सांभर मिला भात ले जा रहे कुछ सफेद टोपीधारी लोग दिखायी दिये। सभी प्रकार से सुसज्जित, सफेद कोट पहने, स्टेथस्कोप को माला की तरह गले में डाले कुछ डाक्टरनियां सामने से निकलीं। पुलिसवाले, चाय-काफीवाले, नर्स—सभी लोग सभी दिशाओं में आ-जा रहे थे। वे लोग जल्दी में थे। उन्हें रोककर कुछ पूछते हुए उसे

डर लग रहा था। उसकी समझ में नहीं आया कि वह उनसे क्या पूछे।

किसी एक कमरे के सामने लोग भीड़ लगाये खड़े थे। वहां एक आदमी उसके हाथ की चिट की तरह पीले रंग की बहुत सारी चिटें जमा किये हुए था। उसने अपनी चिट उस आदमी को दे दी। उसने बिना देखे उसकी चिट लेकर रख ली। बाहर बेंच पर बैठे सभी अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वल्लि अम्माल को पाप्पात्ति की चिंता सताने लगी। लड़की वहां अकेली पड़ी है। जिस आदमी ने चिट इकट्ठी की थी, वह एक-एक का नाम लेकर पुकार रहा था और उन्हें उसी क्रम से बैठाता जा रहा था। चिट पर पाप्पात्ति का नाम पढ़कर वह बोला, "इसे यहां क्यों लायी ? ले, इसे लेकर सीधे चली जा" और वह चिट वल्लि अम्माल को वापस दे दी। इस पर वह बोली, "बाबूजी, मेरी समझ में नहीं आया कि मुझे कहां जाना है।" कुछ सोचकर उसने सामने से जाते एक व्यक्ति को रोककर कहा, "अमलराज, माताजी को 48 नंबर कमरा दिखा दे।" वल्लि अम्माल से वह बोला, "इस आदमी के पीछे-पीछे चली जाओ। ये वहीं जा रहे हैं।"

उसे अमलराज के पीछे भाग-भागकर जाना पड़ा।

वहां एक ओर बेंच पर दूसरे लोगों की भीड़ दिखायी दी। एक आदमी ने उसके हाथ की चिट ले ली। सुबह से भूखी होने के कारण और अस्पताल में फैली विशेष गंध के कारण वल्लि अम्माल का सिर चकराने लगा।

आधे घंटे बाद उसका नाम पुकारा गया। वह कमरे के अंदर गयी। आमने-सामने दो लोग बैठे पेंसिल से कुछ लिख रहे थे। उनमें से एक व्यक्ति ने उसकी चिट अपने हाथ में ली और उसे उलट-पलटकर ध्यान से देखा।

"बहिरंग रोगी विभाग से आयी है ?"

वह उसके इस प्रश्न का उत्तर न दे सकी।

"चिट पर लिखा है कि रोगी को एडमिट किया जाय। इस समय जगह नहीं है। कल सुबह ठीक साढ़े सात बजे आ जाना, समझी ?"

"बाबूजी, कहां आना होगा ?"

"यहीं आना। सीधे यहीं आ जाना, समझी ?"

उस कमरे से बाहर आते ही वल्लि अम्माल को अपनी बेटी पाप्पात्ति की बहुत चिंता सताने लगी, जिसे वह लगभग डेढ़ घंटे से अकेला छोड़ आयी थी। वह उसके पास लौटने का रास्ता नहीं पा सकी। अस्पताल के सभी कमरे एक जैसे थे। उसे लगा, मानो एक ही आदमी घूम फिरकर अस्पताल के अलग-अलग कमरों में बैठा हुआ है। एक वार्ड में ऐसे अनेक रोगी लेटे हुए थे, जिनके हाथ-पैरों को ऊंचा करके उन पर वजन बांधा गया था। एक कमरे में क्रम से लेटे छोटे-छोटे बच्चे मुंह बना-बनाकर रो रहे थे। मशीनों, रोगियों और डाक्टरों की उस भीड़ में वह वापस लौटने का रास्ता न पा सकी।

उसने डाक्टरनी को पास बुलाकर उस जगह की पहचान बतायी, जहां से वह चली थी। वह बोली, "डाक्टर बीबी, वहां बहुत से डाक्टर लोग मिलकर बातचीत कर रहे थे। एक आदमी ने मुझसे मेरा वेतन पूछा था। उसने यह भी बताया कि मुझे इलाज के लिए पैसे नहीं देने पड़ेंगे। मैं अपनी लड़की को वहीं छोड़ आयी हूं।"

डाक्टरनी द्वारा बताये गये रास्ते से वह लौटी। उस समय मुख्य द्वार पर ताला लगा हुआ था। उसका मामूली सा डर भीषण भय की भावना में परिणत हो गया। वह रोने लगी। उसे बरामदे के बीचों-बीच खड़े रोता देख एक आदमी ने उसे किनारे पर खड़े होकर रोने को कहा। वहां के लोगों को उसका रोना शायद वहां फैली रोगाणुनाशक दवाइयों की गंध के समान सहज स्वाभाविक लगा था।

"पाप्पात्ति ! पाप्पात्ति ! मैं तुझे कहां ढूंढूं ? मैं अब कहां जाऊं ?" कहती हुई वह इधर-उधर घूमती फिरी। तभी उसे एक तरफ बाहर जाने का रास्ता दिखायी दिया। अस्पताल से बाहर जाने का रास्ता। उस दरवाजे से सिर्फ अंदर के लोगों को बाहर जाने दिया जा रहा था। उसे याद आया कि उसने यह दरवाजा पहले भी देखा था।

वह बाहर आयी। उसे याद आया कि वह यहां से थोड़ी दूर चलकर दूसरे दरवाजे से अस्पताल के भीतर गयी थी। वह उस ओर दौड़ी। दूसरे दरवाजे के पास पहुंचने पर उसे लकड़ी की बनी सीढ़ियों-की याद आयी। सामने उस सज्जन की कुर्सी खाली पड़ी थी, जिसने वेतन आदि के बारे में पूछा था ! मुझे वहीं जाना है।

वह दरवाजा बंद था। अंदर एक किनारे पर पाप्पात्ति अब भी एक स्ट्रेचर पर आंखें मूंदे पड़ी दिखायी दी।

"बाबूजी, बाबूजी ! जरा दरवाजा खोलिए। मेरी बेटी अंदर है।"

"ठीक तीन बजे आना। इस समय सब कुछ क्लोज हो चुका है।" वह दस मिनट तक उस आदमी से मिन्नतें करती रही। उसकी भाषा वल्लि अम्माल की समझ में नहीं आयी। किसी व्यक्ति से पैसे पाकर उन्हें चूमकर उसने उनके लिए दरवाजा खोला। उस रास्ते से वह झटपट अंदर भागी। अपनी बेटी को उठाकर छाती से लगाया और अकेले ही जाकर एक बेंच पर बैठकर खूब रोयी।

बड़े डाक्टर एम. डी. के छात्रों की कक्षा समाप्त कर एक कप कॉफी पीकर वार्ड की ओर चल दिये। उन्होंने सुबह मेनिनजाइटिस का जो केस देखा था, वह उन्हें अच्छी तरह याद था। उन्होंने हाल ही में ब्रिटिश मेडिकल जर्नल में उस रोग की कुछ नई दवाइयों के बारे में पढ़ा था।

"मैंने आज सुबह मेनिनजाइटिस का एक केस एडमिट करने को कहा था। बारह साल की वह लड़की कहां है ?"

"डाक्टर साहब, आज यहां कोई भी एडमिट नहीं हुआ।"

"क्या ? एडमिट नहीं हुआ ? मैंने उसे एडमिट करने का खास आदेश दिया

था। धनशेखरन, क्या आपको याद है ?"

"याद है, डाक्टर साहब !"

"पाल ! आप जाकर पता करके आइए। उस केस को इन लोगों ने कैसे मिस कर दिया ?"

पाल सीधे नीचे गये और उन्होंने आमने-सामने बैठे दोनों क्लर्कों से पूछताछ की।

"क्या करें बाबूजी ! आप लोग 'एडमिट', 'एडमिट' लिखकर चिट पकड़ा देते हैं। यहां वार्ड में खड़े होने की भी जगह नहीं है।"

"स्वामी ! बड़े डाक्टर साहब पूछताछ कर रहे हैं !"

"वे लोग उनके परिचित हैं ?"

"हो सकता है। मैं क्या जानूं ?"

"बारह साल की कोई लड़की मेरे पास नहीं आयी। हो सकता है उसके बदले कोई और आया हो। मैंने सभी लोगों से कल सुबह 7.30 बजे आने के लिए कह दिया है। रात को दो-तीन बेड खाली हो जायेंगे। इमरजेंसी हो तो पहले बता देना चाहिए। हां, इस बात का संकेत भी दे देना चाहिए कि बड़े डाक्टर उस केस में इंट्रेस्टेड हैं। वे लोग उनके रिश्तेदार हैं ?"

वल्लि अम्माल की समझ में नहीं आया कि वह अगले दिन सुबह 7.30 बजे तक क्या करे। अस्पताल के वातावरण ने उसे अत्यंत भयभीत कर दिया था। वह नहीं जान सकी कि उसे अपनी बेटी के पास रहने देंगे अथवा नहीं। क्षणभर के लिए वह कुछ सोचती रही। फिर उसने बेटी को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। उसके सिर को अपने कंधे से टिकाकर और हाथ-पैरों को लटकता छोड़कर वह उसे लेकर अस्पताल से बाहर आयी। पीले रंग की एक साइकिल रिक्शा पर सवार हुई। रिक्शेवाले से बस अड्डा चलने के लिए कहा।

"व्हाट नान्सेंस ! कल सुबह साढ़े सात बजे ? तब तक वह लड़की मर जायगी ! डाक्टर धनशेरखन, आप स्वयं ओ. पी. डी. में जाकर देखिए। वह वहीं होगी। इन दुष्टों के वार्ड में कोई बेड खाली नहीं है तो क्या, हमारे विभाग के वार्ड में एक बेड खाली है। उसे वह बेड दिलवा दीजिए। जल्दी कीजिए !"

"डाक्टर साहब ! उसे किसी के लिए रिजर्व करके रखा गया है।"

"आइ डोंट केयर। आइ वांट दैट गर्ल एडमिटेड नाउ। राइट नाउ !"

बड़े डाक्टर साहब आज तक इस तरह चिल्लाकर नहीं बोले थे। अतः डाक्टर धनशेखर, पाल और 'हेड नर्स' मिरांडा सभी घबराकर वल्लि अम्माल को खोजने ओ. पी. डी. की ओर दौड़े।

"इसे मामूली बुखार ही तो है। वापस मूनांडिप्पट्टि ले चलती हूं। वहां के वैद जी को दिखा दूंगी। गांव के अस्पताल नहीं ले जाऊंगी। वहां के डाक्टर साहब ने

ही तो मुझे डराकर मदुरै जाने को कहा था। इसके माथे पर खड़िया मिट्टी का लेप कर दूंगी। ओझा से झाड़-फूंक करवा दूंगी। सब ठीक हो जायेगा।" साइकिल-रिक्शा बस अड्डे की ओर बढ़ता जा रहा था। वल्लि अम्माल ने मन्नत मानी "यदि पाप्पात्ति ठीक हो जायेगी तो वैदीश्वरन जी के मंदिर जाकर दोनों हाथों में रेजगारी भरकर भगवान को भेंट चढ़ाऊंगी।"

एक वर्ष बीत गया

चा. कंदसामी

एक हाथ से कमर से खिसकती निकर को पकड़े और दूसरे हाथ से स्लेट को पसलियों से चिपटाये राजा ने कक्षा में प्रवेश किया।

चौथी कक्षा का वह कमरा अभी पूरी तरह भरा नहीं था। दो-तीन विद्यार्थी जल्दी-जल्दी 'गृहकार्य' पूरा कर रहे थे। राजा को इस तरह की कोई जल्दी नहीं थी। उसने 'गृहकार्य' सुंदर अक्षरों में लिखकर पूरा कर लिया था।

घंटी बजने के बाद प्रार्थना समाप्त होने पर कक्षाएं लगती थीं। उसमें अभी थोड़ी देर थी। राजा ने कक्षा के बीच में खड़े होकर इधर-उधर देखा। फिर तनिक झुककर स्लेट को बेंच के नीचे रखा, कमर से खिसकती निकर को कसकर बांधा और बाहर आ गया।

उसकी कमीज और निकर दोनों खाकी रंग के थे। वह हमेशा वही कपड़े पहने रहता था। फ़ौज के लोगों को ड्रेस बनवाने के लिए इसी रंग का कपड़ा दिया जाता था। उसके कपड़ों को देखकर हमेशा यह पता चल जाता था कि बड़े साइज की पैंट-शर्ट को काट-छांट कर उन्हें उसके नाप का बनाया गया है। किसी बात पर झगड़ा होने पर उसके सहपाठी इस ओर संकेत कर उसे चिढ़ाते थे। जैसे-जैसे उन लोगों की आवाज तेज होती, राजा का गुस्सा भी बढ़ता जाता। गुस्सा आने पर उसका चेहरा फूल जाता। मुंह बायीं ओर से दायीं ओर खिंचकर टेढ़ा-सा हो जाता था। बोलते समय पहले ही वह हकलाता था। ऐसे समय उसके मुंह से एक भी शब्द स्पष्ट रूप से नहीं निकलता था।

मास्टर जी उसे 'हकला' कहकर ही पुकारते थे।

मास्टर जी की और उसकी एक ही राशि थी और वह राशि बड़ी बुरी थी। दोनों एक दूसरे को देखकर चिढ़ते थे। जब-जब वह मास्टर जी को देखता, उसे लगता वह अपने पिता के दर्शन कर रहा है। उन्हें देखते ही वह बुड़बुड़ाने लगता, 'मास्टर जी को जान से मार डालना चाहिए। उनकी कुर्सी पर कांटे बिछा देने चाहिए। बबूल या कैक्टस के कांटे लाकर रखने चाहिए।' ऐसे मौकों पर उसका व्यवहार बड़ा विचित्र हो जाता था।

वह स्लेट को धरती पर पटकता था। पास बैठे लड़के की जांघ पर जोर से चिकोटी काटता था। अचानक दौड़कर किसी सहपाठी का मुंह नोच लेता था। थोड़ी देर में ही कक्षा में खलबली मच जाती थी। सभी छात्र-छात्राएं भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगते थे।

मास्टर जी जल्दी से आकर राजा का कान पकड़कर ऐंठते और उसे पीटते। गालों पर चिकोटी काटते। बेंत से उसके सिर पर और पीठ पर लगातार प्रहार करते। इस शारीरिक पीड़ा और दुख को सहते हुए वह चुपचाप खड़ा रहता था। पिटते समय उसका शरीर अवश्य बल खाता, किंतु आंखों से एक बूंद आंसू भी नहीं निकलता था। इसे देखकर मास्टर जी का गुस्सा और बढ़ जाता था। वे दांत पीसते हुए कहते, "दुष्ट कहीं का ! इतना पिटकर भी नहीं रोता।" और उसका सिर पकड़कर जोर से दीवार पर पटक देते थे।

दो महीने से राजा लगातार पिटता और लात खाता आ रहा है। उसे उस दिन के बाद की सारी घटनाएं याद हैं, जब वह तीसरी से चौथी कक्षा में आया था। उससे पहले की सारी घटनाएं वह भूल चुका है। कभी-कभी छोटी कक्षाओं के छात्रों को देखने पर उसे लगता था कि वह उन कक्षाओं में कभी नहीं पढ़ा।

चौथी कक्षा में आते ही उसे मार पड़ी थी। वह प्रार्थना-सभा में खड़ा था। किसी ने पीछे से उसे चिकोटी काटी। अचानक लाइन टूट गयी। दो-चार लड़के लड़कियों पर जा गिरे। वे जोर-जोर से चीखने लगीं। अगले ही क्षण छात्र-छात्राएं अपनी-अपनी लाइनों में खड़े हो गये। अपने पैरों को फैलाये खड़े एम. रामानुज की कमीज खींचते हुए राजा ने उससे कहा, "सीधे खड़ा हो।" तभी उसके सिर पर चोट पड़ी। उसका सिर तेजी से घूमने लगा। कान, आंख और छाती में जैसे आग-सी भड़क उठी। उसने अपने कानों को कसकर बंद कर लिया। प्रार्थना-सभा, अध्यापक, स्कूल, गणेश मंदिर आदि उससे संबंधित सभी-कुछ तेजी से घूमता प्रतीत हुआ।

अध्यापक ने उसका हाथ पकड़कर खींचा और गरजे, "ठीक तरह से खड़ा हो जा।" उसे उनकी आवाज अपने पिता की आवाज सी लगी। उसकी सांस फूलने लगी।

सभी छात्रों ने हटकर उसे जगह दी। दो या तीन छात्रों के खड़े होने की जगह वह अकेला सिमटा सा खड़ा हो गया। चार लड़कियों ने तीखे स्वर में गीत गया—'हम उस प्रभु की शरण में है जो समस्त लोकों का सर्जक, रक्षक और संहारक है। बड़े-बड़े आत्मज्ञानी भी उनके स्वरूप को पूरी तरह नहीं जान पाते।' इसके बाद प्रिंसिपल रामस्वामी अय्यर ने एक छोटा-सा भाषण दिया।

प्रार्थना समाप्त हुई। पंक्तिबद्ध खड़े छात्र अपनी-अपनी कक्षाओं की ओर जाने लगे। उसकी पंक्ति के छात्र भी आगे बढ़े। कक्षा में कदम रखते ही सभी छात्रों ने दौड़कर अपने लिए जगह घेर ली। सबको जगह देता हुआ राजा सबसे आखिर

में कक्षा में प्रविष्ट हुआ और इधर-उधर देखने लगा। कक्षा में पहली चारों पंक्तियां भर गयी थीं। तीसरी पंक्ति में शंकरन ने उसके लिए जगह रख ली थी। राजा को देखते ही उसने, "राजा यहां आ जा" कहकर पुकारा। उसकी उपेक्षा करता हुआ राजा पीछे की सीट पर जा बैठा।

प्रार्थना-सभा में उसे जो मार पड़ी थी, उसके कारण उसके सिर और कान में अब भी दर्द हो रहा था। उसने धीरे से अपने कानों को सहलाया। उसे याद आया कि जब पिताजी उसे पीटते थे, तब अम्मा इसी तरह उसके शरीर को सहलाया करती थीं।

शंकरन ने उसके पास आकर उससे पूछा, "राजा ! क्या तुझे बहुत दर्द हो रहा है ?"

"नहीं।"

"कक्षा में आने के बाद से तू बराबर अपना कान सहला रहा है।"

राजा ने शंकरन को घूरकर देखा।

"मास्टर जी आ गये" कहते हुए कुछ लोग पीछे से आगे की ओर, तो कुछ लोग आगे से पीछे की ओर दौड़े। शंकरन ने आगे जाने के लिए अपना एक पैर बढ़ाया। मास्टर जी अपनी लंबी बेंत से दरवाजा खटखटाते हुए कक्षा में प्रविष्ट हुए। अब शंकरन राजा के पास ही बैठ गया। बाद में भी वहीं बैठने लगा, किंतु एक सप्ताह बाद मास्टर जी ने उससे कहा, "इस जंगली के पास मत बैठा कर।" और उसे ले जाकर पहली पंक्ति में बैठा दिया।

राजा धीरे से फुसफुसाया, "मैं जंगली नहीं हूं। तू है जंगली, पूरा जंगली।" उसके मन में आया कि अपनी स्लेट मास्टर जी के सिर पर दे मारे। खुजलीवाली 'कांचोरि' बेल उनके शरीर पर रगड़कर उन्हें रुला दे। उसने झटपट अपनी स्लेट निकाली और उस पर मास्टर जी का बड़ा-सा चित्र बनाया। अपने मास्टर जी की तरह उनके चेहरे पर छोटी-छोटी मूंछें बनायीं। मूंछें बनाते ही उसे गुस्सा आ गया। वह एक सींक लेकर जोर-जोर से उसके सिर पर चुभोने लगा। फिर उसने उनकी आंखों को खोद डाला। आंखें बंद कर तेजी से सारे चित्र पर आड़ी-तिरछी अनेक रेखाएं खींच डालीं। रेखाएं खींचते समय उसकी बंद आंखों के सामने एक और दृश्य उभरा।

यदि घर में शांता उसके पास बैठी होती तो पिताजी घर के भीतर प्रविष्ट होते ही, "बेटी उस जंगली के पास मत बैठ, मेरे पास आ जा" कहकर उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लेते। राजा आंखें नीचे किये हुए अपनी छोटी बहिन की ओर झुककर उसके गालों को चूमते हुए अपने पिता की ओर देखता। उसके दिल में एक चुभन-सी होती। वह अपनी किताब वहीं पटककर "अम्मा ऽऽ" पुकारते हुए भीतर भाग जाता। मां उसे अपनी छाती से लगाकर खूब प्यार करती। राजा अपनी बहिन को देखकर

मुंह चिढ़ाता।

राजा ने आंखें खोलकर अपनी स्लेट की ओर देखा। आड़ी-तिरछी रेखाओं में मास्टर जी का चित्र पूरी तरह छिप गया था। मन में एक तरह की खुशी उमड़ी। स्लेट पर एक घूंसा मारकर उसे डेस्क के अंदर रख दिया और बड़बड़ाया 'एक दिन मास्टर जी की कुर्सी पर कांटे बिछा देने चाहिए' और वह उठ खड़ा हुआ।

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, उसे अपना एकाकीपन खलने लगा। वह अब दुखी रहने लगा। गणित के जो प्रश्न वह नहीं जानता था, उन्हें समझाने वाला कोई नहीं था। मौखिक रूप से गणित के प्रश्नों का हल करते समय अपनी स्लेट को तिरछा कर उन प्रश्नों का उत्तर बता देने वाला कोई नहीं था। उसके तमिल पाठों की नकल करनेवाला कोई नहीं था। यह सब सोचकर राजा ने मुट्ठी भींचकर दीवार पर कई मुक्के मारे।

अपनी बेंत को उसकी ओर बढ़ाते हुए मास्टर जी गरजे, "तूने अपना काम शुरू कर दिया ?" उसने आंखें नीची कर लीं।

मास्टर जी ने मौखिक रूप से हल करने के लिए गणित के दस प्रश्न दिए थे। उसके आठ उत्तर गलत थे। क्लास में सबसे ज्यादा गलत उत्तर उसी के थे।

मास्टर जी ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा, "कितने उत्तर गलत हैं ?"

"सर, दो उत्तर सही हैं ?"

"किसकी नकल की ?"

"सर, मैंने खुद ही प्रश्नों का हल किया है।"

अपनी कुर्सी पीछे खिसकाकर मास्टर जी उठ खड़े हुए।

"बोल, तूने किसकी नकल की ?"

"किसी की नहीं सर, मैंने खुद ही इन प्रश्नों को हल किया है।"

"मैं सब जानता हूं। सच-सच बता दे।"

"सर, मैंने ये प्रश्न खुद किये हैं।"

"क्यों रे, तूने फिर झूठ बोलना शुरू कर दिया ?"

मास्टरजी की बेंत की मार उसकी गर्दन और सिर पर पड़ी। वह उछलता हुआ पीछे की ओर दौड़ा। दो स्लेटें उसके पैरों तले दबकर टूट गयीं। मास्टर जी उसके पीछे-पीछे भागे। उन्होंने उसकी कमीज पकड़कर उसे रोक लिया और बोले, "सचाई तेरे मुंह से उगलवाकर ही रहूंगा।"

"अब भागेगा ?"

"...................."

"बोल !" कहकर उन्होंने घुटनों के नीचे बेंत से वार किया।

उसने अपना शरीर लचकाया।

"...................."

"अब भागेगा ?"

""सर, नहीं भागूंगा !"

"हाथ फैला...अच्छी तरह से फैला।"

राजा ने अपना हाथ पूरी तरह फैला दिया।

"घुटनों के बल बैठ।"

उसने घुटनों के बल बैठकर उनके सामने अपना हाथ फैला दिया। मास्टर जी ने पैनी दृष्टि से उसे देखा।

"अब सच-सच बता, किसकी कॉपी देखकर उन दोनों सवालों को हल किया था ?"

"सर, मैंने वे सवाल खुद किये थे !"

"तूने स्वामिनाथन की नकल की थी न ?"

"नहीं सर, खुद किये थे।"

"तू सच नहीं बोलेगा ?" कहकर उन्होंने बेंत से उसकी हथेली पर वार किया।

"सर मैंने" उसने अपनी बात शुरू की, मगर अचानक उसका मुंह टेढ़ा-सा हो गया। वह अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाया। उसका चेहरा फूल गया। वह उसी तरह घुटनों के बल बैठा रहा। मास्टर जी उसे पीटते-पीटते थक गये। उन्होंने बेंत पीछे फेंक दी। "ठहर जा, मैं तुझे मार डालता हूं।" कहकर उन्होंने उसके बाल पकड़कर उसे पीछे धकेला।

जब-जब वह गलती करता, वे उसकी स्लेट छीनकर दूर फेंक देते। जब वे ऊबकर उससे कहते, "पढ़ाई करना तेरे बस का नहीं है। तू जाकर ढोर चरा" तब वह चुपचाप सिर झुकाये खड़ा रहता। मास्टर जी आंख उठाकर उसे देखते तो एकाएक उनके तन-बदन में आग-सी लग जाती। वे चिल्ला उठते, "खड़ा क्यों है ? दफा हो जा।"

जुलाई महीने के शुरू से मास्टर जी ने पढ़ाना कम कर दिया। एक दिन उन्होंने क्लास में आकर गणित के पांच प्रश्न हल करने को दिये। अगले दिन उनके क्लास में आने पर सभी अपनी-अपनी स्लेटें लेकर उनके पास दौड़े, किंतु मास्टर जी ने उनकी ओर कोई ध्यान न देकर उन्हें और नौ प्रश्न हल करने को दे दिये। एक लड़का चिल्लाया, "मास्टर जी स्लेट में इतनी जगह नहीं है।"

"जितनी जगह हो उतने प्रश्न हल कर लो," यह कहकर वे तेजी से बाहर निकल गये।

तीसरे दिन वी. आर. पाप्पा नामक छात्रा ने आकर बताया कि वे पांचवीं कक्षा में खड़े चित्र बना रहे हैं। उसकी बात पर किसी ने विश्वास नहीं किया। सामान्यतः लड़कियों से प्राप्त सूचना की ओर लड़के ध्यान नहीं देते थे।

किंतु जब अगले दिन और उसके अगले दिन भी यही समाचार बार-बार सुनने

को मिला तब शंकरन और वेणुगोपालन पांचवीं कक्षा की ओर गये और खिड़की से सब कुछ देखकर लौटे। इसके बाद यह प्रमाणित हो गया कि यह समाचार बिल्कुल सच है। मास्टर जी चित्र बना रहे हैं, यह समाचार पाते ही विद्यार्थियों ने पाठ पढ़ना और गणित के प्रश्नों को हल करना छोड़ दिया।

राजा भी पांचवीं कक्षा की खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। मास्टर जी मेज़ पर खड़े होकर ऊंची सफेद दीवार पर एक बड़े से पेड़ का चित्र बना रहे थे। उसी पेड़ के पास एक दूसरा पेड़ था, उससे तनिक छोटा। इस प्रकार वहां लगभग सौ पेड़ थे। वह एक वन का दृश्य था। वन के एक छोर से एक बाइसन भैंसा अपने शरीर को जोर से हिलाते हुए, सिर झुकाये, जोर से गरजता हुआ आ रहा था। राजा ने अपनी आंखें नीची करके उसे ध्यान से देखा। उसे वह चित्र बहुत अच्छा लगा। उसने पहली बार अपने मास्टर जी को तनिक गौर से देखा। उनका हाथ तेजी से कभी ऊपर तो कभी नीचे की ओर जा रहा था। पेड़ों की बड़ी टहनियों से छोटी टहनियां और छोटी टहनियों से असंख्य पत्ते निकलते हुए दिखायी दिये। इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए राजा प्रतिदिन पांचवी कक्षा की खिड़की के पास जाकर खड़ा होने लगा।

काफी दिनों बाद पांचवीं कक्षा की सभी दीवारों पर बड़े-बड़े चित्र बनाकर मास्टर जी अपनी कक्षा में लौट आये। कक्षा में कहीं व्यवस्था नहीं थी, सब कुछ अस्त-व्यस्त पड़ा था, किंतु उन्होंने इसकी चिंता नहीं की। कक्षा की सफेद दीवारों को इधर-उधर ठोक-पीटकर देखा। उन्हें सब कुछ ठीक लगा।

राजा जहां बैठता था उसके ठीक ऊपरवाली दीवार पर उन्होंने गांधी जी का बड़ा-सा चित्र बनाया। पोपले मुंहवाले गांधी जी; चेहरे पर हल्की हंसी; एक हाथ ऊपर उठा हुआ; कमर पर धोती, और चेन के सहारे लटकती एक जेबघड़ी। उन्होंने बड़े धैर्य के साथ धीरे-धीरे यह सब कुछ चित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया।

जैसे ही मास्टर जी ने चित्र बनाना प्रारंभ किया, कक्षा में पढ़ाई का काम बिल्कुल ठप्प हो गया। विद्यार्थीगण इधर-उधर घूमने लगे। जब शोर बहुत अधिक हो जाता, तब मास्टर जी चिल्लाकर पूछते थे "मैं आऊं ?" बस शोर एकदम समाप्त हो जाता और वहां शांति छा जाती।

गांधी जी का चित्र पूरा कर मास्टर जी ने एक झंडा बनाया...तिरंगा झंडा। यह झंडा आकार में गांधी जी के चित्र से छोटा, किंतु उससे ऊंचा था। वह हवा में लहराता हुआ-सा दिखायी दे रहा था। झंडे का ऊपरी भाग नारंगी और बीच का भाग सफेद था। उसके बीचोंबीच नीले रंग का एक चक्र था। यह सब बना चुकने के तीन दिन बाद झंडे के निचले भाग पर हरा रंग लगाया गया। जब मास्टर जी बीच का चक्र बना रहे थे, तब प्रिंसिपल रामस्वामी अय्यर और कमलम टीचर दोनों वहां आये।

मास्टर जी मेज पर से नीचे उतरे।

प्रिंसिपल महोदय ने पूछा, "संतानम्, शायद तुम खाना खाने भी नहीं गये ?"

"बस, दो अरें और खींचनी हैं। उसे पूरा करके जाने की सोच रहा हूं।"

प्रिंसिपल महोदय प्रसन्न होकर बोले, "मैं आठ स्कूलों में घूम आया हूं। इस समय हमारा स्कूल ही सबसे सुंदर है। इसका सारा श्रेय आपको ही जाता है।"

मास्टर जी ने कमलम टीचर की तरफ तनिक मुंह फेरा फिर धीरे से बोले, "सर, यह तो मेरी ड्यूटी है।"

कमलम टीचर ने शिकायत के स्वर में कहा, "श्रीमान हमारी कक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं देते।"

"मैडम, मेरे पास फुर्सत कहां है ?"

रामस्वामी अय्यर ने समर्थन में सिर हिलाया। फिर बोले, "मैडम, उनके पास सचमुच बिल्कुल समय नहीं है।"

कमलम टीचर हंसती हुई जीने से नीचे उतर गयीं।

एक दिन सारे चित्र बना चुकने के बाद मास्टर जी ने सभी छात्र-छात्राओं को अपने पास बुलाया और उनसे पूछा, "क्या तुम जानते हो कि हमें स्वतंत्रता मिलने वाली है ?" उनकी वाणी से झलकती भावविहवलता को देखकर सभी ने सिर हिलाकर हामी भरी।

तब मास्टर जी बोले, "हमें पंद्रह तारीख को स्वतंत्रता मिलेगी। यह हमारा पहला स्वतंत्रता-दिवस समारोह होगा। इसे हमें बड़ी धूमधाम से मनाना है। तुम सब एक-एक रुपया लेकर आना।"

अगले दिन से उन्होंने एक कापी पर चंदा देनेवाले विद्यार्थियों का नाम लिखना शुरू कर दिया। चंदा देनेवालों में पांचवां नाम राजा का था। पहले मास्टर जी ने उसके नाम की जगह हकला लिखा फिर एकाएक उसे काटकर उसका पूरा नाम आर. राजा लिख लिया। एक दिन शाम को सभी छात्रों को अपने पास बैठाकर उन्होंने उनसे कहा, "तुम सब लोग एक-एक झंडा लेकर आना।" उन्होंने झंडे के विविध रंग, उन रंगों के क्रम, झंडे की लंबाई-चौड़ाई आदि के बारे में उन्हें सब कुछ बताया। उन्होंने यह भी बताया कि झंडे के बीच के चक्र में 24 अरें होती हैं।

शंकरन ने पूछा, "सर, कपड़े का झंडा ले आयें ?"

कुछ देर सोच-विचार करने के बाद मास्टर जी बोले, "नहीं, कागज का बना झंडा ही लाना।"

अपनी कक्षा को सजाने का काम शंकरन के साथ राजा को भी दिया गया। उसने बड़ी प्रसन्नता से यह जिम्मेदारी स्वीकार कर ली। उसने ताड़ और नारियल के पेड़ों की कोपलों से अनेक सुंदर तोरण बनाये। 14 तारीख की शाम को बहुत देर तक वह कक्षा को सजाने का काम करता रहा। कमलम टीचर के साथ मिलकर उसने रंगीन कागज और चमकीली पन्नियां काटकर जगह-जगह चिपकायीं। उसे

बड़ी फुर्ती और चतुराई से काम करता देख कमलम टीचर ने उससे पूछा, "तेरा नाम क्या है ?" अपना काम करते-करते वह बोला, "आर. राजा।"

अगले दिन सुबह राजा ने नये कपड़े पहने और अपने तने हुए झंडे को बड़ी सावधानी से ऊंचा उठाये हुए स्कूल की ओर चला। उत्तर दिशावाली गली पार करते समय उसे अपने मास्टर जी सामने से आते दिखायी दिये। वह तनिक पीछे हट आया और किसी दूसरे रास्ते से निकल गया। उसको स्कूल बहुत सुंदर लग रहा था। एक क्षण के लिए वह यह सोचकर विस्मित हुआ कि क्या यह उसी का स्कूल है।

एक बड़ी कार में से एक सज्जन उतरे और उन्होंने आकर झंडा फहराया। झंडे के ऊपर पहुंचते ही प्रिंसिपल महोदय ने रस्सी को धीरे से हिलाया। पहले से ही झंडे में लिपटी गुलाब की पंखुंडियां चारों तरफ बिखर गयीं। सभी विद्यार्थियों ने प्रसन्न होकर ताली बजायी।

कमलम टीचर ने ऊंचे स्वर में सुब्रह्मण्य भारती का यह गीत गाया–'देखो भारतमाता की अनमोल ध्वजा।' उनकी सुरीली आवाज बहुत दूर तक गूंज रही थी। राजा ने पंजों के बल खड़े होकर संगीत का आनंद लिया। समारोह समाप्त होते ही उसने कमलम टीचर के पास जाकर कहा, "मैडम, आपका गाना बहुत सुंदर था।"

कमलम टीचर ने चकित होकर उसे गौर से देखा।

"तू कौन-सी क्लास में पढ़ता है ?"

"फोर्थ-बी।"

"अगले सप्ताह तू मेरी क्लास में आ जायेगा।"

राजा यह बात नहीं जानता था। अतः चुप रहा। अगले सप्ताह उसके मास्टर जी की कहीं और बदली हो गयी। चौथी कक्षा के 'बी' सेक्शन के सभी विद्यार्थी 'ए' सेक्शन में चले गये। जब राजा ने कक्षा में प्रवेश किया, उस समय कमलम टीचर कुछ लिख रही थीं।

पहले एक-दो दिन वे उसे नहीं पहचान पायीं। तीसरे दिन जब उसने अपना 'गृहकार्य' उन्हें दिखाया, तो उसकी सुंदर लिखावट देखकर उन्होंने सिर ऊपर उठाया, और उसे देखकर कुछ सोचने लगीं। कुछ देर सोचने-विचारने के बाद उन्होंने हंसते हुए पूछा, "तू राजा है न ?"

"हां, मैडम।"

"उस दिन तूने ही मेरे गाने की तारीफ की थी न ?"

राजा ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

टीचर ने उसकी स्लेट ऊपर करके सबको दिखायी और बोलीं, "लिखावट ऐसी होनी चाहिए कि देखते ही लगे, मोती पिरो दिये गये हैं।" छात्रों की ओर मुंह फेरकर वे बोलीं, "जरा अपनी लिखावट पर भी गौर करो।" जब वह अपनी स्लेट लेकर

पीछे जा रहा था, तब टीचर ने उसे रोकते हुए कहा, "राजा, कहां जा रहा है ? इधर आ !" और उन्होंने उसे पहली पंक्ति में बैठा दिया।

जब-जब वह गणित के प्रश्नों का हल करते समय कोई गलती करता, टीचर उसे "राजा यहां आ" कहकर अपने पास बुलातीं और पूछतीं, "जब तू बाकी सभी विषयों में होशियार है, तो गणित में इतनी गलतियां क्यों करता है ?" और फिर उसे गणित का एक-एक प्रश्न समझातीं। कभी-कभी वे उसे अपने घर बुलाकर भी गणित के प्रश्न समझाती थीं। तीन महीने में ही उसने गणित में भी काफी योग्यता प्राप्त कर ली। जब उसने क्लास में दिये गये गणित के आठों प्रश्नों को सही-सही हल कर लिया, तब कमलम टीचर बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने सिर हिलाते और हंसते हुए उसे सौ में सौ अंक दिये।

जैसे-जैसे कमलम टीचर से उसकी मित्रता बढ़ती गयी, उसके व्यवहार में भी अंतर आता गया। अब वह स्लेट को जमीन पर नहीं पटकता था; पास बैठे छात्र की जांघ पर चिकोटी नहीं काटता था, मास्टर जी का चित्र बनाकर उनकी आंखें नहीं फोड़ता था। इन सब बातों के लिए मानो उसके पास समय नहीं था। वह सदा कमलम टीचर के साथ ही घूमता रहता था। हर रविवार को वह अपने घर से कमलम टीचर के लिए केवड़े का फूल लेकर जाता था। केवड़े का फूल देखते ही वे पूछतीं, "तूने कैसे जान लिया कि मुझे यह फूल बहुत पसंद है ?" और उसे अपने से चिपटा लेती थीं। उनका मधुर स्पर्श पाकर वह क्षणभर के लिए आत्मविस्मृत हो जाता। यह अनुभव फिर पाने के लिए प्रतिदिन टीचर के घर जाने की उसकी इच्छा होती।

एक दिन छत पर बैठकर अपने लंबे बालों को सुलझाती हुई कमलम टीचर बोलीं, "मेरी शादी होनेवाली है।"

उसने धीरे से आंखें उठाकर टीचर को गौर से देखा।

"शादी होने में अभी कुछ दिन बाकी हैं।" यह कहकर वे उसे देखकर हंसने लगीं। जाने क्या सोचता हुआ वह नीचे उतर आया और अपने घर भाग गया, किंतु उसी शाम को वह तनिक सकुचाता हुआ पुनः उनके घर गया। उसे देखकर कमलम टीचर को आश्चर्य हुआ। उन्होंने दरवाजे के पास आकर, "आओ राजा" कहकर उसे बुलाया और उसका हाथ पकड़कर अंदर ले गयीं।

एक शनिवार को कमलम टीचर बालों में ढेर-सारे फूल लगाकर स्कूल आयी थीं। अभी स्कूल लगने में देर थी।

प्रधानाचार्य रामस्वामी अय्यर तेजी से तीसरी कक्षा में गये। वहां सभी प्राध्यापक एक साथ खड़े होकर धीमे स्वर में आपस में बातचीत कर रहे थे।

जब सभी विद्यार्थी प्रार्थना के लिए एकत्रित हुए तब राष्ट्रीय झंडा झुका हुआ था।

रामस्वामी अय्यर ने आगे आकर कहा, "कल महात्मा गांधी का स्वर्गवास हो

गया। किसी ने उन्हें गोली चलाकर मार डाला।" सहसा उनकी आंखें भर आयीं। वे आगे कुछ भी नहीं बोल सके। दुखी होकर वे पीछे की ओर चल दिये।

क्षण भर के लिए वहां गंभीर शांति छा गयी।

कमलम टीचर ने भावविह्वल होकर धीमे स्वर में गांधीजी की स्तुति में सुब्रह्मण्य भारती द्वारा रचित यह गीत गाया–"जियो, जियो तुम बापू, युग-युग जियो।" गीत समाप्त होने पर सबने दो मिनट मौन खड़े होकर राष्ट्रपिता गांधी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

स्कूल की छुट्टी की घोषणा की गयी। राजा सकुचाते हुए टीचर के पास गया। "थोड़ी देर रुको" कहकर वे रामस्वामी अय्यर के साथ अंदर गयीं। स्कूल के आठों अध्यापक देश में घटित इस अमंगलकारी घटना के बारे में काफी देर तक चर्चा करते रहने के बाद बाहर आये।

कमलम टीचर बाहर आते ही राजा को देखकर मुस्कुरायी।

रास्ते भर सभी जगह राष्ट्रीय झंडे झुके हुए थे। लोग जल्दी-जल्दी अपनी दुकानें बंद कर रहे थे,मानो हड़ताल हो गयी हो।

घर पहुंचते ही कमलम टीचर राजा को ऊपर ले गयीं।

"अगले सप्ताह से मैं स्कूल नहीं आऊंगी।"

"क्यों टीचर ?"

"मेरी शादी होनेवाली है।"

"कब टीचर ?"

"लगभग एक महीने बाद।"

टीचर ने कुर्सी से उठकर उसे पैनी दृष्टि से देखा। उसने शर्म से अपनी आंखें बंद कर लीं।

"राजा ! मेरी तरफ देखो।"

उस दिन राजा बहुत देर से घर लौटा। मां उस पर नाराज हुई; उसे डांटा-फटकारा, किंतु राजा कुछ नहीं बोला। उसे थकान-सी महसूस हो रही थी। वह जाकर बरामदे में लेट गया।

राजा एक सप्ताह तक स्कूल नहीं गया। मां उसे अपने साथ शीर्कालि ले गयी थी। वहां से लौटकर जब वह स्कूल गया, तब कमलम टीचर वहां नहीं थीं।

शंकरन बोला, "टीचर जी बुधवार को ही चली गयीं।"

"अच्छा..."

"टीचर ने तेरे बारे में दो बार मुझसे पूछा था।"

उसने तनिक खीझभरे स्वर में कहा, "अच्छा।"

कुछ दिन बीत गये। चौथी कक्षा को फिर से 'ए' और 'बी' सेक्शनों में बांट दिया गया। 'बी' सेक्शन को पढ़ाने के लिए एक बहरे अध्यापक की नियुक्ति की

गयी। राजा फिर से पीछे की पंक्ति में बैठने लगा। गणित के प्रश्नों को हल करते समय उससे फिर अनेक गलतियां होने लगीं।

वार्षिक परीक्षा हुई। राजा ने भी सबकी तरह नकल की। उसने गणित में नवां स्थान प्राप्त किया।

'एक राजा'–इस देश का

नांजिल नाडन

कोई नहीं जानता कि 'उनका' नाम क्या था ! छोटे से लेकर बड़े तक सभी उसे 'वैत्तियन' (नाई) कहकर पुकारते हैं। मतदाताओं की सूची देखकर शायद उसका नाम जाना जा सकता है, किंतु उसने नाम जानने का प्रयत्न न कर स्वर्गीय कोंबय्या देवर के नाम से अथवा शहर छोड़कर जा चुके नल्ल तंबी कोनार के नाम से वोट दे दिया। अब पंचायत के प्रधान के चुनाव में यह सब कुछ नहीं हो सकता। 'रोलर' चिह्न वाले उमैयोरूपागन पिल्लै और 'पेठा' चिह्नवाले भूतलिंगम पिल्लै उसी गांव के निवासी हैं। अतः किसी ने भी जाली वोट डालने की, वह भी ऐसे व्यक्ति के माध्यम से जिसे सारा गांव जानता हो, हिम्मत नहीं की। चुनाव सभाओं के कारण जब सारे गांव में भीषण कोलाहल हो रहा था, तब अपने-आप को उपेक्षित होता देख 'वैत्तियन' मन ही मन अत्यंत दुखी हुआ। इतना ही नहीं, अपने जनतांत्रिक अधिकार की अवहेलना होने से वह क्रोधित भी हुआ।

बिना किसी कारण एक वोट को इस प्रकार नष्ट होते देख दोनों दलों को निराशा हुई। किसी से पूछकर भी उसका नाम नहीं जाना जा सकता, क्योंकि 'उसकी' आयु का कोई व्यक्ति आज जीवित नहीं है। इस समय पंचायत का कार्यभार जिन सदस्यों के हाथ में है, उनके जन्म के बाल इसी वैत्तियन ने उतारे थे। अतः कोई कारण नहीं कि वे उसका नाम जानते।

यदि कोई उसका नाम जान लेने की बाल सुलभ जिज्ञासा के वशीभूत हो उसके पास जाकर उसका नाम पूछता, तो वह यही उत्तर देता, "बाबू ! मेरे नाम से आपको क्या लेना-देना ? क्या मेरे नाम कोई केस दर्ज कराओगे ?" ऐसे समय में, जबकि वह स्वयं अपना नाम भूल चुका था, उसके मन में यह विचार नहीं आया कि मतदाताओं की सूची में उसका वास्तविक नाम अवश्य लिखा होगा।

उस गांव के मतदाताओं की सूची में दो नाम ऐसे थे, जिनके बारे में लोग नहीं जानते थे कि वे किन व्यक्तियों के हैं। मतदाताओं की सूची की छानबीन करते हुए 'पेठा' चिह्न का समर्थक माणिक्कम यह सोच-सोचकर चकित होता रहा कि ये नाम किस-किसके होंगे। उसकी आंखों के सामने रह-रहकर वैत्तियन का चेहरा

घूम रहा था। उनमें पहला नाम था–पुगैयिलैया पिल्लै। यह नाम उसका नहीं होगा। दूसरा नाम था–अंणंज पेरूमाल। शायद यही वैत्तियन का नाम होगा–ऐसा अनुमान कर माणिक्कम ने आयु पर गौर किया। बयासी वर्ष पढ़ते ही वह खुशी से उछल पड़ा।

बोलचाल में कोच्च नल्लूर नाम से प्रसिद्ध और व्याकरण के नियमानुसार कोच्चडैय नल्लूर कहे जाने वाले उस गांव में लगभग 100 मकान थे। इन सौ मकानों में पितृसत्तात्मक, मातृसत्तात्मक और शैवमतानुयायी–वर्गों में सम्मिलित किये जाने वाले कृषकों के मकान कुल मिलाकर साठ थे (मैं विनम्रतापूर्वक यह सूचित करता हूं कि इन वर्गों का क्रम जनसंख्या के आधार पर रखा गया है, उनकी उच्चता या निम्नता को ध्यान में रखकर नहीं। इस कहानी के लेखक को इस बात का बड़ा दुख है कि शेकुंदर, काणियालर, कार्कान्नार, वीर शैवर, तुलु वेलालर आदि वर्गों के प्रतिनिधि इस गांव में क्यों नहीं हैं ?)।

वहां तिरूवलुवर के शब्दों में "सभी जीवों के प्रति प्रेम और आदर का भाव रखनेवाले" (ब्राह्मण) लोगों के सात मकान हैं, जिन्हें 'ग्रामम्' या 'ब्राह्मणक्कुडि' कहा जाता है। वेलालर (कृषक) लोगों की यह निश्चित धारणा है कि जनेऊधारी सभी व्यक्ति ब्राह्मण हैं। अतः वे उन लोगों की वास्तविक स्थिति जाने बिना उनकी 'एकता' देख उनसे अत्यधिक ईर्ष्या करते हैं। इसके अतिरिक्त हिंदू धर्म की एकता का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए से नाडार, देवर, वण्णार, नाविदर आदि विभिन्न वर्गों के हिंदू लोग भी वहां रहते हैं।

इन सबके अतिरिक्त वहां ऐसे लोग भी थे, जो निश्चित रूप से यह नहीं जानते थे कि वे हिंदू हैं, ईसाई हैं या दोनों अथवा दोनों ही नहीं। यदि उन लोगों के आराध्य देवी-देवताओं को ध्यान में रखते हुए हिसाब लगाया जाय, तो हमारे सामने एक लंबी सूची आ जाती है–शुडलैमाडन, ईनाप्पेच्चि, इशक्किक अम्मान, तेरडिमाडन, पुलैमाडन, मुत्तुप्पट्टन, कुलुमाडन, वंडिमरिच्चान, मुंडन, मुत्तारम्मन, शूलैप्पिडारि, चंदनमारि आदि, आदि। यह सूची उस गांव के मतदाताओं की सूची से कहीं लंबी है।

यदि आप ईश्वर की विभिन्न अवतार-लीलाओं की महिमा का गान करते हुए यह सिद्ध करेंगे कि ऊपर कथित सभी देवतागण हिंदुओं के आराध्य देवता हैं, तो मैं कहूंगा कि वे लोग भी हिंदू ही हैं। 'अ' 'ब' के बराबर है। 'ब' 'स' के बराबर है अतः 'अ' 'स' के बराबर है। यदि हम गणित के इस सिद्धांत का प्रयोग करें, तो इस रूप में उन्हें जोर देकर हिंदू प्रमाणित कर सकते हैं–ये लोग इन विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना करते हैं, ये सभी देवी-देवता हिंदुओं के हैं, अतः ये लोग भी हिंदू ही हैं। इन सभी झंझटों से बचने के लिए ही अंग्रेजों ने अनेक जाति, देवी-देवता, विविध प्रकार की भाषा, संस्कृति आदि से युक्त इस देश को 'इंडिया' और वहां

के जनसमूह को हिंदू नाम दिया होगा ! जिन लोगों के बल-बूते पर धार्मिक संस्थानों के अधिपति और जगत्गुरुगण आंकड़े प्रस्तुत कर यह घोषणा करते हैं कि हमारे देश में इतने प्रतिशत लोग हिंदू हैं, उनमें इस गांव में बड़ी संख्या में प्राप्त हिंदू लोग भी सम्मिलित हैं।

इस प्रकार कोच्चनल्लूर में रामराज्य की अनेक विशेषताएं थीं, किंतु पंचायत के प्रधान का चुनाव कोई सामान्य बात थोड़े ही है ? दोनों दलों में जबरदस्त प्रतियोगिता थी। इसमें लोगों को तसल्ली देनेवाली बात सिर्फ यही थी कि दोनों प्रतिद्वंद्वी वेलालर (कृषक) जाति के थे। दोनों का संबंध वेलालर जाति के एक विशेष वर्ग से था। उनमें परस्पर साला-बहनोई का रिश्ता था। अतः उन दोनों के बीच जहां जबरदस्त प्रतियोगिता थी, वहीं जाति को लेकर कोई संघर्ष नहीं था। स्थिति यह थी कि गांव भर के लोगों को किसी न किसी का पक्ष अवश्य लेना था। इन सौ घरों के अतिरिक्त, उस गांव में काई से ढका एक तेप्पक्कुलम्,* उसके किनारे स्थित अय्यपन का एक मंदिर, जिसमें अब पूजा-पाठ नहीं होती, कुछ ऊंचे मंडप, एक जीर्ण-शीर्ण मंडप, जिसमें रात को सात बजे के बाद कानून के नियमों के विरुद्ध पीने-पिलाने का कार्यक्रम चलता था, सोंठवाली कॉफी की एक दुकान, पान-सुपारी से लेकर 'टाम टाम' टॉनिक तक—सभी वस्तुएं बेचनेवाले पंसारी की एक दुकान, सात-आठ नारियल के बाग, बीस खलिहान और उसके चारों तरफ धान के खेत। यह भी एक अच्छी बात थी कि मनुष्यों के अलावा अन्य जीव-जंतुओं और जड़ पदार्थों को वोट देने का अधिकार नहीं मिला था, अन्यथा उन दोनों उम्मीदवारों के भरोसे जीवन-यापन करनेवाले लोगों के सामने जो धर्मसंकट था, वही इन सभी जीवों और पदार्थों के सामने भी होता।

जहां देखो वहीं प्रायः इस बात का अनुमान लगाया जा रहा था कि कुल वोटों में से किसको कितने वोट मिलेंगे। 'पेठा' चिह्नधारी उम्मीदवार की छोटी बहिन का नाम इस गांव के मतदाताओं की सूची में था, अतः वह एक सप्ताह पहले ही नांगुनेरी से यहां आ गयी थी। यह सब जानकर 'रोलर' चिह्नवाले उम्मीदवार भला चुप कैसे रहते ? उन्होंने पुलियंकुडि में नौकरी करनेवाले अपने छोटे भाई के नाम तार दे दिया। उसे यह आदेश दिया गया—"पत्नी को साथ मत लाना; तुम अकेले ही आना।" उसकी पत्नी 'पेठा' चिह्नधारी की बहिन थी (सुविधा के लिए आगे सर्वत्र चुनाव-चिह्नों द्वारा उम्मीदवारों की ओर संकेत किया गया है)। पति चाहे कितनी ही जबरदस्ती क्यों न करे, भाई के प्रेम में पड़कर यदि वह 'पेठे' को वोट दे दे तो ? यहां एक वोट के अधिक होने से क्या लाभ ? इससे अच्छा तो यही है कि वे दोनों ही न आयें।

जोड़-घटाकर, गुणा-भाग करके लोगों ने यही हिसाब लगाया कि चाहे जो भी

---

* मंदिर के अहाते में स्थित वह तालाब, जिसमें उत्सवों के दिन देवताओं की मूर्तियों को नौकाओं में तैराया जाता है।

जीते, केवल दस वोटों से जीत सकेगा। चुनाव के कार्य के लिए दोनों ने जो कार्यालय खोले थे, वे सदा खचाखच भरे रहते थे। जैसे-जैसे चुनाव का दिन समीप आ रहा था, वैसे-वैसे पान-सुपारी, बीड़ी, सोंठवाली कॉफी, बड़ा, ताश की गड्डी आदि का खर्च गुणोत्तर श्रेणी से बढ़ता जा रहा था। चुनाव के एक दिन पहले खर्च का ज्वर इतनी तेजी से बढ़ा कि सब लोग यह सोचकर भयभीत हो गये कि कहीं सन्निपात न हो जाय। इस ऐतिहासिक घड़ी में माणिक्कम 'पेठा' कार्यालय से अचानक बाहर निकला।

उसके चेहरे पर प्रसन्नता झलक रही थी, मानो उसे अपने कार्य में सफलता मिल गयी हो। उसने जिस अणंज पेरूमाल की खोज की है, वह वैत्तियन ही है और कोई नहीं, इस ऐतिहासिक सत्य को वह चुपचाप असंदिग्ध रूप से निरूपित करने के लिए छटपटा रहा था। वह जानता था कि उस समय 'वैत्तियन' कहां होगा।

अय्यप्पन मंदिर की ओर कदम बढ़ाते ही माणिक्कम के मन में सहसा एक नया विचार जागा। यदि मैं सीधे रास्ते जाऊंगा तो क्या विरोधी पक्ष के लोग यह नहीं सोचेंगे कि यह व्यक्ति इस समय इस रास्ते क्यों जा रहा है ? कल सुबह चुनाव है, ऐसे में उनके मन में किसी संदेह का जागना सहज स्वाभाविक है न ? यदि 'रोलर' के जासूस मुझे देख लें और वे मेरी जासूसी करने अथवा मेरा पीछा करने लग जायें तो बड़ा बुरा होगा। अपने दिमाग पर जोर लगाकर, इतनी मेहनत करके मैंने जिस मतदाता को खोजा है, यदि उसे विरोधी दल के लोग अपनी ओर करने का यत्न करने लग जायें तो...?

ठीक समय पर अपने मन में उत्पन्न इस विवेकपूर्ण विचार के लिए अपनी प्रशंसा करते हुए माणिक्कम घुमावदार रास्ते से अय्यप्पन मंदिर की ओर बढ़ गया। स्कूल के रास्ते से वह नारियल के बाग में पहुंचा। वहां से चलकर ऊसर खेत को पारकर मेड़ पर से होते हुए वह पगडंडी पर चलने लगा और अंत में मंदिर के पिछवाड़े पहुंच गया। अचानक वह यह सोचकर चिंतित हुआ कि यदि वैत्तियन अकेला न मिला तो क्या होगा।

वह मंदिर के प्रवेश-द्वार पर पहुंचा। मार्गशीर्ष का महीना था अतः वहां एक चिड़िया भी नहीं दिखायी दी। उत्तर-पूर्व दिशा में, दीवार से सटे हुए चिथड़ों की गठरी की तरह सिकुड़कर लेटा हुआ वह व्यक्ति 'वैत्तियन' ही होगा। जब से वैत्तियन की दृष्टि धुंधली हो गयी, उसके हाथ कांपने लगे, हजामत बनाते समय लोगों के कानों के पास उसके उस्तरे के निशान पड़ने लगे और उसका व्यवसाय छूट गया, तब से मंदिर का यह कोना ही उसका स्थायी निवास-स्थान बन गया है।

रात के नौ बज चुके थे। अब तक वह सो चुका होता, किंतु थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसकी खांसी प्रकट होकर अपने अस्तित्व को प्रमाणित कर रही थी। मंदिर के उस कोने में पहुंचकर माणिक्कम् ने इधर-उधर देखा। वहां दूर-दूर तक कोई न

था। कल सुबह चुनाव है। सारा गांव उसकी तैयारियों में लगा हुआ है। ऐसे में कौन इस सुनसान जगह आयगा ?

उसने वैत्तियन की ओर देखते हुए धीमी आवाज में उसे पुकारा–

"वैत्तिया...ओ वैत्तिया !"

उसकी ओर से कोई जवाब नहीं मिला। कानों तक चादर तानकर सोने के कारण शायद उसे कोई आवाज नहीं सुनायी दी थी। माणिक्कम् ने चिथड़ों की गठरी से पड़े उस व्यक्ति को कंधों से पकड़कर हिलाया। वह बिना चीखे-चिल्लाये, बिना भयभीत हुए शांतिपूर्वक उठकर बैठ गया। माणिक्कम् की ओर देखते हुए उसने शांत स्वर में पूछा–

"क्या बात है, बाबूजी ? क्या घर में कोई...."

माणिक्कम् जान गया कि वह क्या पूछ रहा है। कोई और अवसर होता तो वह उसके इस प्रश्न का कोई और उत्तर देता, किंतु वह जानता था कि इस समय उसका एक वोट कितना कीमती है। अतः उसने शांत भाव से उत्तर दिया, "ऐसी कोई बात नहीं है। मैं तुमसे कुछ पूछने आया हूं।"

वैत्तियन के मन में भय की भावना उदित होकर धीरे-धीरे फैलने लगी। 'आधी रात को मुझे जगाकर यह क्या पूछना चाहता है ?'

"तुम्हारा नाम अणंज पेरूमाल है न ?" इस प्रश्न को सुनते ही वैत्तियन चकित-सा रह गया !

"इस व्यर्थ के पचड़े में क्यों पड़ते हैं ? क्या इतनी-सी बात के लिए आप इस समय यहां आकर शोर मचा रहे हैं ?"

"यह बताओ कि क्या तुम्हारा नाम यही है ?"

"आपको किसने बताया ? जब मैं ही अपना नाम भूल चुका हूं, तो आप उसकी खोज क्यों कर रहे हैं ?"

"देखो, किसी को कानों-कान खबर मत होने देना। तुम्हारा नाम मतदाताओं की सूची में है। मैं कल सुबह यहां आकर तुम्हें कार में ले जाऊंगा। तुम्हें कॉफी, नाश्ता सब कुछ मिलेगा। 'रोलर' वाले आयें तो उनको वोट देने से साफ मना कर देना, समझे !"

इस तरह के विचारों ने वैत्तियन के मन में नया जोश भर दिया कि मैं भी एक धर्मनिरपेक्ष समाजवादी गणतंत्र के मुकुटहीन राजाओं में से हूं, मुझे भी वोट देने का अधिकार है। उसके सिकुड़े हुए कंधे कुछ फैल-से गये।

"बाबू, मैं किसी से क्यों कुछ कहने लगा ? उस दिन 'रोलर' के समर्थकों ने मुझसे कहा था, 'अब तक तू मरे हुए लोगों के बदले वोट डालता रहा। इस बार किसी के कहने में आकर यदि तू वोट डालने आया तो देखना कि हम तेरी क्या गत बनाते हैं...तुझे पकड़कर पुलिस के हवाले कर देंगे।' उनके इस तरह डराने-धमकाने

के कारण ही मैं चुप पड़ा हूं। इस समय साला-बहनोई आपस में भिड़ रहे हैं, कल दोनों मिलकर एक हो जायेंगे। उनके बीच पड़कर कौन बदनामी मोल ले, यही सोचकर मैं चुपचाप यहां आकर पड़ गया। क्या मेरा नाम मतदाताओं की सूची में है ? मुझे आज तक यह बात क्यों नहीं मालूम हुई...?"

"आज तक क्या, इस समय तक भी कोई इस बात को नहीं जानता। मैंने ही तुम्हारा नाम खोज निकाला है। तुम्हारा नाम पहले भी मतदाताओं की सूची में रहा होगा, लेकिन किसने मेरी तरह ध्यान से देखा होगा ? अब छोड़ो इस बात को। मैं तुम्हारे लिए नयी धोती और नया तौलिया खरीदकर रखने के लिए कह दूंगा। तुम सुबह मेरे साथ आकर इडली खाकर, नये कपड़े पहनकर, वोट डालने चले जाना। मैं तुम्हें सब कुछ समझा दूंगा। यह राज किसी को मत बताना, समझे ?"

"आपने मुझे इतना समझा दिया, अब मैं किसी से क्यों कुछ कहूंगा ?"

वैत्तियन की ओर से आश्वासन पाकर माणिक्कम् बहुत प्रसन्न हुआ। अपने प्रयत्नों में सफल हो जाने के कारण छाती फैलाये वह 'पेठा' चिह्नवाले उम्मीदवार के घर की ओर चल दिया।

वहां के वातावरण में एक राजसभा की शोभा थी। बंगले के बीचोंबीच 'पेठा' चिह्न के उम्मीदवार विराजमान थे। उस घर की सारी बेंचें और कुर्सियां वहां बिखरी पड़ी थीं। सब कुछ देखकर ऐसा लगता था मानो वहां किसी की शादी की तैयारी हो रही हो। वहां उन मतदाताओं की भीड़ लगी थी जो आ आकर 'पेठा' को वोट देने का आश्वासन दे रहे थे। जहां-तहां पीक से भरे दो-तीन पीकदान पड़े हुए थे। आनेवाले सभी लोगों को पिलाने के लिए सोंठवाली कॉफी से भरा एक ड्रम भी रखा हुआ था। सौ मकानोंवाले उस गांव की प्रमुख गलियों में घूम-घूमकर अपने उम्मीदवार के समर्थन में नारे लगाने के कारण जिन लोगों के गले बंद हो गये थे, वे भर्राये स्वर में बातचीत कर रहे थे। अगले दिन प्रातःकाल की कॉफी और नाश्ते की तैयारियां हो रही थीं।

इडली बनाने के बड़े-बड़े बर्तनों को चूल्हों पर चढ़ा दिया गया था। उनमें से लगातार भाप निकलने के कारण 'कोर्र ऽ ऽ' की आवाज आ रही थी। इस पक्ष के उम्मीदवार का चुनाव चिह्न 'पेठा' था। अतः सांभर बनाने के लिए पेठों को काट-काटकर ताड़ के पत्तों से बनी चटाई पर उनके टुकड़ों का ढेर लगा दिया गया था। जगह-जगह केले के पत्तों के गट्ठर पड़े हुए थे। रह-रहकर बर्तनों के खनकने की आवाज भी सुनायी दे रही थी। चुनाव जीत जाने पर प्रति घर एक पेठा उपहार के रूप में देने के लिए पेठों से भरी पांच बोरियां लाकर दीवार के सहारे टिका दी गयी थीं।

ऐसा भी सुनने में आया कि रोलर चिह्नवालों ने पेठा चिह्नवाले की पराजय का अनुमान कर, उसकी पराजय की खबर मिलते ही गली में पटक-पटककर तोड़ने

के लिए पेठों से भरी दो बोरियां खरीदकर अपने यहां संभालकर रख ली हैं। कुल मिलाकर मंडी में पेठों की मांग बहुत बढ़ गयी थी। यह भी समाचार मिला कि आगामी पंचायत के चुनाव को ध्यान में रखते हुए, पेठों की भारी मांग को पूरा करने के विचार से किसी छोटे जमींदार ने अपने खेत के बहुत बड़े हिस्से में पेठे की बेलें बोने का निश्चय कर लिया है।

मतदाताओं को मतदान-केंद्र तक ले जाने के लिए सात-आठ बैलगाड़ियां और भाड़े की दो मोटरगाड़ियां तैयार थीं। यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'रोलर' वालों ने भी इसी तरह की तैयारियां कर ली होंगी। उनके सामने एक ही कठिनाई थी। 'पेठा' चिह्नवालों ने पेठे का सांभर बनाने का निश्चय किया था, किंतु ये लोग 'रोड रोलर' का सांभर कैसे बनाते ! 'रोलर' दल के एक बुद्धिमान व्यक्ति ने कहा कि तमिल 'उरूलै' शब्द 'रोलर' का ही वाचक नहीं वरन 'उरूलै किलंगु' (आलू) का भी वाचक है। अतः हम आलू डालकर सांभर तैयार कर सकते हैं। उसके सुझाव को उस दल के सभी लोगों ने मान लिया।

यहां अचंभे की बात यह है कि उस गांव में वोट डालनेवाले लोगों की संख्या कुल 270 थी। यदि शत-प्रतिशत लोग वोट डालने जायं तो भी 270 लोगों के लिए सोलह बैलगाड़ियां और चार टैक्सियां पर्याप्त थीं। इतना ही नहीं मतदान केंद्र, राजकीय प्राथमिक पाठशाला, गांव के किसी भी कोने से नापे जाने पर 100-125 गज की दूरी पर ही था। किंतु इन मुकुटरहित राजाओं को कौन पैदल चलाकर ले जायगा ?

अगले दिन सुबह होते ही सभी जगह शोरगुल होने लगा। जो फल अपने आप नहीं पकते, उन्हें जबरदस्ती, पीट-पीटकर पकाया जाता है। इसी प्रकार यदि उस दिन सूर्य पूर्व दिशा में कुछ देर से उदित होता है, तो ये लोग शायद रस्सी बांधकर उसे ऊपर खींच लाते। चुनाव के संबंध में ये लोग इतने उतावले हो रहे थे।

प्रातः छह बजे पेठा चिह्नवाले उम्मीदवार के बेटा और बहू गांववालों को निमंत्रित करने आये। इसके बाद 'रोलर' चिह्नवाले उम्मीदवार की बेटी और दामाद ने मिलकर गांववालों को निमंत्रित किया। दोनों कार्यालयों में कॉफी और नाश्ते की तैयारियां हो रही थीं। माणिक्कम् ने सुबह-सुबह ही 'वैत्तियन' को जाकर एक सुरक्षित स्थान पर बैठा दिया था। कुएं के पास ही उसके नहाने का प्रबंध किया गया था। नहाकर उसने नयी धोती पहनी, कंधे पर नया गमछा डाला, माथे पर विभूति का टीका लगाया और इस प्रकार सज-धजकर तैयार हो गया। अपने इस रूप को देख वह रोमांचित हो उठा। उसने सोचा कि महीने में एक बार पंचायत का चुनाव हो तो कितना अच्छा हो।

दस बजे के बाद मतदान का काम तेजी से चलने लगा। टैक्सियां ढेरों धूल उड़ाती दौड़ रही थीं। बैलगाड़ियों में जुते बैल ढेरों पेशाब कर मानों सभी गलियों

को धो रहे थे। गांव की जिन संकरी गलियों में साइकिल भी नहीं जा सकती थी, आज उन गलियों में टैक्सियां जाकर मतदाताओं को ढोकर ला रही थीं। मां-बाप वोट डालने जाते, तो घर के छोटे बच्चों को भी कॉफी-नाश्ता मिलता, टैक्सी की सवारी का मौका मिलता। कुछ बच्चों ने जिद की कि वे बैलगाड़ी से नहीं, टैक्सी से ही जायेंगे। चुनाव न होते तो ऐसी सुविधाएं किसे मिलतीं ?

मतदान-केंद्र में दोनों उम्मीदवार उपस्थित थे। उनके प्रतिनिधिगण दो अलग-अलग पंक्तियों में बैठे हुए थे। इसके अतिरिक्त सरकारी अफसर की हैसियत से उस पाठशाला के कुछ अध्यापक भी वहां उपस्थित थे। झगड़े के डर से जिन दो पुलिसवालों को वहां तैनात किया गया था, वे पूरी निष्ठा के साथ सभी कार्यों की निगरानी कर रहे थे।

वैत्तियन कहे जाने वाले 'अणंज पेरूमाल' को जब माणिक्कम् ने टैक्सी द्वारा मतदान-केंद्र पहुंचा दिया, तब सबकी आंखें मानो माथे पर चढ़ गयीं। श्वेत वस्त्रों में सजे, माथे पर विभूति का तिलक लगाये, शैव संत-से दीख पड़नेवाले उस व्यक्ति को सभी ने चकित दृष्टि से देखा।

उसे देख 'रोलर'वाले उम्मीदवार क्रोधित स्वर में बोले, "इस नालायक की इतनी हिम्मत कि ग्राम-पंचायत के चुनाव में जाली वोट डालने आ गया। मैं भी इसे देख लूंगा।"

साढ़े बारह बजे चुके थे। अतः वहां लोगों की भीड़ बहुत कम हो गयी थी। जब वैत्तियन लाइन में आकर खड़ा हुआ, तब उसके आगे कोई छह-सात लोग खड़े थे। उसके पीछे खड़े दो-तीन लोग मन ही मन यह सोच रहे थे कि लाइन में खड़े हों या खाना खाने के बाद आकर वोट दें।

दो मिनट बाद वैत्तियन लाइन से अलग होकर तेजी से बाहर की ओर चलने लगा। 'अचानक इसे क्या हो गया' यह सोचकर 'पेठा' चिह्नवाले ने अपनी भौंहें ऊंची कीं। 'मेरे सामने ही मेरे विरोधी को जाली वोट देने आया है' मन ही मन ऐसा सोचकर मूंछों पर हाथ फेरते हुए व्यंग्यभरी दृष्टि से 'रोलर' ने 'पेठे' की ओर देखा।

लाइन से निकलकर जाते हुए वैत्तियन के पीछे भागते माणिक्कम् ने दो ही कदमों में उसे पकड़ लिया।

"अरे बुड्ढे ! तुझे क्या हो गया ? क्या श्मशान की ओर भाग रहा है ?"

"बाबू, शोर मत करो। मैं अभी आया।" वैत्तियन के उत्तर से लगा कि वह जल्दी में है।

"मैं पूछता हूं, तू कहां जा रहा है ? क्या तेरे दिमाग का कोई पेंच ढीला हो गया है...?"

"तनिक ठहरो बाबू, मैं एक मिनट में आ जाऊंगा।"

"पहले वोट डाल। फिर चाहे जहां दफा हो जा।"

"अरे बाबू, तुमने मुझे किस झंझट में डाल दिया ? सुबह मुंह-हाथ धोने से पहले मुझे अपने साथ ले आये। यहां आकर मैंने सात-आठ इडलियां खा लीं। इस बुढ़ापे में इतनी जल्दी सब कुछ कैसे हजम हो सकता है। तनिक ठहरो। मैं नदी किनारे जाकर तुरंत लौट आऊंगा।"

शौचादि से निवृत्त होकर मुंह-हाथ धोकर वैत्तियन के लौटने तक भोजनावकाश के लिए मतदान का कार्य बंद कर दिया गया था। उसका वहां खड़े रखना खतरे से खाली नहीं है, यह सोचकर उसे कार में बैठाकर घर लाया गया। भोजन के उपरांत उसे फिर लाकर लाइन में खड़ा कर दिया गया। मुरूगन मंदिर में होनेवाले 'शूर संहार उत्सव' में भाग लेने के लिए सबसे आगे आनेवाले शूरवीर की तरह वैत्तियन ने जोश में भरकर सबकी ओर देखा।

भोजनावकाश के बाद मतदान का कार्य प्रारंभ होते ही वैत्तियन 'अणंज पेरूमाल' नाम की चिट लेकर मतदान-केंद्र के अंदर गया। 'रोलर'वाले उम्मीदवार उसे सबक सिखाने के लिए तैयार बैठे थे। वैत्तियन ने पहले पोलिंग ऑफिसर को अपनी चिट पकड़ायी।

रोलर चिह्नवाले जोर से गरजे, "अरे वैतिया ! क्या तेरा नाम मतदाताओं की सूची में है ?"

उसने तनिक संदेह भरी दृष्टि से उन्हें देखा। फिर बोला, "हां बाबूजी है ! आप ही देख लीजिए न।"

उसके द्वारा बढ़ायी गयी चिट को देखते ही रोलर चिह्नवाले दंग रह गये। उनको चकित होता देख पेठा चिह्नवाले मुस्कराने लगे।

"क्या तेरा नाम अणंज पेरूमाल है ?"

"हां बाबूजी। मैं जाली वोट डालने क्योंकर आऊंगा ?"

'रोलर' के मन का संदेह नहीं मिटा। उन्होंने मतदाताओं की सूची को ध्यान से देखा। उनके चेहरे पर विस्मय की भावना झलकने लगी। कुछ देर बाद व्यंग्य से मुस्कुराते हुए वे बोले, "अब तक तू उन्हीं लोगों के नाम से जाली वोट डालता रहा, जो इस गांव से चले गये हैं। आज तू एक मरे हुए व्यक्ति के नाम से वोट डालने चला आया है।"

"नहीं बाबूजी, मेरा नाम अणंज पेरूमाल ही है। मैं आपसे झूठ क्यों बोलूंगा ?"

"अरे भाई, तेरा नाम अणंज पेरूमाल है या एरिंज पेरूमाल* इससे मुझे कोई मतलब नहीं। मतदाताओं की सूची के अनुसार अणंज पेरूमाल एक महिला है।"

""क्या ? क्या वह एक महिला है ?"

---

* तमिल शब्द अणंज और एरिंज का शाब्दिक अर्थ क्रमशः 'बुझा हुआ'-और 'जलता हुआ' है।

"और क्या ? तू खूद अपनी आंखें फाड़कर देख ले। वह हमारे गांव के 'कोयुंबु पिल्लै' नाम के बाबा जी की मां थीं...उन्हें मरे तो दस साल हो चुके हैं। तू उनकी जगह वोट डालने आया है ? कपटी, दगाबाज....दफा हो यहां से।"

वैत्तियन किंकर्तव्यमूढ़ हो 'पेठा' चिह्नवाले की ओर देखने लगा। वे उसे ऐसे घूर रहे थे मानो कच्चा चबा जायेंगे।

धनु ही धनु

वण्णदासन

इसी बस से धनु जा रही है।

बस पुरानी ही है, किंतु उसे कॉलोनी के अंदर तक जाते हुए तीन दिन हो गये हैं। रविवार की सुबह खड़-खड़ करती हुई वह बस प्रारंभिक परीक्षण यात्रा पर निकल पड़ी। बस के अंदर बैठे मिलवालों की इस नयी बस्ती में रहनेवाले अधिकारीगण हंस रहे थे। ज्ञानप्पन कुछ उदास हो गया। जब बस द्वारा छोड़े गये धुएं ने बिखरकर सारे रास्ते को निगल लिया, तब उसे लगा कि बबूल के पेड़ों और रेत की ढेरियों के बीच बड़ी तेजी से बनी इस बस्ती से उसका नाता टूट गया है। अब धनु अपने घर के पास से ही बस ले लेगी और वहीं उतर जायगी।

एक तरह से वह प्रसन्न भी था। अब उस सौंदर्य एवं शोक की साक्षात् प्रतिमा-सी धनु को कॉलेज के प्रवेशद्वार तक जानेवाली सरकारी बस पकड़ने के लिए अपने दुर्बल पैरों को घसीटते हुए इतनी दूर तक नहीं आना पड़ेगा। मन में हीन भावना लिये दूसरों के साथ खड़े होकर बस की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। अब उसके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सकेंगे।

अब ज्ञानप्पन को हाथ में किताब लिये हुए इस अनाथालय के अहाते में खड़े पेड़ों की छाया में आने की कोई आवश्यकता नहीं। वह पहले की तरह दक्षिण दिशा में स्थित बबूल के जंगल के अंदर जा सकता है। वहां गिरगिट के बच्चे आवाज करते हुए दौड़ते होंगे अथवा कोई मोटा-ताजा गिरगिट अपना सिर हिला रहा होगा। उस सुनसान वातावरण में डूबते हुए सूर्य की लालिमा से पश्चिमी आकाश लाल हो उठेगा। उस समय धरती पर जहां भी हाथ पड़ेंगे वहां हड्डियां और कांटे ही मिलेंगे। मानो उस स्थान पर लाखों लोगों को दफनाया गया हो। ताड़ के पत्तों से बनायी गयी मेड़ से घिरी झोंपड़ियों से ताड़-गुड़ के उबलने की सुगंध आयगी। मुर्गियां दाना चुगती दिखायी देंगी। उन कंटीली झाड़ियों को, जिन पर चिपके हुए घोंघों के घर आंवलों के समान दिखायी दे रहे हैं, खींचकर ले जाती हुई युवती का शरीर भी उसे पुस्तक से अपनी आंखें हटाने के लिए बाध्य करेगा। बहुत बार बातें करने की कोशिश के बाद भी केवल मुस्कुराकर रह जानेवाली किसी कन्या के पाजेब से सजे सांवले

पैर मिट्टी में घिसटते दिखायी देंगे।

अपने दुर्बल पैरों के सहारे जैसे-तैसे चलती हुई धनु को शायद बहुत दिनों बाद ही यह बात मालूम हुई होगी कि अनाथालय के बीच से निकलने पर कॉलेज के सामनेवाले बस स्टैंड पर पहुंचा जा सकता है। उस दिन ही ज्ञानप्पन को उसका नाम मालूम हुआ था। कारण, उसके साथ हमेशा इधर-उधर जानेवाले लड़के ने तनिक ऊंचे स्वर में उससे पूछा था, "धनु ! क्या हम इस रास्ते से चलें ?" स्कूल की ड्रेस पहने उसका वह छोटा भाई उसका मार्गदर्शक भी था और अंगरक्षक भी।

ज्ञानप्पन संयोगवश उस दिन पढ़ने के लिए अनाथालय आया था। पढ़ाई समाप्त कर हॉस्टल वापस जाते समय उसे बीड़ी पीने की इच्छा हुई। वह थोड़ी देर तक वहीं खड़ा रहा। ऐसा लगा मानो वह छोटे से नीम के पेड़ के नीचे टायर लगी छकड़ागाड़ी के जुए पर बैठा स्कूल की बिल्डिंग के सामने खड़े ध्वजदंड को देख रहा हो।

ईंटों को तिरछा करके उन्हें गोलाकार गाड़कर बनायी गयी क्यारियों में बेहया के पौधे लगाये गये थे। अपने गांव जाने के लिए वह जिस स्टेशन पर उतरता था वहां उसने इन पौधों को और उनके फूलों को बचपन से ही देखा था। हाथ से झलने वाले पंखों के आकार में फैले पत्तोंवाले केले के पेड़ उन दिनों नहीं दिखायी देते थे। अचानक ज्ञानप्पन को अपने गांव की याद आ गयी। रात को स्टेशन पर उतरते समय चंद्रमा के प्रकाश में एक रेखा-सी चमकती ठंडी रेल की पटरी, लालटेनवाली धर्मशाला, हर फूल पर मंडराते जुगनुओं का झुंड। अचानक किसी के ये शब्द सुनायी दिये, "धनु ! इस रास्ते से चलें ?"

ज्ञानप्पन घुटनों तक दोहरी करके बांधी गयी लुंगी नीची करते हुए जुए पर से उतर गया। कसकर बांधी गयी रस्सी के ढीले होने पर 'किक्-किक्' की आवाज आयी। गोशालाओं में गायों को बाहर निकलने से रोकने के लिए जैसे बांस की रोक लगायी जाती है, उसी तरह/केवल बैलगाड़ी आदि के प्रयोग में आने वाली बांस की उस रोक के दूसरी तरफ धनु और उसका छोटा भाई खड़े थे। छोटे भाई ने झट से अपने पैर मोड़े और झुककर अंदर आ गया। क्षणभर के लिए वह वहां अकेली खड़ी रह गयी। उसकी पीठ पीछे बिछी रेत, जो रेगिस्तान का आभास दे रही थी, और वहां खड़े बबूल के पेड़ों का, उसके व्यक्तित्व से कोई तालमेल नहीं बैठ रहा था। उस वातावरण में धनु को देखकर ऐसा लगा मानो बबूल के पेड़ों में फूल खिल गये और उनकी कोमल गंध सर्वत्र व्याप्त हो गयी।

किसी राजद्वार को खोलने का उपक्रम करते हुए ज्ञानप्पन ने धीरे से बांस खींचकर उसके अंदर आने का रास्ता बनाया और स्वयं एक तरफ हटकर खड़ा हो गया। हड़बड़ाकर पीछे हटते समय हाथ में पकड़ा बांस जमीन में धंस गया और बहुत सारे

दीमक बाहर निकल आये। धनु के भाई ने ज्ञानप्पन को धन्यवाद दिया। धनु 'चुप' कहकर उसे अपने साथ खींचकर ले गयी। एक नन्हीं बालिका-सी दिखायी देनेवाली धनु जैसे-जैसे ज्ञानप्पन की आंखों से दूर होती चली गयी, उसे लगा कि उसके सामने स्थित अनाथालय के सामने की ओर दोनों किनारों पर उगे पेड़ों में जैसे प्राणों का संचार हो गया है। उसे अब वे अधिक सुंदर दिखायी देने लगे।

सामने से डेजी टीचर आ रही थीं। उनके चेहरे पर यदि मुंहासे न होते तो उनकी चाल में शायद यह मस्ती न होती। वे अविवाहित थीं। अतः शरीर की सुडौलता यथावत् बनी हुई थी। एक काले घोड़े की तरह उछलती हुई जब वे तीखी नजर से ज्ञानप्पन को देखकर आगे बढ़ जातीं, तो उसका शरीर कांपने लगता। उसकी तरह यहां पढ़ने के लिए आनेवाले कई छात्र उनके शरीर की गठन को देख उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। आज वह उनकी ओर अधिक आकृष्ट नहीं हुआ।

ज्ञानप्पन की स्मृति में धनु का चेहरा बारंबार जल में डुबकी लगाकर ऊपर उठती हुई कमलिनी की तरह उभरता रहा। बाकी सब कुछ जैसे जलधारा के साथ बह गया। डेजी टीचर नदी की धारा में बहते उस जवाकुसुम के समान दिखायी दीं, जो घड़े में पानी भरते समय पानी के साथ घड़े के भीतर प्रवेश करने का यत्न तो करता है, किंतु बाद में उसके किनारों से टकराकर दूर चला जाता है। वह उन्हें पिछले साल से ही जानता है।

एक बार दिसंबर का महीना था। कहीं से हारमोनियम के बजने की आवाज आयी। ऐसा लगा मानो कोई बच्चा गड़लने के सहारे चल रहा हो। दस-पंद्रह लड़के मिलकर शोर कर रहे थे। उनके बीच बैठा एक लड़का बड़ी हिम्मत के साथ हारमोनियम के एक-एक परदे को दबाता जा रहा था। कभी वह बायीं ओर से आरंभ कर दायीं ओर तक जाता, तो कभी मध्य से आरंभ कर बायीं ओर तक। इतने में धौंकनी को दबानेवाली उसकी उंगली छिप जाती। हारमोनियम की आवाज के कम होने पर वह हंसने लगा। तभी ज्ञानप्पन वहां पहुंचा। सभी लड़के वहां से खिसक गये।

ज्ञानप्पन हंसने लगा। उसे हारमोनियम बजाने का अच्छा अभ्यास था। वह सिनेमा के गाने भी बजा लेता था। चारों ओर से आवाज आयी, "भाई साहब, आप बजाइए, आप बजाइए।" "कौन-सा गाना बजाऊं?" यह प्रश्न करते हुए उसने धीमे स्वर में किसी भजन की यह पंक्ति बजायी—"खटखटाइए द्वार खुल जायगा," और हाथ रोककर पूछा, "जरा बताओ तो मैंने कौन-सा गीत बजाया था?"

"मैं जानता हूं।"

"भाई साहब, मैं बताऊंगा।"

"भाई साहब, आपने यह गीत बजाया था—यह अच्छा भोजन जिसने दिया है...।"

आखिरी लड़के की बात सुनते ही ज्ञानप्पन का दिल कांप उठा। प्रतिदिन

प्रातःकाल दलिये का बना उपमा* और मक्की के आटे की लपसी पाने के लिए हाथ में अल्मूनियम की थाली और गिलास लिये लाइन बनाकर बैठे, यह अच्छा भोजन जिसने दिया है, आओ अपने इस ईश्वर की वंदना करें—इस गीत को गाते लड़कों का कारूणिक दृश्य उसकी आंखों के सामने घूम गया। उसके द्वारा हारमोनियम पर बजाये गये गीत के स्वर में अनाथ बालकों को और अधिक दीन बनानेवाले उस गीत-विशेष की ध्वनि सुननेवाले उस लड़के के दुर्बल शरीर और निष्प्राण चेहरे को वह देखता रह गया।

ज्ञानप्पन को ईसा मसीह-संबंधी और कोई भजन याद नहीं आया। उसे लगा कि ईसा से संबंधित सभी भजनों की लय एक-सी ही है। 'येशु ही सब कुछ है। मेरे लिए येशु ही सब कुछ है !' इस गीत की पहली दो पंक्तियों—स्थायी को ही वह बार-बार बजाता रहा। लड़कों के मुख से गीत की आगे की पंक्तियां सुनकर वह रोमांचित हो उठा।

ऐसा लगा मानो अनाथालय के नीम के पेड़ों पर लगे सभी फूल गा रहे हों। क्रम से शहर के गिरजाघर तक जाकर लौटते हुए लोगों के धूल से सने पैरों की आहट सुनायी दे रही हो।

—दूध के खाली डिब्बों की सहायता से पौधों को सींचते हुए माली और मालिनें मिलकर गा रहे हों।

—सप्ताह में एक बार घर आनेवाले बूढ़े नाई के सामने सिर झुकाये बैठा कोई बालक अपनी अनदेखी मां को याद कर रोता हुआ, अपने मन की व्यथा को व्यक्त कर रहा हो।

—शरीर में किसी तत्व की कमी से संक्रामक रोग की तरह सभी बालकों के हाथों में हो जानेवाली खुजली से बचने के लिए कई बालक मिलकर प्रार्थना कर रहे हों।

—अपने कपड़े उतारकर कुएं के पास नंगे बैठे, खारे पानी को बराबर अपने शरीर पर उंड़लते हुए, स्नान करनेवाले लोगों के चेहरों पर अंकित उनकी असहायता की भावना, जैसे करुण चीत्कार के रूप में व्यक्त हो रही हो।

—स्कूल के कुएं में दो पैसे के एक सिक्के के गिर जाने पर आसुरी वेग से बहुत सारा पानी बिखरने के बाद निराश हो जानेवाले बच्चों के स्वप्न जैसे लट्टू की तरह घूम रहे हों।

ज्ञानप्पन आगे कुछ न बजा सका। जब उसने सिर उठाकर देखा डेजी टीचर दरवाजे पर खड़ी दिखायी दीं। सभी लड़के वहां से खिसक गये। डेजी टीचर ने हारमोनियम बजाने में उसकी दक्षता की प्रशंसा की। वे दरवाजे पर हाथ रखे खड़ी-खड़ी

---

* सूजी, दलिया आदि से बनाया जानेवाला एक तरह का नमकीन हलवा।

हंस रही थीं।

ज्ञानप्पन को बड़ा गुस्सा आया। उन्हें वहीं मारकर गिरा देने की इच्छा हुई।

डेजी टीचर की तरह साइकिल पर जाती एक अंग्रेज लड़की की नजरों को भी ज्ञानप्पन को झेलना पड़ता था। प्रायः छुट्टियों के दिन सुबह-सुबह ही उसके दो बार दर्शन हो जाया करते थे।

पहली शिफ्ट में काम करने के लिए हाथ में टिफिन कैरियर लिये दौड़ते चलते लोगों की भीड़। आराम से बैठे ताड़ का रस पीनेवाले लोग। पहली शिफ्ट के आरंभ होने की सूचना देनेवाले भोंपू की आवाज सुनते ही झटपट बड़ा या अचार का पैकेट लेकर भागनेवाले लोग। कपास से सने बालोंवाले, रात की शिफ्ट पूरी कर चाय की दुकान पर बैठे अखबार पढ़नेवाले लोग। उनकी साइकिलों पर लटकते टिफिन-कैरियर। इन्हीं लोगों के बीच से होते हुए उस अंग्रेज लड़की के परिवार के लोग साइकिलों पर सवार होकर चर्च जाते थे। माता-पिता, भाई-बहिन सभी की अपनी-अपनी साइकिलें थीं। देखने में स्कूल की छात्रा न लगनेवाली वह अंग्रेज लड़की साइकिल पर सवार होकर जब कभी ज्ञानप्पन के सामने से निकलती थी, तब उसके भारी-भरकम शरीर और मांसल जंघाओं को देखकर जाने क्यों, उसका मन वितृष्णा से भर उठता था।

थोड़ी देर बाद धनु आकर जैसे इस सारे दृश्य को धो देती थी। अब धनु के दर्शन बार-बार नहीं हो सकते। उसे फिर से सिगरेट के स्थान पर बीड़ी पीनी पड़ेगी, लुंगी को दोहरा करके बांधे हुए इधर-उधर भटकना होगा। किसी समय धनु इस अनाथालय के बीच से होकर निकलती थी। अतः वह यहां आये बिना नहीं रह सकता। ऐसी स्थिति में पढ़ाई करना भला कहां संभव है ?

लाइन से खड़े नीम के पेड़ों से झड़ते बीजों को किसी रांगे के कनस्तर में जमा करते लड़कों को यदि आवाज भी दी जाय, तो वे जवाब नहीं देंगे। फुटबॉल खेलने के लिए गोलपोस्ट के रूप में खड़े किये गये ताड़ के पेड़ों पर बैठे कौवों की बीट में से दो-दो, तीन-तीन नीम के बीज एकत्रित करने में उन्हें जितना आनंद आयेगा उतना उससे बातचीत करने में कहां आयगा ?

पास ही, उस छोटी दीवार के उस पार पंडालों के नीचे जलते शवों को देखकर अथवा वहां फैले धुंए के कारण विचलित हुए बिना, उस नमकीन सूखी जमीन पर सघन रूप से फैले मंदार के पौधों पर से तितलियों के अंडे और कीड़ों को एकत्रित करते हुए उन लड़कों के बीच बैठकर, वह भी धनु के यहां से चले जाने के बाद, शांत मन से पढ़ाई करना कहां संभव होगा ?

दूसरे लड़कों के साथ मिलकर बैठना भी उसके लिए दूभर हो गया। पहले की तरह कूड़ा डालने के लिए बनाये गये गड्ढों और पादरियों के संडास के आसपास भारी आवाज में कूकते हुए एक प्रकार के मुर्गों को 'आव-आव' कहकर अपने पास

बुलाने की उसकी इच्छा नहीं हुई। ज्ञानप्पन को लगा कि वह भी पादरियों की तरह इन सब बातों से ऊपर उठ जाय तो अच्छा है। उसकी कक्षा में, कॉलेज में उसकी तरह सफेद रंग की पूरी आस्तीन की कमीज और धोती पहननेवाले कई लड़के थे, जो यहां अनाथालय में रहते हुए पढ़ाई कर रहे थे। क्या वे लोग भी अनाथ हैं ? 'धनुओं' के दर्शन से पहले जितने अनाथ थे, क्या इस समय उससे अधिक अनाथ हो गये हैं ? यह सब सोचकर ज्ञानप्पन का दिल भर आया।

उसके मन में गांव जाने की इच्छा जागी। हमेशा खेतों में ही पड़े रहनेवाले पिता की वंश-परंपरा का भार ढोने वाले स्वयं से उनका कभी प्रसन्नता से सिर हिलाते हुए पढ़ाई के बारे में पूछना और ऐसा करते हुए उनके माथे पर लटकते नींबू के आकार के मांसपिंड का हिलना, कभी उनका खीझते हुए यह कहना कि 'तू पढ़ लिखकर कौन-सा तीर मार लेगा ?'–उसे रह-रहकर इन बातों की याद आती रही। धीरे-धीरे सारे चेहरे लुप्त हो गये और केवल धनु का चेहरा शेष रह गया।

अचानक एक गेंद लुढ़कती हुई उसके पैरों के पास आ गिरी। गेंद लेने के लिए आया हुआ लड़का जैसे ही उसे उठाने के लिए झुका, ज्ञानप्पन ने उसे रोक दिया। वह गेंद लेकर मैदान के एक किनारे आया और उसे जोर से ठोकर मारी। गेंद ज्यादा दूर नहीं गयी, वरन् इस तरह उछलकर नीचे आ गिरी कि उसे बरबस सिर उठाकर नीले आकाश को ताकना पड़ा। आंखें नीची कर लेने के बाद भी बहुत देर तक ज्ञानप्पन को सर्वत्र नीलिमा ही नीलिमा दिखायी देती रही।

एक नीला फूल। ऐसा नीला फूल जिसे उसने किताबों के बीच दबाकर सुखा लिया था। शायद वह फूल लाल रंग का था और अब सूखकर नीला-सा हो गया था। अथवा वह एक ऐसा फूल था, जिसकी कांति मलिन पड़ गयी थी, जो नीले से काले रंग का हो गया था। उसे रास्ते में पड़ा देखकर ज्ञानप्पन ने बिना किसी संकोच के उठा लिया था, क्योंकि उसका विश्वास थां कि उसे धनु ने ही गिराया होगा। वैसे वह जानता था कि वह नीला फूल किसी समय अनाथालय की चहारदीवारी के भीतर एक कोने में खिलता था और आज टूटे-फूटे गिरजाघर के पिछवाड़े फैली लताओं में खिलता है। किंतु उसका मन कहता था कि यह फूल धनु का ही है।

अचानक ज्ञानप्प्न को उस टूटे हुए चर्च की दीवारों की याद आयी। यह अनाथालय केवल लड़कों के लिए था। अतः उन दीवारों पर कोयले से अश्लील शब्द, तरह-तरह के नाम, गाली-गलौज के शब्द आदि लिखे हुए दिखायी देते थे। स्वयं उसके सामने उसके सहपाठियों ने वहां अनेक चित्र बनाये थे, कई पंक्तियां लिखी थीं। ऐसी ही एक पंक्ति में जानबूझकर अशुद्ध लिखी गयी एक पंक्ति में लड़कों ने जैसे डेजी टीचर को भी लटका दिया था।

उसने किताब के अंदर दबाकर रखे गये नीले फूल को देखकर किताब बंद कर दी। उसे पढ़ना भी तो है। अंधेरा जल्दी-जल्दी फैलता जा रहा है। कुएं के पास

जाकर मुंह-हाथ धोकर, वह स्कूल के पिछले बरामदे की दीवार से पीठ टिकाकर बैठ गया और जोर-जोर से पढ़ने लगा। सूनेपन से बचने के लिए उसे शोर की आवश्यकता महसूस हुई।

प्रधान पादरी के खास किस्म के मुर्गों के बांग देने की आवाज रह-रहकर धीमी होने लगी। मैदान में खेलते लड़कों का शोर भी लगभग समाप्त हो गया। छत के किसी कोने में बैठा एक कबूतर 'गुटर गूं', 'गुटर गूं' कर रहा था। मिलवालों की बस्ती में हाल ही में बनाये गये गणेश मंदिर की घंटी की आवाज धीमे स्वर में सुनायी दी। कहीं दूर से कपड़े की मिल के चलने की आवाज आ रही थी।

क्या बारिश होगी ?

पिछले साल बारिश के मौसम में खूब जमकर बारिश हुई थी। चाहे जब बारिश हो जाती थी। प्रायः हर शाम अंधेरा होने से पहले ही हॉस्टल की बत्तियां जलने लगती थीं। जब-जब ज्ञानप्पन को कमरे के अंदर बंद होकर बैठना असहनीय लगता, वह बाहर निकल आता। तभी बारिश होने लगती। कभी-कभी इतनी जोर की बारिश होती कि उसका वापस लौटना मुश्किल हो जाता। उमस और मिट्टी की गंध के कारण सांस घुटने लगती। ताड़ के पेड़ पानी में भीगने के कारण गहरे हरे रंग के हो जाते। सूअर इधर-उधर घूमने लगते। सेम की लताओं पर अनगिनत फूल खिले हुए दिखायी देते। ऐसा लगता, मानो किसी ने उन पर चंदन छिड़क दिया हो।

ज्ञानप्पन अनाथालय के आगे की ओर दौड़ा और वहीं एक पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। वह फिर भीगने लगा। भागकर अनाथालय के अंदर चला गया। पिछले हिस्से की तरह यहां भी कक्षाएं चल रही थीं। छठी से लेकर आठवीं तक। अंदर जाने के बाद ही उसे मालूम हुआ कि वहां डेजी टीचर खड़ी हैं। वे साड़ी के पल्ले से सिर ढके, आंचल के एक कोने को दांतों में दबाये खड़ी थीं। वे शायद भीगने से पहले ही वहां आ गयी थीं।

एक मेमना दीवार से सटकर, सड़क की ओर मुंह किये खड़ा था। नीचे मींगें पड़ी थीं। बूढ़ा चौकीदार सिमटा-सिकुड़ा बैठा बीड़ी पी रहा था। डेजी टीचर बिना हिले-डुले चुपचाप खड़ी थीं। बाहर की तेज बारिश ने उन्हें अपने स्वभाव के विपरीत चुपचाप खड़े होने के लिए विवश कर दिया था। किसी झीने परदे के भीतर से दिखायी देनेवाले रूप के समान डेजी टीचर का एक नया और पवित्र रूप दिखायी दिया।

सड़क पर, नाव की तरह पानी की धारा को काटती हुई एक बस आकर खड़ी हो गयी। बस के मुड़कर रुकते ही डेजी टीचर झटपट उसकी ओर दौड़ीं। ज्ञानप्पन ने सोचा–'धनु की तरह जवान न होकर भी काफी वयोवृद्ध इस डेजी टीचर को क्या इतनी उदासीनता के साथ यहां कुछ देर खड़े होकर लौटना आता है ?' मेमना धीरे से मिमियाता हुआ दीवार पर चढ़कर खड़ा हो गया।

धनु के महाविद्यालय से चलने वाली 'कॉलेज टु कॉलेज' बस के आने में अभी देर है। बारिश के कारण शायद देर से आये। पास की बस्ती से आयी दो-तीन माताएं अल्मूनियम के छोटे-छोटे बक्से लिये, बस में स्कूल में लौटते अपने बच्चों को ले जाने के लिए छाता लिये खड़ी थीं। कॉलेज के बाहर ताड़ के पत्तों से बने दोनों का ढेर पड़ा था, जिनमें सुबह ताड़ का ताजा रस बेचा गया था। बारिश में भीग जाने के कारण वे दोने एकदम हरे-हरे लग रहे थे।

पीले रंग के स्कूटर गीली सड़क को कंपाते हुए बस्ती की ओर तेजी से दौड़ने लगे थे। उनमें बैठे बच्चों के हाथ हिलाने पर ज्ञानप्प्न ने भी हंसते हुए अपना हाथ हिलाया और फिर कॉलेज के दूसरे दरवाजे के पासवाली पगडंडी पर तेजी से चलने लगा। हॉस्टल के दरवाजे पर उसने दर्जी को सिलाई मशीन लिये खड़े देखा।

मिल के चलने की आवाज बराबर सुनायी दे रही थी।

किताबों में डूबे, चुपचाप पढ़ते हुए ज्ञानप्पन को लगा कि उसके आसपास का मौन ही पिघलकर लहरों में बदल गया है। उन लहरों में बार-बार एक चेहरा–धनु का चेहरा उभरने लगा।

ज्ञानप्पन पढ़ क्या रहा था, मानो तेल से सने किसी खंभे पर चढ़ने का प्रयास कर रहा था। वह एक पंक्ति पढ़ता और फिर विचारों में कहीं खो जाता। जब उसने दोबारा पढ़ना शुरू किया, तभी डेजी टीचर बरामदा पारकर भीतर आयीं। उन्होंने मुस्कुराते हुए मानो उससे पूछा, "क्या पढ़ाई चल रही है ?" चप्पल उतारते हुए बोलीं, "मैं अपना छाता यहीं भूल गयी थी।" उनकी चप्पल पर उनके पैरों के गहरे निशान थे। उन्होंने ताला खोला, दरवाजे के बायीं ओरवाली खिड़की पर अपना रूमाल रखा और कहीं वह उड़ न जाय इस विचार से उस पर ताला-चाभी रखकर अंदर गयीं। हाथ में छाता लिये वे बाहर आयीं और उन्होंने ज्ञानप्पन से पूछा, "क्या तुम्हें कुर्सी नहीं चाहिए ?"

"जी नहीं ! देर हो गयी है। मैं भी अब चलूंगा।"

उन्होंने ताला बंदकर उसे एक बार खींचकर देखा। उनका रूमाल नीचे गिर गया था।

झुककर रूमाल उठाते हुए वे बोलीं, "देर हो गयी है, तो बत्ती जला लो।" और अपनी नाक सिकोड़ते हुए स्विच की ओर इशारा किया। उस समय उनके पैर चप्पल की ओर बढ़ रहे थे।

"नहीं, इसकी कोई जरूरत नहीं।" कहकर किताब पर हाथ फेरते हुए ज्ञानप्पन ने उनकी ओर देखा।

"तुझे तो सिर्फ धनलक्ष्मी चाहिए !" ऐसा कहकर वे एक कदम आगे आयीं और क्षण भर के लिए ज्ञानप्पन को अपनी भुजाओं में बांधकर सीढ़ियां उतर कर सड़क की ओर चल दीं।

उस अनाथालय के भवन से झांकने पर, जिसमें कहीं अंधकार था, तो कहीं प्रकाश, ज्ञानप्पन को वह बस धड़-धड़ आवाज करती जाती दिखायी दी।

वह जानता था कि स्टॉप हो या न हो डेजी टीचर रास्ते में ही हाथ टेकर उसे रोक लेंगी और उस पर सवार हो जायेंगी।

कुर्सी

कि. राजनारायण

अचानक हमारे घर के सभी सदस्यों के मन में यह विचार आया कि 'बिना कुर्सी के भी क्या कोई घर होता है ?' बस फिर क्या था; परिवार के विचारणीय विषयों की सूची में उसे भी सम्मिलित कर लिया गया और उस पर विवाद शुरू हो गया।

पहले दिन हमारे यहां एक पारिवारिक मित्र पधारे। वे पेशे से 'सब-जज' थे। वे भी हमारी तरह धोती-कुर्ता पहनकर आ जाते, तो उनका क्या बिगड़ जाता ? जनाब सूट-बूट पहनकर आये थे। हमारे यहां केवल एक तिपाई है। उसकी ऊंचाई कुल-मिलाकर पौन फीट है। हमारी दादी दही बिलोते समय उसी पर बैठती हैं। उनका शरीर भारी है। हमारे दादा ने बढ़ई से खास तौर पर वह चौड़ी तिपाई बनवायी थी।

'सब-जज' भारी भरकम शरीरवाले थे। उन्हें बैठाने लायक कोई आसन हमारे यहां नहीं था। अतः हमने तिपाई उनके सामने लाकर रख दी। तिपाई के एक किनारे पर हाथ टेकते हुए वे उस पर बैठने के लिए आगे बढ़े। इस तिपाई में एक दोष यह था यदि कोई उसके पैरों के सामने की जगह छोड़कर किसी और जगह से उसे पकड़कर दबा देता तो वह तुरंत उलट जाती थी ! छींके पर रखे मक्खन को चुराकर खाने की इच्छा से हम लोग कई बार उस तिपाई पर चढ़े हैं और अपनी असावधानी के कारण गिरे भी हैं। बेचारे 'सब-जज' महोदय कहीं गिर न जायें, यह सोच हमने उन्हें सावधान करना चाहा, किंतु हमारे मुंह खोलने से पहले ही वे धड़ाम से नीचे गिरे और लुढ़कने लगे। मैं, मेरा छोटा भाई और मेरी सबसे छोटी बहिन–तीनों बहुत कोशिश करने पर भी अपनी हंसी रोक न पाये। अतः घर के पिछवाड़े की ओर दौड़े। जब-जब हमारी हंसी रुकती, मेरी छोटी बहिन उस 'सब-जज' की तरह तिपाई पर हाथ टेकते हुए उस पर बैठने का फिर धड़ाम से जमीन पर गिरने का अभिनय करती और हमारी हंसी का दौर फिर शुरू हो जाता।

'सब-जज' को जमीन पर लुढ़कते देखकर भी हमारे माता-पिता यह सोचकर अपनी हंसी रोके रहे कि मेहमान के सामने हंसना उचित नहीं। हमें 'सब-जज' के गिरने से इतनी हंसी नहीं आयी थी, जितना यह सोचकर कि हमारे माता-पिता ने

इस अवसर पर अपनी हंसी कैसे रोकी होगी !

इस प्रकार सबके बदले काफी देर तक हंसते रहने के बाद, जब हम बिल्ली की तरह चुपचाप घर के भीतर घुसे, तो हमें न तो भारी-भरकम शरीरवाले वह मेहमान दिखायी दिये और न ही वह तिपाई वहां दिखायी दी। मेरी बहिन ने धीरे से मुझसे पूछा, "क्या वे तिपाई को अपने साथ ले गये होंगे ?"

इस घटना के बाद ही हम लोगों ने यह निर्णय किया कि किसी भी तरह हमें अपने घर के लिए एक कुर्सी बनवा लेनी चाहिए। इस निर्णय को व्यावहारिक रूप देने के लिए एक कठिनाई यह थी कि हमारे गांव में किसी भी व्यक्ति के पास नमूने के लिए भी कोई कुर्सी नहीं थी और दूसरी यह कि हमारे यहां के बढ़ई कुर्सी बनाना नहीं जानते थे।

हमारे बड़े भाई ने एक सुझाव दिया, "क्यों न हम शहर जाकर वहां से एक कुर्सी खरीद लायें ?" शहर की कुर्सियां मजबूत नहीं होतीं, यह कहकर पिताजी ने उनके सुझाव को टाल दिया।

हमारी बुआ ने बताया कि पास ही के गांव में एक चतुर बढ़ई रहता है। उसने कई तरह की कुर्सियां बनायी हैं और स्वयं गवर्नर साहब ने उसकी बनायी कुर्सियों की तारीफ की है।

बुआ का दूसरा वाक्य सुनते ही हमारी मां ने उन्हें ऐसे घूरा, मानो कह रही हों, 'हां, इसे तो जैसे सब कुछ मालूम है' और फिर मुंह फेरकर बैठ गयीं।

पिताजी ने एक नौकर को बुलाकर उसे पासवाले गांव के बढ़ई के पास जाने को कहा और फिर हमारे बीच आकर बैठ गये। अब इस बात पर बहस हो रही थी कि कुर्सी कौन-सी लकड़ी से बनवायी जाय।

पैर फैलाये बैठी दादी मां अपने पैरों को सहलाती हुई बोलीं, "कुर्सी तो सागवान की लकड़ी से ही बनवानी चाहिए। ऐसी कुर्सी को उठाने-रखने में भी आसानी होगी और साथ ही वह मजबूत भी होगी।" (दादी मां को अपने पैरों से विशेष लगाव है। वे सदा उन्हें सहलाती रहती हैं।)

उसी समय हमारे मामाजी वहां आ पहुंचे। उन्हें बैठाने के लिए हमारे बड़े भाई दौड़कर वही तिपाई उठा लाये। थोड़ी देर तक हम सब जोर-जोर से हंसते रहे।

मामाजी जब भी हमारे यहां आते, सदा उसी जगह बैठते, जो उन्होंने अपने लिए चुन रखी थी। चाहे उनकी जान पर बन आये, फिर भी उस जगह को छोड़ने को तैयार न होते। वे सदा भंडारगृह के दक्षिणी छोर की दीवार से लगे एक खंभे के सहारे बैठा करते थे। बैठते ही सबसे पहले अपनी चोटी खोलकर, उसे अच्छी तरह झाडकर, सिर खुजलाकर पुनः चोटी को कसकर बांध लेते। इस काम को वे बिना नागा किया करते थे। इसके बाद वे झुक-झुककर चारों ओर देखा करते थे। इस पर हमारे बड़े भाई साहब, "आपके सिर में से शायद कोई सिक्का नीचे गिरा

है।" यह कहकर अट्टहास करते थे।

वे जब भी हमारे घर आते, उन्हें हमारे वाक्बाणों का शिकार बनना पड़ता था। वे चुपचाप पत्थर की मूर्ति बने बैठे मुस्कुराते रहते थे, मानो कह रहे हों, "हां भांजो, तुम लोग मेरे साथ मजाक नहीं करोगे तो और कौन करेगा। जब हमारा हास-परिहास सीमा को पार करने लगता, तो हमारी मां झूठ-मूठ हमें एक डांट लगाती थीं। डांटते समय हमेशा उनका वाक्य, 'गधे कहीं के' इन शब्दों से ही पूरा होता था।

जैसे ही मामाजी अंदर आकर बैठे, मां जल्दी-जल्दी रसोई घर की ओर चल दीं। उनके पीछे-पीछे मेमने की तरह पिताजी भी उसी ओर चल दिये।

थोड़ी देर बाद गलियारे से मां चांदी के गिलास में हींग-डली लस्सी लेकर लौटीं। मां के पीछे-पीछे पिताजी भी उन्हीं की नकल करते हुए खाली हाथ ऊपर उठाये हुए, मानो उसमें गिलास पकड़े हों, चुपचाप चले आ रहे थे। मां ने उन्हें नहीं देखा, किंतु हम सब लोगों ने देख लिया था। अपनी हरकतों से मानो पिताजी कह रहे थे, 'इसके भाई साहब आये हैं, देखो उन्हें कितने प्रेम से लस्सी पिलाने जा रही है।'

लस्सी और हींग की सुगंध ने हमारे अंदर भी तुरंत लस्सी पीने की इच्छा जगा दी।

हम सदा सोचते थे कि मामाजी लस्सी पीने के लिए ही अक्सर हमारे घर आते हैं। इसके दो कारण थे। पहला, हमारी गाय के दूध से बनी लस्सी बड़ी स्वादिष्ट होती थी और दूसरा, हमें मामाजी गांव के सबसे बड़े कंजूस, अक्षरशः मक्खीचूस प्रतीत होते थे।

इस गाय को, अपनी बहिन के लिए, वे स्वयं कन्नावराम् जाकर खरीदकर लाये थे। इस दुधारू गाय के बछड़े पर मेरा छोटा भाई और सबसे छोटी बहिन जैसे जान देते थे। जब भी मामाजी हमारे घर आते अथवा यहां से वापस लौटते, वे इस गाय के चारों ओर एक चक्कर काटकर, उसे सहलाकर, दो-एक शब्दों में उसकी तारीफ करके ही लौटते थे (शब्दों की कंजूसी का कारण उनका यह भय था कि कहीं गाय को उनकी नजर न लग जाय)। मेरे छोटे भाई-बहिन सदा इस बात को लेकर चिंतित रहते थे कि जैसे ही गाय दूध देना बंद कर देगी, मामाजी उसे अपने घर ले जायेंगे और गाय के साथ उसका बछड़ा भी चला जायेगा।

इस भावी वियोग की आंशका ने उनके हृदय में एक ओर बछड़े के प्रति अपार प्रेम और दूसरी ओर मामाजी के प्रति तीव्र घृणा की भावना जगा दी। जब वे स्वाद लेते हुए लस्सी पीते तो ये दोनों भाई-बहिन जैसे अपनी तीखी दृष्टि से ही उन्हें छेदते; चिकोटी काटते थे।

कुर्सी को लेकर हमारे घर में जो विवाद चल रहा था उसमें मामाजी ने भी रुचि ली। उन्होंने हमें बताया कि वे भी अपने लिए एक कुर्सी बनवाना चाहते हैं। अब हमें अपनी योजना को क्रियान्वित करने के लिए एक अच्छा साथी मिल गया।

मामाजी ने बताया कि नीम की लकड़ी की कुर्सी बनवाना अच्छा रहेगा। उस कुर्सी पर बैठने से शरीर को ठंडक मिलेगी और बवासीर का रोग कभी नहीं होगा।

जैसे ही मामाजी ने कुर्सी के लिए नीम की लकड़ी के प्रयोग का सुझाव रखा, पिताजी ने उन्हें आश्चर्य और शरारतभरी दृष्टि से देखा। परसों ही पिताजी ने हमारे खेत के एक मजदूर को हमारी वनस्थली में बहुत दिनों से खड़े एक पुराने और मजबूत नीम के पेड़ को काटकर सीझने के लिए डाल देने का आदेश दिया था।

बड़े भाई बोले, "पीपल की लकड़ी से बनी कुर्सी बड़ी अच्छी रहेगी। यह लकड़ी सख्त होती है। इससे तैयार की गयी कुर्सी चमकीली भी होगी और मजबूत भी।"

दीदी बोली, "ये सभी लकड़ियां सफेद रंग की होती हैं। देखने में बिल्कुल अच्छी नहीं लगतीं। थोड़े दिनों में ही इनसे हमारा दिल उचट जायेगा। मैं तो यही कहूंगी कि लाल ईख के रंग की या तिल की खली की तरह काले रंग की कोई लकड़ी हो, तो उसी से कुर्सी बनवाना अच्छा रहेगा; आगे आप लोगों की मर्जी।" अचानक हमारी आंखों के सामने शीशे की तरह चमकती हुई काले रंग की एक ऐसी सुंदर कुर्सी का बिंब आया और लुप्त हो गया, जिसके अगले पायों को खरादकर बनाया गया था, जिसके पीछे पाये गोलाई में बाहर की ओर मुड़े हुए थे और जिसका पिछला हिस्सा इतना तिरछा था कि उस पर सिर टेककर बड़े आराम से बैठा जा सकता था।

दीदी की बात सभी को जंच गयी। अतः हम लोगों ने अपने लिए एक और मामाजी के लिए एक–इस प्रकार दो कुर्सियां बनवाने का प्रबंध किया।

जब दोनों कुर्सियां हमारे यहां लायी गयीं, तो हम यह निर्णय नहीं कर पाये कि कौन-सी कुर्सी अपने पास रखें और कौन-सी मामाजी के घर भिजवा दें। एक कुर्सी को देख लेने के बाद दूसरी को देखने की आवश्यकता ही नहीं थी। जैसे वे राम-लक्ष्मण की जोड़ी हों। हमने एक कुर्सी अपने पास रख ली और दूसरी मामाजी के घर भिजवा दी। मन में यह संदेह बना ही रहा कि जो कुर्सी भिजवायी है, शायद वही अच्छी है।

हम लोग बारी-बारी से उस पर बैठे। बैठने पर उठने की इच्छा ही नहीं होती थी। दूसरे लोगों को भी बैठना है, यही सोचकर उठ जाना पड़ता था। पहले बड़े भाई उस पर बैठे। बोले, "आ...हा...मजा आ गया।" उन्होंने अपने दोनों हाथ कुर्सी के हाथों पर फेरे। उस पर पालथी मारकर बैठे। तभी दीदी बोली, "इस पर एक लिहाफ चढ़ा देना चाहिए, वरना यह मैली हो जायेगी।"

कुर्सी को लेकर अक्सर मेरे छोटे भाई-बहिनों में झगड़ा होता था। बहिन चिल्लाती, "तू कब से इस पर बैठा हुआ है। जल्दी उठ, मुझे बैठना है।" इस पर भाई रोनी-सी सूरत बनाकर कहता, "हाय राम ! मैं तो अभी-अभी इस पर बैठा हूं। देखो मां, यह मुझे सता रही है !"

हमारे घर में कुर्सी के आने की खबर गांव भर में आग की तरह फैल गयी। बच्चे, बूढ़ों सभी के झुंड आ-आकर उसे देख गये। कुछ लोगों ने उसे छूकर देखा। कुछ लोगों ने उस पर बैठकर देखा। एक बूढ़े सज्जन ने उसे उठाकर देखा और बढ़ई की तारीफ करते हुए बोले, "कुर्सी काफी भारी और मजबूत है। बढ़ई ने बड़ी मेहनत से बनाया है।"

इस तरह कुछ दिन बीत गये।

एक दिन रात के लगभग दो बजे किसी ने आकर हमारा दरवाजा खटखटाया। भीतर आंगन में सोये बड़े भैया ने जाकर द्वार खोला। आनेवालों ने बताया कि अभी-अभी गांव के एक प्रसिद्ध नेता की मृत्यु हो गयी है। उनके लिए कुर्सी चाहिए, कहकर वे हमारी कुर्सी लेकर चले गये।

जिस सज्जन की मृत्यु हुई थी, वे हमारे परिचितों में से थे। अतः हम सपरिवार उनकी अंत्येष्टि में सम्मिलित हुए। जब हम वहां पहुंचे, जहां उनका अंतिम संस्कार हो रहा था, तो हमने क्या देखा ? मृत सज्जन को हमारी ही कुर्सी पर बैठाया गया था।

अब तक हमारे गांव में मृत व्यक्ति को धरती पर ही बैठाये जाने की परंपरा थी। ओखली को लिटाकर, उसे किसी पत्थर आदि से टिकाकर, किसी बोरी में लकड़ी और भूसा भरकर, उसे तनिक तिरछा करके ओखली से सटाकर, बोरी की तिरछी सतह पर मृत व्यक्ति के शरीर को इस तरह रख दिया जाता था कि वह पीछे सिर टेककर बैठा हुआ-सा प्रतीत होता था।

कुर्सी पर मृत व्यक्ति को बैठाने की यह नयी रीति हमारे गांववालों ने न जाने कहां जाकर सीख ली ? बेचारी हमारी कुर्सी की आफत आ गयी (मृत व्यक्तियों को जमीन का नहीं, कुर्सी का टिकट मिलने लगा)।

अंतिम संस्कार-संबंधी सभी कार्यों के पूरा होने पर वे लोग कुर्सी को हमारे घर के बाहरी बरामदे में रख गये। उस कुर्सी को देखकर घर के सभी बच्चे डरने लगे। हमने नौकर को बुलाकर कुर्सी को कुएं के पास ले जाने को कहा। जूने की सहायता से उसे रगड़-रगड़कर साफ किया और बड़ी बाल्टी में पानी भरकर लगभग पंद्रह बाल्टी पानी से उसे धोया। इसके बाद उसे फिर बरामदे में लाकर रख दिया। काफी दिन बीत जाने के बाद भी किसी की भी उस पर बैठने की हिम्मत नहीं हुई। हमारी समझ में नहीं आया कि हम लोग किस तरह उस कुर्सी को फिर से प्रयोग में लायें।

एक दिन सौभाग्य से हमारे घर एक मेहमान आये। हमने उनके बैठने के लिए वही कुर्सी मंगवायी। इस पर वे बोले, "चिंता मत कीजिए, मैं जमीन पर बैठ जाऊंगा।" और इधर-उधर दरी खोजने लगे। हम लोग घबराये, कहीं ये सज्जन जमीन पर न बैठ जायें। सबने मिलकर जबरदस्ती उन्हें कुर्सी पर बैठा दिया। उनके बैठते ही मेरे छोटे भाई बहिन पिछवाड़े की ओर भाग गये। वे लोग बीच-बीच में आकर कमरे

में झांककर देख लेते थे कि कुर्सी पर बैठे सज्जन को कुछ हुआ तो नहीं !

अगले दिन हमारे घर गांव के एक वयोवृद्ध सज्जन आये। अचानक ही उस कुर्सी पर बैठकर उन्होंने हमें और अधिक हिम्मत दिलायी। (मेरे बड़े भैया ने धीरे से मेरे कान में कहा—"देखो ये अभी से कुर्सी पर बैटने की तैयारी कर रहे हैं"।)

धीरे-धीरे हम लोग फिर से कुर्सी का प्रयोग करने लगे। पहले उस पर घर के बड़े लोग ही बैठते थे। बच्चों का डर अभी भी दूर नहीं हुआ था। मेरी छोटी बहिन छोटे भाई के सामने गिड़गिड़ाती, "थोड़ी देर के लिए तू इस पर बैठ जा न !" इस पर वह तुरंत जवाब देता, "पहले तू क्यों नहीं इस पर बैठ जाती ?"

एक दिन पास की गली में रहने वाली सुगंदी ने आकर अपने एक साल के छोटे भाई को उस कुर्सी पर बैठा दिया। उस दिन से घर के सभी बच्चे बिना किसी डर के उस पर बैठने लगे।

फिर एक बार रात में गांव के किसी व्यक्ति के मर जाने पर लोग हमारी कुर्सी मांगकर ले गये। ऐसा अक्सर होता रहा।

हम लोग भारी मन से ही अपनी कुर्सी किसी को देते थे। कुर्सी मांगनेवाले, मृत व्यक्ति के संबंधी हमें दुखी देखकर उसका और ही अर्थ लगा लेते थे। शायद वे सोचते थे कि उनके संबंधी की मृत्यु का समाचार सुनकर हम दुखी हो रहे हैं।

हमें दुख तो होता ही, साथ ही गुस्सा भी आता कि इन लोगों ने आकर हमारी नींद खराब कर दी। एक दिन दीदी बोली, "मेरी समझ में नहीं आता कि मरनेवाले इस तरह समय-असमय क्यों मर जाते हैं ?"

बड़ा भाई दुखी मन से बोला, "छि : ! हमने कुर्सी भी क्या बनवायी, गांव भर के मृतकों को बैठाने के लिए ?"

बुआ बोली, "शायद हमने कुर्सी अच्छे मुहूर्त में नहीं बनवायी।"

एक दिन बड़े भैया ने एक योजना बनायी। उसने मेरे अतिरिक्त और किसी से उसके विषय में कुछ नही कहा।

एक दिन मां ने किसी काम से मुझे मामाजी के घर भेजा।

जब मैं उनके घर पहुंचा तब मामाजी बड़े ठाठ से कुर्सी पर बैठे पान लगा रहे थे। उन्हें पान लगाते और खाते देखना समय बिताने का एक अच्छा साधन है। वे प्रतिदिन धोकर साफ की गयी सोने के रंग की चमचमाती हुई एक बालिश्त चौड़ी, एक हाथ लंबी और चार अंगुल ऊंची अपनी पान की डिबिया को निकालकर इतनी धीरे से उसे खोलते थे कि कहीं उसे दर्द न हो। इसके बाद उसकी एक-एक चीज को उसी तरह बाहर निकालकर रखते थे, जैसे डिब्बे में से पूजा की सामग्री निकालकर रखी जाती है। वे पान को पोंछ जरूर लेते थे, किंतु न उसका डंठल तोड़ते थे और न ही उसका कोना। मामाजी बड़े किफायती थे। कभी कोई पका हुआ पान का पत्ता उनके हाथ आ जाता, तो वे उसकी नसों को छील लेते थे। उस समय हमें

पान के संबंध में प्रचलित यह लोकगीत याद आ जाता था–"मुत्तप्पन को पकड़कर, उसकी चमड़ी उधेड़कर, उस पर ताजा, मक्खन लगाकर– ।"

वे सबसे पहले मसालेदार सुपारी को अपने हाथ में लेकर सूंघते थे। उनका कहना था कि ऐसा करने से मूर्च्छा नहीं आती। इसके बाद उस पर फूंक मारते थे, ताकि उससे चिपके हुए सूक्ष्म कीटाणु उड़ जायें। वे सूंघने और फूंक मारने की इस क्रिया को धीरे से आरंभ करते थे। फिर बड़ी तेजी से 'उम् उश्, उम् उश्' की ध्वनि के साथ चार-पांच बार अपने हाथों को बारी-बारी से नाक और मुंह के पास ले जाते थे और अंत में शुद्ध की गयी उस सुपारी को एकदम मुंह में डाल लेते थे।

केवल उनके द्वारा प्रयोग में लायी जानेवाली चूने की डिबिया को देखने से ही मालूम हो जाता था कि वे कितने सफाई पसंद हैं। चीजों को साफ रखने में मामाजी सबके अगुवा थे। उंगली में जो चूना बचा रह जाता था, उसे भी वे चूने की डिबिया आदि पर नहीं मलते थे। उनकी चूने की डिबिया इतनी साफ होती थी कि कोई उसे आंख से भी लगा सकता था। पंद्रह साल पहले उन्होंने जो एवरेडी का टार्च खरीदा था, और जिसका उपयोग वे आज भी कर रहे हैं, वह एकदम नया दिखाई देता है। लगता है, उसे अभी-अभी बाजार से खरीदा गया है। उनके साथ हमने जो टार्च खरीदा था, वह कई बार नीचे गिरने के कारण पिचक गया था। पीले रंग का वह टार्च बहुत दिनों से रोग से पीड़ित और मृतप्रायः किसी रोगी के समान दिखाई देता था। उसकी यह हालत देख, हमें उस पर तरस आता था।

उनके घर में उनके अतिरिक्त दूसरा कोई भी व्यक्ति कुर्सी पर नहीं बैठ सकता था। वे सुबह उठते ही सबसे पहले उसे साफ करते। स्वयं ही उसे उठाकर एक जगह से दूसरी जगह ले जाते। बिना किसी आवाज के इतने धीरे से उसे नीचे रखते, जितने जल से भरे मिट्टी के घड़े को रखा जाता है।

मुझे देखते ही मामाजी ने, "आइए, भांजे साहब" कहकर मेरा स्वागत किया। फिर उन्होंने मुझसे प्रश्न किया, "क्यों, पान खाओगे ?" और मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना बोले, "पढ़नेवाले लड़कों को पान नहीं खाना चाहिए। ऐसा करने से अनपढ़ ही रह जाओगे !"

मां का संदेश उन्हें देकर मैं घर लौट आया।

आधी रात के बाद किसी के दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनायी दी। घर में सब गहरी नींद सोये हुए थे। मैंने बड़े भाई को जगाया।

कुर्सी लेने के लिए आये किसी मृत व्यक्ति के रिश्तेदार बाहर खड़े थे। बड़ा भाई उन्हें गली की ओर ले गया। मैं भी उनके पीछे-पीछे गया। उन लोगों ने अपने आने का कारण बताया। इस पर बड़े भाई ने बड़ी शांति के साथ उनसे कहा, "आपको कुर्सी ही तो चाहिए ? वह हमारे मामाजी के घर पर है। उनके पास जाकर मांगिये। वे अवश्य दे देंगे। यह मत कहियेगा कि हमने आपको वहां भेजा है। इस तरह के

कामों में कौन मदद नहीं करता ? यदि वहां कुर्सी न मिले, तो आप लोग सीधे यहां चले आइये; बाद की बाद में देखी जायेगी।" ऐसा कहकर उन्हें विदाकर हम दोनों घर के भीतर आये और चुपचाप हंसने लगे।

बिस्तर पर करवटें बदलते हुए नींद में ही पिताजी ने पूछा, "कौन आया था ?"

बड़ा भाई बोला, "कोई यहां क्यों आयेगा ? अपने बैलों के साथ सहवास के लिए गाय मांगने आये थे।"

उसकी बात सुनकर पिताजी ने चादर खींचकर अच्छी तरह से ओढ़ी और दूसरी तरफ मुंह फेरकर सो गये।

अब मामाजी के यहां (दुख के) बादल बरस रहे थे।

एक लंबे अरसे के बाद एक दिन जब मैं मामाजी के यहां गया, तब वे जमीन पर बैठे पान लगा रहे थे। उन्होंने हमेशा की तरह हंसते हुए मेरा स्वागत किया।

मैंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाते हुए उनसे पूछा, "आप इस तरह जमीन पर क्यों बैठे हुए हैं ? कुर्सी कहां गयी ?" पान पर चूना लगाते हुए उन्होंने मुझे घूरकर देखा और मुस्कुराने लगे। फिर धीरे से बोले, "मैंने मृत व्यक्तियों को बैठाने के लिए वह कुर्सी गांववालों को दे दी। इस काम के लिए भी तो एक कुर्सी होनी चाहिए न ?"

मेरी समझ में नहीं आया कि मैं क्या कहूं। घर लौटते समय बड़े भाई को यह समाचार देने की उत्कंठा से मैंने जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाये, किंतु रह-रहकर मेरी चाल धीमी होती जा रही थी।

पराये लोग

आर. चूड़ामणि

"आओ...आओ !" इससे अधिक वह कुछ न कह सकी। अत्यधिक प्रसन्नता के कारण उसकी वाणी मूक हो गयी और सांस जैसे घुटने लगी। उसकी दृष्टि और मुस्कान ही जैसे उसके मन की सभी बातें कह रही थीं।

मुस्कुराते हुए सौम्या बोली, "हलो सवि ! तेरा यहां आना मेरे लिए सुखद आश्चर्य का विषय है। मुझे आशा नहीं थी कि तू स्टेशन आयेगी।" ऐसा कहकर वह तेजी से उसके पास आ खड़ी हुई।

सविता बोली, "अरी, हम दोनों को एक दूसरे से मिले कितने साल हो गये ! फिर भी यदि तूने आशा नहीं की थी कि मैं स्टेशन आऊंगी तो मैं तुझे माफ नहीं कर सकती।"

उसकी बात सुनकर सौम्या हंस पड़ी और बोली, "शुक्र है भगवान का ! जब तू इस तरह की बातें करती है, तब मुझे लगता है कि मैं अपने घर आ गयी हूं।"

लगभग दो मिनट तक दोनों बहनें मूक-सी एक दूसरे के सामने खड़ी रहीं। अर्थपूर्ण और भावनामय उन क्षणों में वाणी की आवश्यकता कहां थी ? सामान उठाये दोनों सेंट्रल स्टेशन से बाहर निकलीं और टैक्सी पर सवार होकर कस्तूरबा नगर जा पहुंचीं। रास्ते में दोनों ने एक दूसरे से बस इतना ही पूछा कि, "तू कैसी है ? तेरे पति और बच्चे कुशलपूर्वक हैं न ?" टैक्सी में काफी जगह थी फिर भी दोनों अनजाने ही एक दूसरे से सटकर बैठी थीं। उनकी यह चेष्टा ही जैसे उनके मन की सभी भावनाओं को व्यक्त कर रही थी।

सविता के पति ने अपनी साली का स्वागत किया, उसका कुशलक्षेम पूछा और फिर हंसते हुए कहने लगे, "जब से तेरा यहां आना तय हुआ, तभी से खुशी के कारण तेरी दीदी के पांव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे।"

सौम्या की आंखें दीदी की ओर घूम गयीं। दोनों के बीच पुनः मौन का एक सेतु बन गया। मुस्कुराहटों में ही मन की बातें व्यक्त होने लगीं।

"मुझे ऐसा बिल्कुल नहीं लगता कि हम दोनों को एक दूसरे से मिले इतने साल हो गये हैं। सवि के बाल कुछ सफेद होने लगे हैं। इसके अतिरिक्त उसमें कोई अंतर

नहीं आया है।"

"यह सफेद बालों की बात कर रही है।" यह सोचकर सविता तनिक हंसी। उसकी वह धीमी हंसी मानो कह रही थी–"समय यही कर सकता है। इससे अधिक कुछ कर सकने की सामर्थ्य बेचारे समय में कहां है!" मिलन की उस वेला में वियोग की लंबी अवधि जैसे लुप्त हो गयी। एक-दूसरे से सच्चा प्यार करनेवाले कितने ही वर्षों बाद क्यों न मिलें, वे कितनी आसानी से परस्पर संबंध जोड़ लेते हैं। जैसा कि सौम्या ने कहा था, उन दोनों को ऐसा नहीं लगा कि वे वर्षों बाद एक दूसरे से मिल रही हैं। मानसिक स्तर पर उनमें कोई दूरी कहां थी? इसी से ग्यारह वर्षों का अंतराल क्षण भर में ही पट गया। उन्हें ऐसा लगा मानो वे दोनों कभी एक दूसरे से नहीं बिछुड़ीं और सदा से साथ-साथ रहती आयी हैं।

इससे पहले अपनी विधवा मां की मृत्यु के समय वे एक-दूसरे से मिली थीं। वह स्थिति आज की स्थिति से बिल्कुल भिन्न थी। तब वे दोनों अलग-अलग स्थानों से मानो उड़ती हुई आकर एक दूसरे से इसलिए मिली थीं, ताकि परस्पर अपना दुख बांट सकें। उस समय उनमें जो निकटता और एकता दीख पड़ी वह उनकी मनोव्यथा का ही एक अंश थी। उस समय वे सदा मां के बारे में या उनकी मृत्यु से संबंधित विभिन्न घटनाओं के बारे में चर्चा करने में ही लगी रहती थीं। मां का अंतिम संस्कार करने के बाद सभी अपने-अपने घरों को लौट गये।

उस दिन के बाद आज ही वे दोनों सच्चे दिल से एक-दूसरे से मिल रही थीं। कुछ समय से रक्त की कमी से पीड़ित होने के कारण सौम्या बहुत कमजोर हो गयी थी। सविता के घरवालों के निमंत्रण पर, सौम्या के पति ने स्वयं बच्चों की और घर की देखभाल करने का जिम्मा ले कर, सौम्या के हवा-पानी बदलने के विचार से उसे उसकी दीदी के घर बंबई भेज दिया था।

इस समय उन बहनों को लगा कि वे दोनों मिलकर बीते हुए समय को पुनः अपने पास खींच लायी हैं। पहले दिन के मौन के बाद उनकी बातों में घनिष्ठता और मित्रता की भावना झलकने लगी। जब-तब सविता के पति छेड़ते, "इन बहनों की बातें शायद कभी खत्म नहीं होंगी!" उसके बच्चे भी व्यंग्यपूर्ण ढंग से हंसते। इसका कोई प्रभाव सविता पर नहीं पड़ता। बातों का कोई क्रम नहीं होता। अथवा कह सकते हैं कि उसका क्रम निराला होता है। एक दिन नये किसी विषय पर चर्चा करतीं। दूसरे या तीसरे दिन उससे सर्वथा भिन्न किसी विषय पर चर्चा करते समय जब वे "इसीलिए तो मैंने तुमसे वह बात कही थी..." कहकर अचानक उसकी ओर संकेत करतीं, तो पहली और दूसरी बातें सहज रूप से जुड़ जातीं। उन्हें उनका पारस्परिक संबंध समझ में आ जाता। उनका रक्तसंबंध बर्फ की उस चट्टान की तरह था, जिसका छोटा-सा हिस्सा दिखायी देता है और बहुत बड़ा हिस्सा जलधारा में डूबा रहता है। बाहर दिखायी देनेवाले उस छोटे-से हिस्से के पीछे जो बड़ा-सा

हिस्सा छिपा हुआ है, उसे देखा नहीं, केवल समझा जा सकता है।

परिवार के दूसरे लोगों को चटपटा भोजन खिलाकर सविता अपनी छोटी बहिन के साथ भात में मामूली-सा मसाला डालकर तैयार किया गया सांभर मिलाकर खाने लगी। उनके स्वाद की यह समानता उनमें पायी जानेवाली गहन एकता का एक महज छोटा-सा चिह्न था। उन दोनों को कॉफी में एक जैसी ही मिठास पंसद थी। दोनों को चौड़े बार्डरवाली साड़ियां ही पसंद थीं। दोनों शाम को टहलने के बदले सुबह टहलना ही अधिक पसंद करती थीं। रात को सोने के बाद बीच में दो बजे उठकर पानी पीने और पुनः सो जाने की आदत दोनों में समान रूप से थी। इस तरह उनमें न जाने कितनी ही समानताएं थीं। एक ही कोख से जन्म लेने के कारण पायी जानेवाली छोटी-छोटी समानताएं। अपनी ये आदतें उन्हें सुखदायक प्रतीत होती थीं। सविता चालीस साल की होनेवाली थी। सौम्या उससे साढ़े तीन साल छोटी थी। परस्पर एक-दूसरे से अत्यधिक प्रेम करने के कारण उन्होंने अपनी आदतें नहीं छोड़ीं। वे शाश्वत रूप से बनी रहीं। इसी से वे दोनों लगभग एक जैसी लगती थीं।

सविता ने नियमित रूप से बहिन का इलाज करवाया, मानो वह अपने किसी कर्तव्य को पूरा कर रही हो।

एक दिन उसने बहिन को गौर से देखते हुए कहा, "मुझे लगता है कि तेरे शरीर में खून की मात्रा कुछ बढ़ी है। अब तेरे चेहरे पर पहले की तरह पीलापन नहीं है।"

"यह सब तेरे हाथ का कमाल है! बंबई में इलाज करवाते हुए मैंने कोई डाक्टर नहीं छोड़ा!" यह कहकर सौम्या हंस पड़ी।

दही में भिगोकर रखे गये सूखे मकोय के दोनों में चीनी मिलाकर उसे चम्मच से खाते हुए दोनों बहिनें बैठी बातें कर रही थीं। मायके में नाश्ते के समय वे अक्सर यही खाया करती थीं।

"मेरे यहां किसी को यह अच्छा नहीं लगता। आज तो तू मेरा साथ देगी।" कहकर बड़ी खुशी के साथ सविता ने वह नाश्ता तैयार किया था।

शाम को लगभग साढ़े चार बजे थे। सविता का बड़ा लड़का राजू कॉलेज से घर लौटा। वह उन्नीस वर्ष का था और एम. एस-सी. प्रथम वर्ष में पढ़ता था।

उसने मां से कहा, "मां, कल हमारे कॉलेज में एम. एस-सी. द्वितीय वर्ष के छात्रों के लिए ब्रेक-अप पार्टी का आयोजन किया जा रहा है। कल शाम को मैं घर नहीं लौटूंगा। रात कॉलेज में बिताकर परसों सुबह ही लौटूंगा।"

सविता बोली, "अच्छा।" सौम्या ने उसे गौर से देखा और बोली, "राजू तू प्रथम वर्ष का छात्र है न ? रात को तेरा कॉलेज में रहना जरूरी है ?"

"नहीं मौसी, मेरा वहां रहना जरूरी नहीं है। यूं ही रात को वहां ठहरने की इच्छा हो रही है। मेरे बहुत से मित्र भी वहां होंगे।"

उसके वहां से जाते ही सौम्या ने बहिन से पूछा, "सवि, क्या जीजा जी उसे ऐसा करने की अनुमति देते हैं ?"

"हां !"

"क्या तू भी मना नहीं करती ?"

"मैं क्यों मना करूं ?"

"इस तरह घर से बाहर रहकर ही आजकल के बच्चे चुरुट, गांजा, शराब पीना–सभी तरह की बुरी आदतें सीख रहे हैं। इसके कॉलेज में को-एजुकेशन भी है...मैं व्यक्तिगत रूप से राजू के विषय में कुछ नहीं कह रही हूं।"

"सौमी मैं तेरी बात समझ रही हूं, किंतु जमाना बदल रहा है। क्या हम उसे बदलने से रोक सकते हैं ?"

"हम बच्चों को तो गलत काम करने से रोक सकते हैं ?"

"समाज में जो कुछ हो रहा है, उन सब बातों की जानकारी आजकल के बच्चों को होनी चाहिए। इसके बाद यह उन पर निर्भर करता है कि वे मर्यादापूर्वक जीते हैं अथवा मर्यादा का उल्लंघन करते हैं।"

"क्या तू यह कहना चाहती है कि छोटों पर बड़ों का कोई नियंत्रण नहीं होना चाहिए ?"

"मैं तो इतना ही जानती हूं कि उन्हें जितना दबाया जायेगा वे उतना ही भड़केंगे।"

"बच्चों को मदद की आवश्यकता होती है। यदि मां-बाप मदद न करें, तो उनकी सार्थकता क्या है ?"

"हम हमेशा बच्चों को यह एहसास दिलाते रहते हैं कि हम अपना सारा प्यार उन पर लुटाने को तैयार हैं। इसके अतिरिक्त और किस तरह से उनकी मदद कर सकते हैं ?"

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहीं। समान रूप से आगे बढ़ते हुए क्या उनके सामने कोई बाधा आ गयी ? सौम्या ने नाश्ते की प्लेट मेज पर रख दी। उसमें थोड़े से मकोय के दाने बाकी रह गये थे। सविता क्षण भर चुप रही, फिर उसने हाथ बढ़ाकर छोटी बहिन का हाथ पकड़ा और धीरे से उसे दबाया।

"सौमी, इन बातों को लेकर परेशान मत हो। बिना चोट खाये कोई भी बड़ा नहीं हो सकता। क्या हम बच्चों को सबकी नजरों से बचाकर रख सकते हैं ? सबसे पहले तो यह बता कि क्या बच्चे इस तरह रहने के लिए तैयार होंगे ? अब छोड़ इन बातों को। यहां थियेटर में नयी हिंदी फिल्म लगी है, उसे देखने चलें ? तूने बंबई में यह फिल्म देख ली है क्या ?"

"नहीं, अभी तक नहीं देखी, दोनों साथ देख लेंगे।"

नयी फिल्म देखकर लौटने के बाद दोनों बहिनें उस दिन बहुत देर तक उसके बारे में ही बहस करती रहीं। सौम्या को वह फिल्म अच्छी नहीं लगी। वह बोली,

"इस तरह खुलकर प्रेम का प्रदर्शन करना ही क्या अच्छी फिल्म की कसौटी है ? आजकल फिल्म, साहित्य सभी में नग्न प्रेम का चित्रण करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और यह अश्लीलता की सीमा तक पहुंच रही है। क्या तू ऐसा नहीं सोचती ?"

"हम अश्लीलता की उपेक्षा कर फिल्म की कथा, कलात्मकता और अन्य गुणों पर अपना ध्यान केंद्रित करके भी तो रस पा सकते हैं।"

"पहले जहर उंड़ेलकर फिर उसमें अच्छाइयों की खोज करने की आवश्यकता क्या है ? यह तो हाथी को छोड़कर उसकी पूंछ पकड़नेवाली बात हुई।"

उस रात सौम्या ने अपनी अटैची में से अंग्रेजी की दो पत्रिकाएं निकालीं और उनके खास पृष्ठों को खोलकर उन्हें बहिन के हाथों पर रख दिया।

उसे देख सविता की आंखें खुली की खुली रह गयीं ! वह बोली, "अरे, इनमें तो तेरा नाम छपा हुआ है ! ये कहानियां हैं न ? तू कहानियां भी लिखने लगी ! कब से ? मुझे बताया तक नहीं ?"

"बताते हुए शर्म आ रही थी। धीरे से इसकी चर्चा कर तुझे दिखाने के लिए ही ये पत्रिकाएं साथ ले आयी थी। पिछले एक साल से लिखती आ रही हूं। जब फुर्सत मिले तब यूं ही मेरा मन रखने के लिए उन्हें पढ़ लेना।" कहानियां पढ़कर सविता अत्यधिक प्रसन्न हुई।

"सौमी, तूने सचमुच बहुत बढ़िया लिखा है ! तेरी हर पंक्ति बता रही है कि कॉलेज में तूने अंग्रेजी में गोल्ड मेडल पाया था। तेरी शैली बड़ी प्रभावशाली है।"

"शैली की बात छोड़, कहानियों का विषय कैसा लगा ?"

सविता एक क्षण चुप रही। फिर बोली, "कहानियां अच्छी हैं, किंतु...ऐसा लगता है कि पुरानी परियों की कहानियों को नये रूप में प्रस्तुत कर दिया गया है।"

"हमारे चारों ओर जहां देखो वहीं कुरूपता और विकरालता है। इसी से अपने लेख में अच्छाई और पवित्रता को चित्रित करना मैंने अपना लक्ष्य बना लिया है।"

इस पर दोनों चुप हो गयीं। यह चुप्पी सविता के हृदय में कांटे-सी कसकने लगी। अगले दिन प्रातः पांच बजे हमेशा की तरह बहिन के साथ अडैयार के पुल तक टहलकर लौटने पर ही उसकी वह कसक दूर हुई। उसने चैन की सांस ली। 'शुक्र है भगवान का ! सब कुछ पहले जैसा हो गया।'

नौ बजे पुस्तकालय का सेवक कुछ नयी किताबें दे गया और पुरानी किताबें लौटाकर ले गया। सौम्या ने उन नयी किताबों को पलटकर देखा। उन दोनों में से जो पतली थी, उसका शीर्षक और उसके लेखक का नाम पढ़ते ही बोली, "अरे यह किताब तो मैंने पढ़ी है। सवि, तू इसे जरूर पढ़ लेना। तुझे यह बहुत अच्छी लगेगी।" ऐसा कहकर वह हंसने लगी।

उस किताब को पूरा पढ़ जाने के बाद सविता काफी देर तक चुपचाप बैठी

रही। वह कोकशास्त्र की एक किताब थी, जिसका न तो कोई साहित्यिक स्तर था और न ही उसमें मानवीय मूल्यों की स्थापना थी। सौम्या ने कैसे कह दिया कि यह किताब उसे पसंद आयगी ? उसकी बातों से क्या सौम्या उसे इतना ही जान सकी है ?

एक दिन सविता के पति ने उससे पूछा, "इरोज थियेटर पर लगनेवाली हर तमिल फिल्म देखने के लिए तो तू सौमी को साथ ले जाती है। पर तू उससे इतनी नाराज क्यों है ?"

"बंबई में वह तमिल फिल्म कहा देख पाती है ? उसकी इच्छा से ही मैं उसे ले जाती हूं। है न सौमी ?"

सौमी बोली, "ओरा।" दूसरे लोग उस शब्द का अर्थ न जान पाने के कारण उसका मुंह ताकते रह गये, किंतु सविता खुशी से फूली न समायी। बचपन में उन दोनों ने मिलकर एक रहस्यात्मक भाषा का निर्माण किया था, ताकि उनकी बात बड़े लोग न समझ सकें। उनके उस विशिष्ट कोश के अनुसार जिसमें उनके द्वारा निर्मित प्रत्येक शब्द और ध्वनि-समूह का अर्थ दिया गया था, 'ओरा' का अर्थ था 'हां'। सौम्या द्वारा अचानक उस रहस्यात्मक भाषा का प्रयोग किये जाने से सविता को लगा कि उनका पारस्परिक संबंध और मजबूत हो गया है। दोनों बहिनों ने मुस्कुराते हुए एक दूसरे को देखकर आंख झपकायी।

सविता ने पूछा, "शाम को लेडीज क्लब जाना है। याद है न ?"

वह जिस नारी समिति की सदस्या थी, उसमें एकाध बार अपनी बहिन को ले जा चुकी थी। आज बाकी सदस्यों को यह सूचना देते हुए कि उसकी छोटी बहिन कहानियां लिखती है, सविता की आंखें चमकने लगीं, उसका चेहरा खिल उठा।

समिति की अध्यक्षा ने उस दिन सविता को उस गरीब लड़के के विषय में बताया जो हाल ही में उनके पास आया था। पैरों से चल न सकने के कारण उसके परिवार वालों ने उसे छोड़ दिया था। लड़के को पढ़ाना चाहिए, किंतु उससे कहीं अधिक जरूरी है कि उसके भोजन का प्रबंध किया जाय। वह पिछले चार-पांच दिनों से पास के एक स्कूल के अहाते में पड़ा हुआ है और वहां से न हटने की जिद कर रहा है। उसकी तुरंत सहायता करने के लिए समिति की अध्यक्षा चंदा इकट्ठा कर रही थीं। उसके यह कहने पर कि "आप जितना देना चाहें दे दीजिए" सविता ने दस रुपये निकालकर दे दिये। "और आप ?" कहकर उसने सौम्या की ओर मुंह फेरा। सौम्या कुछ देर चुपचाप खड़ी रही, फिर बहिन को एक नजर देखकर अपने हिस्से के पांच रुपये उसके हाथ पर रख दिये।

घर लौटते हुए सविता ने पूछा, "उस लड़के की दशा बड़ी दयनीय है न ?" सौम्या ने तुरंत कोई उत्तर नहीं दिया।

"सौमी तू चुप क्यों है ?"

"मैं क्या कहूं ? बेचारा लड़का ! क्या तू सोचती है कि उसको लेकर मैं दुखी नहीं हूं ? लेकिन..."

"लेकिन क्या ?"

"इन समस्याओं का समाधान बड़ी-बड़ी संस्थाओं को करना चाहिए। सहायता के लिए एक-दो लोगों के आगे आने से क्या होगा ? हमारे यहां गरीबी ने एक अंतहीन खाई का रूप धारण कर लिया है। उसे हम किसी भी तरह पाट नहीं सकते। फिर व्यर्थ ही पाटने का प्रयत्न क्यों करें ?"

"माना गरीबी एक असीम खाई है। उसे आसानी से पाटा नहीं जा सकता, किंतु धीरे-धीरे पाटने का यत्न तो किया जा सकता है ?"

अचानक यहीं पर बातचीत बंद हो गयी। वे चुपचाप चलती हुईं घर आ पहुंचीं। आजकल मौन उनकी बातों का महत्वपूर्ण अंग नहीं बनता था। जब वे दोनों हाल के अंदर पहुंची तो वहां बहुत शोर हो रहा था। सविता की चौदह वर्षीया बेटी जिस नयी पत्रिका को पढ़ रही थी, उसे उसके हाथ से छीनने के लिए उससे दो साल छोटा उसका भाई उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

"अरी, वह पत्रिका मुझे दे !"

"अरे जा यहां से। मैं पढ़कर ही तुझे दूंगी।"

"अमिताभ बच्चन के तुरंत दर्शन न करने से क्या तेरा सिर फट जायेगा ?"

दोनों चीखते-चिल्लाते हुए इधर-उधर दौड़ते रहे। सोफे के पीछे से तेजी से घूमकर आगे भागते हुए लड़के का सिर दीवार पर बनी अलमारी से टकरा गया। इससे उसका शीशे का दरवाजा टूट गया और उसके भीतर रखा शीशे को तराश कर बनाया गया एक ऊंचा-सा फूलदान एक ओर लुढ़क गया। उसके नीचे गिरने से पहले सविता ने दौड़कर उसे पकड़ लिया। उस समय उसका चेहरा एकदम लाल हो गया था। लड़के की ओर मुंह करके वह गुस्से से चिल्लायी–"शैतान कहीं का, इस तरह अंधाधुंध दौड़ने की क्या जरूरत है ? यह फूलदान टूट जाता तो ?" ऐसा कहकर वह हांफने लगी।

लड़के ने सिर झुका लिया और बोला, "सॉरी अम्मा !" वह और उसकी बड़ी बहिन दोनों कमरे से बाहर चले गये।

सविता का गुस्सा शांत होने में कुछ देर लगी। सौम्या चुपचाप उसे देखती रही।

"देख सौमी, यह हमारे मां-बाप का दिया हुआ है, यही सोचकर किसी खजाने की तरह मैंने इसे संभालकर रखा है। इस बात को जानते हुए भी ये बच्चे कितने लापरवाह हैं ?"

सौम्या कुछ नहीं बोली।

"यह टूट जाता तो मुझे लगता कि मेरे प्राण ही निकल गये हैं। इसके साथ का दूसरा फूलदान, जो उन्होंने तुझे दिया था, उसे तूने भी संभालकर रखा होगा,

हैं न ?"

"हां, वह बिल्कुल सुरक्षित है।"

"तूने भी उसे इसी तरह हाल में सजाकर रखा है ?"

"हां ! रखा था।"

"रखा था, क्या मतलब ?"

"ऊपर के फ्लैट में रहनेवाली लड़की ने उसकी सुंदरता की बहुत तारीफ की, अतः उसके विवाह पर मैंने वही फूलदान उसे उपहार के रूप में दे दिया।"

सविता चौंक पड़ी।

"क्या कहा ! दे दिया ? उसे अपने से अलग करने का विचार तेरे मन में कैसे आया ?"

"आ गया तो क्या हुआ ?"

"वह मां-बाप की निशानी..."

"क्या मां-बाप को याद रखने के लिए किसी निशानी की जरूरत होती है ?"

पुनः उनके विचार परस्पर टकराये। दोनों बहिनें गंभीर होकर एक-दूसरे को घूरने लगीं। उनकी दृष्टि से उनके मन की बेचैनी झलक रही थी।

"सवि, मैं जाकर दोनों के लिए कॉफी तैयार करती हूं। तू फूलदान को संभालकर रखकर आ जा।"

सौमी समान मात्रा में चीनी आदि डालकर तैयार की गयी कॉफी के दो प्याले ले आयी और दोनों उसे पीने लगीं। ऐसा लगा कि हाथ से खिसकती किसी चीज को फिर से कसकर पकड़ने का यत्न किया जा रहा है।

इतनी जल्दी दो महीने बीत गये ? मन की यह वेदना दोनों की आंखों से झलक रही थी। एक बहिन का दूसरी का सामीप्य पाने की इच्छा से उसके पास आ बैठना, 'उसे यह पसंद है, वह पसंद है' ऐसा सोचकर नयी-नयी चीजें बनाना आदि चेष्टाएं मानो उनके दुखी मन के इस प्रश्न को रह-रहकर दुहरा रही थीं 'न जाने अब हम कब मिलेंगे ?' दोनों में काफी घनिष्टता थी, किंतु फिर भी आजकल बातचीत करते हुए वे बहुत सतर्क रहती थीं। परस्पर हंस-हंसकर बातचीत करते हुए, पुरानी घटनाओं की याद करते हुए अथवा बीते दिनों की कहानी कहते हुए वे हमेशा सजग रहती थीं कि उनके बीच के दृष्टिकोण का अंतर कहीं उभरकर सामने न आ जाये। वे हमेशा चिंतित रहती थीं कि वे स्वयं अपने द्वारा निर्धारित सीमा का उल्लंघन न कर बैठें।

डाक से भेजी गयी सौम्या की हाल ही में ली गयी तस्वीर को देखकर उसके पति ने उसे पत्र लिखा था, "तुम तो इतनी मोटी हो गयी हो कि तुम्हें पहचान ही नहीं पा रहा हूं। घर लौटते समय अपने माथे पर अपने नाम की चिट जरूर लगा लेना।" पति और बच्चों के पत्रों से ऊपरी तौर पर यही व्यक्त होता था कि वे

सहज-स्वाभाविक ढंग से और बड़े आनंद के साथ दिन काट रहे हैं, किंतु उनसे यह भी संकेत मिलता था कि उसकी अनुपस्थिति उन्हें अखर रही है। जल्दी ही उसे घर लौट जाना चाहिए।

दोनों बहिनों ने मिलकर यह निश्चय किया कि अब वे बरसों तक एक-दूसरे से बिछुड़ी नहीं रहेंगी, वरन् साल में एक बार बारी-बारी से एक दूसरे से मिलने आयेंगी।

"हमारा यह निर्णय नये साल में औपचारिक रूप से लिये जाने वाले निर्णय की तरह ही न रह जाय।" ऐसा कहकर सौम्या हंसी। अचानक उसकी आंखें छलछला आयीं। सविता की ठोड़ी कांपने लगी। वह कुछ नहीं बोली। चुपचाप जाकर गत्ते का एक डिब्बा उठा लायी। उसमें रेशमी और सूती धागों से तैयार की गयी एक 'अडैयार साड़ी' थी। लाल रंग की उस साड़ी पर पीले रंग का बार्डर था जिस पर 'गोपुरम्' बने हुए थे।

"सवि, इन सबकी क्या जरूरत है ?"

"कुछ बोल मत। चुपचाप रख ले।"

"जैसी तेरी इच्छा। सिर्फ मेरे लिए ही लायी है ?"

"यह देख अपने लिए भी लायी हूं।"

उस मोर-पंखी साड़ी पर उसी तरह का चौड़ा बार्डर था। पुनः मुस्कुराकर जैसे उन्होंने विचारों का आदान-प्रदान किया।

दिन तेजी से बीतते गये। आखिर वह दिन भी आया, जिस दिन सौम्या को वापस लौटना था। रेलवे स्टेशन जाने का समय हो रहा था। सारा सामान बांधकर रख दिया गया था।

"सौमी, चलने की तैयारी हो गयी ?" कहते हुए सविता का स्वर भर्रा गया।

"सवि, तू भी स्टेशन चलेगी न ?"

जितनी उत्कंठा से प्रश्न किया गया था, उतनी ही उत्कंठा से उसका उत्तर दिया गया, "अवश्य चलूंगी।"

"कभी भी कहीं के लिए प्रस्थान करने से पहले प्रभु के चरणों में दंडवत् प्रणाम करने की मेरी आदत है।" सौम्या ने कहा।

सविता चुप रही। सौम्या की आंखें सहसा भर आयीं। अपनी बात पूरी करते हुए वह बोली, "यहां तो पूजा-घर ही नहीं है।"

"नहीं है तो क्या हुआ ? मन ही मन प्रभु को याद कर ले। उनके प्रति आस्था हो तो क्या इतना पर्याप्त नहीं है ?'

" 'उनके प्रति आस्था हो तो' इन शब्दों का मतलब क्या है ? क्या तू यह कहना चाहती है कि तेरी आस्था डगमगाती रहती है ?" सहसा सौम्या के चेहरे का रंग बदल गया। वह आगे बोली, "अथवा तेरे शब्दों का अर्थ यह है कि तेरी प्रभु पर

कोई आस्था नहीं है ?"

"मैंने...मैंने इस विषय पर कभी गंभीरता से विचार नहीं किया।" कहते-कहते सविता सहसा बेचैन हो उठी, फिर बोली, "सौमी, इस समय, जबकि तेरे घर लौटने का समय आ गया है, तू व्यर्थ का विवाद क्यों कर रही है ?"

"सवि, यह तू क्या कह रही है ! इतने महत्वपूर्ण विषय पर तूने कभी गंभीरता से विचार नहीं किया और अपनी कोई धारणा नहीं बनायी ?"

"मैं इसे एक महत्वपूर्ण विषय नहीं मानती।"

आश्चर्य से सौम्या की आंखें खुली की खुली रह गयीं। दोनों का बचपन कैसे भक्तिमय वातावरण में बीता था ! मां प्रतिदिन पूजा किया करती थी। शाम होते ही उनसे कहती थी, "जाओ, पूजाघर में तुलसी मंडप पर दिया जला दो।" हर शुक्रवार को बिना नागा अपने साथ मंदिर ले जाती थी। बहुत से श्लोक कंठस्थ कराये थे। सदा यही उपदेश देती थी कि "जीवन में किसी भी प्रकार के कष्ट की स्थिति में हमारा एकमात्र सहारा प्रभु का नाम ही है।" जब वह स्वयं मां के दिखाये मार्ग पर चल रही है, तब इसे क्या हो गया ?

"सवि, तुझे जीवन में ऐसा कौन-सा अनुभव प्राप्त हुआ कि प्रभु पर से तेरी आस्था मिट गयी ?"

"मेरी आस्था मिट गयी है या नहीं, मैं निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकती, लेकिन एक बात पूछती हूं–इसके लिए अनुभवों का हमारा अपना होना कहां जरूरी है ? हमारी आंखें, कान और मन सदा खुले रहते हैं न ? खैर छोड़ो इन बातों को। ऐसा समझ लो कि दुनिया भर की समस्याओं को देखते हुए मुझे यह विषय बहुत महत्वपूर्ण नहीं लगा।"

"तूने कितनी उपेक्षा से यह सब कुछ कह दिया ? किंतु मैं ईश्वर में विश्वास के बिना जीवित नहीं रह सकती।"

दोनों चुपचाप एक-दूसरे को देखती रहीं। उनकी दृष्टियां, उनकी बेचैनी और घबराहट को व्यक्त कर रही थीं। बहिन की बातें सुनकर सौम्या को जो धक्का लगा था, उसका प्रभाव अभी तक मिटा नहीं था। वह उसे ऐसे देख रही थी मानो पूछ रही हो–"यह कौन है ?" कुछ देर बाद दोनों ने एक दूसरे से आंखें फेर लीं।

सविता बेचैन और दुखी-सी खड़ी थी। उसकी समझ में नहीं आया कि वह क्या कहे ! कुछ भी कहना उसे सार्थक नहीं लग रहा था। दोनों एक साथ पली-बढ़ी थीं। एक ही परंपरा और एक ही प्रकार के लालन-पालन से उनके विचार, दृष्टिकोण और मूल्य उद्भूत हुए थे। पर उनके बड़े होने के साथ-साथ उनमें कितना अंतर आ गया है ?

क्या प्रत्येक मानव-जीवन अपने आप में विशिष्ट है ? उसकी निजी विशेषताओं के आधार पर ही क्या जीवन द्वारा जगायी गयी प्रतिध्वनियों का स्वरूप निर्धारित

होता है ? हम एक दूसरे को जानते और समझते हैं, ऐसा कहना अंततः कितनी बड़ी मूर्खता है ? कितने ही निकट के रिश्तेदार क्यों न हों, हर बार, हर एक को एक नया व्यक्ति समझकर उसका परिचय प्राप्त करना पड़ता है। समय का परिवर्तन केवल बालों के सफेद होने तक ही सीमित नहीं है।

प्रेम...जीवन का मूल सूत्र है, प्राणों का स्पंदन है। उसका अस्तित्व इसीलिए बना हुआ है कि वैषम्य के कारण सर्वनाश न हो जाय।

हेराल्ड रॉबिन्स क्षमा करें। हम जीवन भर अजनबी लोगों से ही प्रेम करते रहते हैं।

"देर हो रही है। इसी तरह बातें ही करती रहोगी ? स्टेशन नहीं जाना ! बाहर टैक्सी तैयार खड़ी है।" कहते हुए सविता के पति अंदर आये और उनकी तरफ देखकर हंसते हुए बोले, "क्रमशः कहकर अपनी बातों को यहीं समाप्त कर दो। अगली बार भेंट होने पर फिर यहीं से अपनी बातें शुरू कर देना।"

"अभी आते हैं। आओ सौमी, चलें।" यह कहकर सविता ने अपनी छोटी बहिन का हाथ पकड़ लिया। दोनों बहिनें दरवाजे की ओर बढ़ गयीं। उनके हाथों की पकड़ ढीली नहीं हुई, किंतु उन्होंने एक दूसरे की तरफ बिल्कुल नहीं देखा।

दिन के रिश्ते

जयंतन

सुबह के नौ बजे थे। दरवाजे पर ताला लगाकर वे दोनों गली में आ खड़े हुए। उसी क्षण उन दोनों ने परस्पर जो समझौता किया था, वे उससे बंध गये। यह रोज की बात थी।

युवक टेरिकॉट का पैंट, टेरिलीन की शर्ट और धूप का चश्मा पहने था। उसकी चाल में फुर्ती थी। युवती बूली-वूली साड़ी और उससे मैच करता फुल वायल का ब्लाउज पहने थी। उसके पैरों में चप्पल थी और हाथ में हैंडबैग। उस जोड़ी को इस तरह जाते हुए लोग प्रतिदिन बड़े कौतूहल से देखा करते थे। पिछले तीन वर्षों से वे लोग इसी तरह वहां से चलकर वहीं लौट आते रहे हैं, किंतु आज भी वे कुछ लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहते। कुछ लोगों को उनसे, विशेषकर युवती से, ईर्ष्या भी थी, क्योंकि वह इसी शहर की रहनेवाली थी। कुछ लोग कहते, "जब यह छोटी थी तो बहती हुई नाक, हाथों-पैरों में खुजली—इसकी दशा देखी नहीं जाती थी।" दूसरे लोग कहते, "बेचारी ! इसकी मां ! खेतों में निराई का काम करके उसने पालन-पोषण किया है।"

वे दोनों सरकारी कर्मचारी थे। वहां से पांच मील की दूरी पर स्थित मुत्तपुट्टि की पंचायत समिति में नौकरी करते थे। युवक कैशियर था और युवती टाइपिस्ट। यहां मकान की सुविधा थी, अतः यहां रहते हुए वे प्रतिदिन बस से दफ्तर जाते थे।

गली में चलते हुए उन दोनों के सामने पड़ जाने पर कुछ लोग मुस्कुरा देते। कुछ लोग पूछते, "दफ्तर जाने की तैयारी हो गयी ?" वह बड़े रौब से सिर हिला देता। उसमें जरूरत से ज्यादा अहंकार था। लोगों के प्रश्न पर रौब से सिर हिलाकर मानो वह यह जताना चाहता था कि मैं बड़ा आदमी हूं, इसी से आप जैसे छोटे लोग मुझसे यह प्रश्न कर रहे हैं। युवती से यदि कोई वही प्रश्न करता तो वह उत्तर में केवल हंस देती। उसकी हंसी बड़ी सुंदर लगती थी। प्रायः युवती की हंसी देखकर युवक जल-भुन जाया करता। मन ही मन कहता, "ऐरे-गैरों के सामने दांत दिखाते हुए तुझे शर्म नहीं आती..।"

वे लोग ईसाई थे। युवती पहले से ही ईसाई थी। युवक बाद में ईसाई बना था। हां ! युवती से विवाह करने के लिए ही वह ईसाई बना था।

वे लोग नौ-दस के लगभग बस-स्टॉप पर आ गये थे। बस नौ-बीस पर आती थी। बस-स्टॉप पर बहुत भीड़ थी। भीड़ को देखकर सभी घबरा रहे थे कि जाने बस मिलेगी भी या नहीं। वहां खड़े लोग बस-स्टॉप पर अचानक इतनी भीड़ का अलग-अलग कारण बता रहे थे।

युवक ने फुसफुसाते स्वर में उन सभी लोगों को गाली दी, जो किसी विवाह अथवा किसी उत्सव या पर्व का बहाना बनाकर एकत्रित होते हैं।

युवती कुछ खरीदने के लिए पान-बीड़ी की दुकान की ओर चली गयी। तभी युवक के पास आये बालगुरुवा रेड्डियार ने पूछा, "आज तुम्हारी घरवाली नहीं आयी ?" यह गांव की रीति थी। किसी से नमस्ते आदि न कहकर वे लोग इसी तरह का कोई प्रश्न अचानक पूछ लेते थे। उसने हमेशा की तरह बड़े रौब और गंभीरता से कहा, "वे आयी हैं।" बाहर वालों के सामने पत्नी की चर्चा करते समय वह आदरसूचक सर्वनाम 'वे' का ही प्रयोग करता था। पत्नी उसकी चर्चा 'मेरे साहब' कहकर करती थी।

नौ-बीस की बस नौ-चालीस पर आयी। दूर से ही पता लग गया कि बस भरी हुई है, लोग आगे-पीछे के दरवाजों पर भी लटके हुए हैं। अब तक इधर-उधर खड़े सभी लोग एक जगह जमा हो गये और बेचैन से होकर हिसाब लगाने लगे कि बस किस जगह आकर खड़ी होगी। बस के रुकते ही सभी एक-दूसरे को धक्का देकर बस पर चढ़ने की कोशिश करने लगे, किंतु कंडक्टर का कठोर आदेश पाते ही कि "कोई नहीं चढ़ेगा," सब पीछे हट गये।

वे दोनों भी भागते हुए बस के पास आये थे। वह बस की सीढ़ियों पर बायीं ओर लगे डंडे को पकड़े खड़े बालगुरुवा रेड्डियार के पीछे बस से सटी खड़ी थी। वह भी पहले आगे खड़ा था, किंतु लोगों द्वारा धक्का दिये जाने पर धीरे-धीरे पीछे हटते हुए अब सबसे पीछे पहुंच गया था।

बस-स्टॉप पर भीड़ के पीछे तनिक हटकर खड़े हुए पार्थसारथी नामक युवक ने ऊंची आवाज में कहा, "कंडक्टर, साहब को ऑफिस तक के दो टिकट दे दो।" और युवती को देखने लगा। वह धीरे से मुस्करा दी। इसे देख उसके पति को गुस्सा आ गया। पार्थसारथी वहां यों ही खड़ा था। यदि उसे बस पकड़नी होती तो वह इस भीड़ में सबसे आगे बस का डंडा पकड़े खड़ा होता। तब उसे न किसी साहब की याद आती और न किसी मेमसाहब की।

बस में से चार-पांच लोग उतरे। उनके उतरते ही कंडक्टर ने अपना बायां पैर फैलाकर चढ़नेवालों का रास्ता रोका और बोला, "बस में जगह नहीं है।" फिर पीछे मुड़कर शीशे में से झांकते हुए उसने पूछा, "उतर गये क्या ?" उस समय एक आदमी

बस के ऊपर अपना सामान रखकर सीढ़ियों से उतर रहा था।

अपने ऊपर कंडक्टर की नजर पड़ते ही युवती ने मुस्कुराते हुए अपना हाथ ऊंचा किया और उसे दो उंगलियां दिखायी थीं। उसका इशारा न समझ कर कंडक्टर ने हंसते हुए कहा, "जी नहीं, मैं उगते सूरजवाली पार्टी का हूं।" चुनाव में दो-तीन दिन ही बाकी थे। अतः लोग युवती की दो उंगलियों के इशारे का अर्थ समझकर हंस पड़े। युवती की मुस्कुराहट हंसी में बदल गयी। कंडक्टर ने पुनः उसकी ओर देखा। जब बस के पीछे लगी सीढ़ियों से उतरने वाला आदमी आगे आकर बस में चढ़ गया, तब कंडक्टर ने युवती की ओर देखकर कहा, "आप दोनों आ जाइए।"

बस के चलते ही कंडक्टर के सामने सबको जगह दिलवाने की समस्या खड़ी हो गयी। उसने इधर का उधर, उधर का इधर करके किसी तरह युवती को एक सीट दिलवा दी। अंत में, जिस सीट पर वह बैठी थी, उसमें एक व्यक्ति के बैठने लायक जगह बन गयी। खड़े हुए लोगों में कोई युवती नहीं थी। एक व्यक्ति ने सुझाव दिया, "साहब को वहां बैठने दो।" उसकी बात सुनकर पीछे खड़ा वह युवक आगे आया और अपनी पत्नी के पास बैठ गया। प्रायः लोगों में पति-पत्नी की तुलना करने की आदत होती है। इसी से बस में यात्रा करते कुछ लोगों ने उन दोनों को ध्यान से देखा। युवक ने लोगों के विचारों को भांप लिया था, अतः वह काफी सिकुड़कर बैठ गया और बस के शीशे से बाहर सड़क की ओर देखने लगा।

जिस समय उन दोनों ने दफ्तर के अहाते में प्रवेश किया, उस समय कुछ कर्मचारी बरामदे में खड़े बातें कर रहे थे। उन्हें देखते ही उन लोगों ने आपस में कुछ कहा और हंसने लगे। वे लोग उन्हें देखकर ही हंसे थे। उसने सीढ़ियां चढ़ते हुए उन लोगों से पूछा, "क्यों, क्या बात है ?" अटेंडर कृष्णन ने हंसते हुए कहा, "साहब, इस समय हमारे मन में एक संदेह है कि मेमसाहब इस समय हमारे दफ्तर की टाइपिस्ट हैं या मिसेज कैशियर।" उसकी बात सुनकर वे दोनों हंस पड़े। डिपो के क्लर्क जगन्नाथन ने कहा, "इसका उत्तर मैं देता हूं। जब वे टाइपराइटर के सामने बैठी होंगी, जब टाइपिस्ट कहलायेंगी और जब वहां से उठ जायेंगी, तब मिसेज कैशियर।"

इस्टैब्लिशमेंट से संबंधित महालिंगम् एकाएक बोल उठे, "उस समय यदि ये कैश-सेक्शन में हों, तो वे मिसेज कैशियर कहलायेंगी, अन्यथा मिसेज राजमाणिक्कम्।" उसकी बात सुनकर सभी लोग हंसने लगे। इसके बाद वे लोग इस चर्चा में जुट गये कि जब किसी महिला की चर्चा करते समय उसके पति का नाम लेकर मिसेज...अमुक कहा जाता है तो किसी पुरुष की चर्चा करते समय उसकी पत्नी का नाम लेकर उसे मिस्टर अमुक क्यों नहीं कहा जाता ?

पुरुष को स्वयंभू मानकर केवल उसके नाम के साथ मिस्टर लगाकर उसे पुकारना कहां तक उचित है। इनको हम मिस्टर बिलोमिना कहकर क्यों नहीं पुकार सकते ? वे लोग हंसते हुए अंदर चले गये। उनके साथ वे दोनों भी हंसे। युवक

की हंसी मानो कह रही थी, "आप लोगों के पास शायद और कोई काम नहीं है।" युवती हंसकर मानो कह रही थी, "मैं आप लोगों की तरह कुछ नहीं कह सकती और मुझे कुछ कहना भी नहीं चाहिए।"

जब वे दोनों मैनेजर की मेज के पास जाकर रजिस्टर में अपनी हाजिरी लगा रहे थे, उसी समय मैनेजर साहब वहां आ पहुंचे। इसके बाद युवती अपनी मेज के सामने जा बैठी और युवक अपने कमरे में चला गया।

टाइपराइटर के सामने बैठे हुए उसने लगभग पंद्रह मिनट तक कोई काम ठीक तरह से शुरू नहीं किया। यों ही कुछ न कुछ करते हुए समय गंवा दिया। कुछ देर बाद उसने बेमन से कुछ कागज कार्बन सहित टाइपराइटर पर चढ़ा दिये।

उसके सामने दो मेजों के परे हाल के एक कोने में बैठे डिसपैच क्लर्क कृष्णन ने दो-एक बार उसकी ओर देखा। उसके मन में संदेह उठा कि क्या यह वही बिलोमिना है जो पांच साल पहले इस कार्यालय में काम करती थी। कुछ देर पहले बरामदे में खड़े अपने मित्रों के साथ बातचीत करते हुए बिलोमिला को अपने पति के पीछे खड़े होकर चुपचाप हंसकर आगे बढ़ते देख यही विचार उसके मन में आये थे। उसे पूरा निश्चय हो गया कि यह वह बिलोमिना नहीं है, जिसे उसने तीन साल पहले देखा था। अगर वही होती तो वह भी उनके साथ मिलकर कोई मजाक करती और खिल-खिलाकर हंसती। उन दिनों उसके चेहरे का सौंदर्य देखते ही बनता था। एक बार इसी टाइपराइटर के सामने बैठे हुए उसने जो मजाक किया था, उसकी याद उसके मन में अब भी ताजा है।

उन दिनों राजमाणिक्कम् इस कार्यालय में नौकरी नहीं करता था। वह चायक्काडु की पंचायत समिति में था।

उसका यहां तबादला होने पर ही दोनों एक-दूसरे की ओर आकृष्ट हुए और बाद में विवाह के बंधन में बंध गये। उसके यहां आने से पहले कार्यालय के सोशल वेल्फेयर वर्कर सामी सुब्रमणियम् ही अपने काम के साथ इस काम को भी करते आ रहे थे। उन्होंने युवती के लिए एक वर ढूंढ़ा था। वह मदुरै के जीवन बीमा निगम कार्यालय में नौकरी करता था। विवाह-संबंधी बातचीत के आरंभ होने पर यह तय हुआ कि लड़का लड़की को देखने के लिए इस कार्यालय में आयगा। किंतु, उस बार ही नहीं, उसके बाद भी एक बार वह अपने कहे अनुसार वहां नहीं आ सका था। एक दिन जब कार्यालय कर्मचारियों से खचाखच भरा हुआ था, युवती ने चिल्लाकर सामी सुब्रमणियम् से पूछा, "श्रीमान ! आपके वर महोदय कैसे हैं ? वे यहां कब आयेंगे ?"

अगली बार उसने उनसे कहा, "श्रीमान ! आप जरा उनसे यह पूछकर आइए कि वे लड़की देखने आयेंगे या मुझे लड़का देखने जाना पड़ेगा।" उसकी यह बात सुनकर कार्यालय के सभी कर्मचारी ठठाकर हंस पड़े थे। अपनी बात पूरी कर वह

भी उन सबके साथ मिलकर जोर से हंस पड़ी थी।

दो मेटरनिटी असिस्टेंट किसी को खोजती हुई मैनेजर की मेज तक आकर लौट गयीं। टाइप करने में लीन बिलोमिना का ध्यान उनकी ओर नहीं गया। कृष्णन ने उन्हें देख लिया। उनमें एक थी पोवूरमंगलम्। अचानक उसे लगभग तीन महीने पहले इस्टैब्लिशमेंट-विभाग के हॉल में उसके और बिलोमिना के बीच हुए झगड़े की, और राजमाणिक्कम् के शामिल हो जाने के कारण, उस झगड़े के भयंकर रूप धारण करने की बात याद आयी।

एक दिन बिलोमिनावाले हाल में पीने का पानी खत्म हो जाने के कारण वह इस्टैब्लिशमेंट-विभाग के हाल में चली गयी। वहां हमेशा लगभग दस लोग बैठे रहते थे। हाल में बड़ी-बड़ी अलमारियां आड़ी-तिरछी खड़ी की गयी थीं, अतः यह संभव था कि एक व्यक्ति वहां बैठा हो और दूसरा उसे न देख पाये। जिस समय बिलोमिना हाल में पहुंची उस समय चार-पांच मैटरनिटी-असिस्टेंट एक कोने में खड़ी बात कर रही थीं। उनमें पोवूरमंगलम् भी थी। उन्हें बिलोमिना के वहां आने की खबर नहीं हुई। उन्हें कोई यात्रा भत्ता नकद दिया जा रहा था। वे लोग उसे लेने ही वहां आयी थीं।

राजमाणिक्कम् आमतौर पर किसी भी व्यक्ति का सम्मान नहीं करता था। कैशियर की सीट पर बैठ जाने पर कमिश्नर को भी कुछ नहीं समझता था। उसका काम मामूली कहां है, सबको रुपये देता है न ? ऐसे में वह मामूली मैटरनिटी-असिस्टेंटों की परवाह नहीं करता ? जब उन लोगों ने पैसे मांगे तो उसने 'बाद में आना' कहकर उन्हें टाल दिया। कुछ देर बाद एक और मैटरनिटी असिस्टेंट वहां आ पहुंची। उसने उन लोगों से पूछा, "क्या आप लोगों ने पैसे ले लिये ?" इस पर पोवूरमंगलम् बोली, "वह नालायक इतनी जल्दी कहां देगा ? अपने बाप का पैसा भला इतनी आसानी से कैसे बांट दे ?" इस पर सबकी-सब हंस पड़ीं।

उसकी बात सुनकर बिलोमिना क्रोध से तमतमायी उन लोगों के पास गयी और मंगलम् से बोली, "जबान संभाल कर बात कर। तू जब चाहे तभी तुझे पैसे कैसे दे दें। क्या वे तेरे नौकर हैं ?" बिलोमिना को वहां देखकर वे सब दंग रह गयीं। किंतु मंगलम् इतनी आसानी से किसी बात को छोड़नेवाली नहीं थी। उसे लोगों ने 'पोवूर की लड़की' नाम दे रखा था। लड़ाई-झगड़े उसे दालसेव, मिक्सचर आदि की तरह अच्छे लगते थे। वह किसी भी बात को इतनी आसानी से छोड़ती न थी। उसने उद्दंडता से कहा, "अभी उनका कुछ नहीं बिगड़ा है। जब हम सामने नहीं होतीं, तो वे भी 'इसको बुला', 'उसको बुला' कहते रहते हैं।"

इसके बाद दोनों में बड़े जोर-शोर से वाक्युद्ध होने लगा। जब राजमाणिक्कम् को इसकी खबर मिली, तो वह तेजी से वहां आया। आते ही बिना कोई पूछताछ किये वह गरजा, "जमीन पर पटक कर रौंद दूंगा, तो तेरी लड़ाकी की उपाधि भी

फुर्र हो जायगी।" उसकी बात सुनकर बाकी सभी डर गयीं कि अब न जाने क्या होगा, किंतु मंगलम् ने उसका विरोध करते हुए कहा, "अरे, जरा रौंद कर तो दिखा।" और उसके सामने आ खड़ी हुई।

कुछ औरतों के लिए यही तुरुप का पत्ता था। वे सोचती थीं कि किसी पुरुष को 'अरे' कहने के साथ-साथ यदि यह कह दिया जाय, 'जरा मार कर तो देख' तो उनका पूरी तरह से अपमान हो गया। वे जानती थीं कि कोई भी पुरुष उन पर हाथ नहीं उठायेगा, क्योंकि ऐसा करने पर उसे सबसे यही सुनने को मिलेगा, कि तुमने औरत पर हाथ उठाकर अच्छा नहीं किया। आमतौर पर ऐसी परिस्थिति में सभी पुरुष सहमकर चुप रह जाते हैं। उनकी इच्छा तो होती है कि वे किसी का खून पी जायें, किंतु कुछ कर नहीं पाते।

मंगलम् की बात सुनकर क्षणभर के लिए राजमाणिक्कम् की भी यही स्थिति रही। किंतु अगले ही क्षण उसने अपने आप को संभाल लिया। उसने सोचा कि इसको बिना मारे छोड़ने पर होनेवाला अपमान कुछ कम नहीं है। अतः उसने, "बोल, मेरा क्या कर लेगी ?" कहते हुए सामने आकर उसके गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया।

मंगलम् इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। मार खाने के बाद क्षण-भर के लिए वह जड़-सी खड़ी रही। इसके बाद उसने उसकी और कार्यालय की परवाह न करते हुए, उसे पीटना शुरू कर दिया। "तूने मुझे मारा ? मैं अपने भाइयों से तेरे हाथ तुड़वा दूंगी। पुलिसवालों से कहकर तेरे पैर तुड़वा दूंगी।" ऐसा कहने के साथ-साथ उसने उसे कई अपशब्द कहे, तरह-तरह की गालियां दीं।

उसे चुप कराने के लिए उसने फिर से उसे पीटने की कोशिश की, किंतु दूसरे लोगों ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। झगड़े की खबर कमिश्नर तक पहुंच गयी। अपने कार्यालय की इज्जत का ध्यान रखते हुए, उन्होंने मंगलम से आग्रह किया कि वह इसकी खबर पुलिस को न दे। उनके कमरे में ही दोनों ने एक-दूसरे से माफी मांगी और झगड़ा समाप्त हो गया।

इस घटना के दौरान बिलोमिना के चेहरे पर जो कठोरता की भावना उभर आयी थी, उसकी याद करते हुए कृष्णन ने न जाने क्यों, उसके उस समय के और इस समय के चेहरे की तुलना करने के विचार से मुंह उठाकर उसकी ओर देखा। तभी अचानक बिलोमिना ने भी उनकी ओर देखा और पूछने लगी, "क्यों श्रीमान्, क्या देख रहे हैं ?" "कुछ नहीं" कहकर वह अपने काम में लग गया।

दोपहर के तीन बजे थे। कार्यालय में बड़ी हलचल थी। सभी धीरे-धीरे चेयरमैन साहब के कमरे के सामने एकत्रित होने लगे थे। बिलोमिना अपने टाइपराइटर के सामने बैठी सिसक रही थी। राजमाणिक्कम् चेयरमैन साहब के कमरे में खड़ा चिल्ला रहा था। चेयरमैन साहब धीमी आवाज में उत्तर दे रहे थे। अतः बाहर खड़े लोगों की समझ में नहीं आया कि मामला क्या है। साथ ही चेयरमैन साहब का क्लर्क

वेदनायकम् कमरे के बाहर खड़ा हो, "यहां भीड़ मत लगाइए, यहां भीड़ मत लगाइए" कहकर सभी को दूर भगा रहा था।

एक मोड़ पर आकर राजमाणिक्कम् ने चिल्लाकर कहा, "आपको यह भी सोचना चाहिए था कि वह मेरी पत्नी है।" इस पर उन्होंने उत्तर दिया, "इसीलिए तो मैंने उसे छोड़ दिया, वरना उसने जो कुछ कहा, उसके हिसाब से तो मैं उसे न जाने क्या-क्या दंड देता।" उनकी इस बात को बाहर खड़े लोगों ने भी सुन लिया। इसके बाद लोगों ने दोनों की "अच्छा मैं देख लूंगा," "हां, देख लेना"–जैसी चेतावनियां सुनीं।

चेयरमैन साहब के कमरे से निकले राजमाणिक्कम् का चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था। "तीन वोट पाकर सोचते हैं कि मैं जो चाहे कर सकता हूं। मेरे यहां इनकी दाल नहीं गल सकती।" इस तरह बुड़बुड़ाते हुए वह अपने कमरे में चला गया। थोड़ी देर बाद चैयरमैन साहब ने मैनेजर को अपने कमरे में बुलवाया।

छह बजे के लगभग दोनों बस-स्टॉप पर आ गये। वे लोग परदेश से लौटे कमिश्नर साहब के घर जाकर, उन्हें सारी बातें बताकर आये थे।

सुबह जो यात्री खड़े-खड़े या लोगों का धक्का सहते हुए आये थे, मानो उनकी क्षतिपूर्ति करने के लिए इस समय बस खाली पड़ी थी। उसमें कुल मिलाकर चार-पांच यात्री थे। वे दोनों उस बस पर चढ़कर एक सीट पर बैठ गये। गांव पहुंचते ही दोनों साथ-साथ चलकर घर तक गये। ताला खोला!

ताला खोलते ही दोनों उस समझौते के बंधन से मुक्त हो गये, जो उन्होंने सुबह किया था। उसने अंदर जाकर कमीज उतारी, मुंह-हाथ धोया, शरीर पर ढेर-सारा पाउडर छिड़का और दरवाजे के पास आकर कमर पर हाथ रखे, इस तरह खड़ा हो गया, मानो किसी आगंतुक को पीटने के लिए तैयार खड़ा हो। कुछ देर बाद वह भीतर-बाहर चहलकदमी करने लगा।

वह सीधे अंदर गयी। कपड़े बदले बिना आराम-कुर्सी पर लेटकर उसने आंखें मूंद लीं। दोनों काफी देर तक कुछ नहीं बोले। वे दोनों एक ऐसे व्यक्ति से लड़-झगड़कर आये थे, जो समान रूप से उन दोनों का शत्रु था, फिर भी उनके बीच वह लगाव नहीं दिखायी दिया, जो कि आमतौर पर ऐसी परिस्थितियों में दिखायी देता है।

आधे घंटे के बाद दूधवाली दूध दे गयी। पंद्रह मिनट तक दूध का बर्तन उसी जगह पड़ा रहा।

अंत में वह अंदर आया और दूसरी तरफ मुंह फेरकर बोला, "खाना नहीं बनाया ?" उसने धीरे से आंखें खोले बिना उत्तर दिया, "बनाऊंगी।" उसने घड़ी की ओर देखते हुए कहा, "कब बनाओगी ? कब हम खायेंगे ?"

उसने पहले की तरह ही शांत भाव से उत्तर दिया, "क्या करूं ? मेरे हाथ-पांव क्या लोहे के बने हुए हैं ?" उसकी भवें तन गयीं। वह पूर्ववत् अंदर-बाहर चहलकदमी

करता रहा।

लगभग दस मिनट बीत ज़ाने के बाद वह उठकर रसोईघर में गयी, स्टोव जलाया। थोड़ी देर के बाद फूंक मार कर आग तेज की और उस पर दूध का बर्तन रख दिया। दूध के उबलने पर उसे उतार कर स्टोव पर पानी का पतीला रख दिया और चावल साफ करने लगी। इतने में युवक वहां आकर खड़ा हो गया था। उसे आशा थी कि वह उसे कॉफी बनाकर देगी, लेकिन वह चावल साफ करते हुए बोली, "दूध उबाल दिया है, उसमें ब्रू कॉफी मिलाकर पी लीजिए।" वह गुस्से से मुंह फुलाये एक गिलास में दूध डालकर उधर-उधर देखने लगा कि चीनी और ब्रू कॉफी के डिब्बे कहां रखे हैं।

पतीले में चावल डालकर वह एक गिलास दूध लेकर दरवाजे के पास आयी और सीढ़ियां उतरने लगी। उसके पीछे खड़े होकर वह उसे इस तरह घूरने लगा, मानो आंखों से ही उसे बेध डालेगा।

वह जानता था कि वह उसे रोक नहीं सकता। एकाध बार जब उसने उसे रोकने का प्रयत्न किया तो परिणाम यह हुआ कि उनके द्वार पर भीड़ जमा हो गयी।

उस गली में तीन मकान छोड़कर चौथे मकान में उसकी बड़ी बहिन रहती है। वह रोगी है। हाल ही में वह एक महीने तक अस्पताल में पड़ी रही थी। उसका पति होटल में खाना खा लेता है, किंतु उसे रात को दूध उबालकर देने की जिम्मेदारी इस साली पर थी।

एक बार उसने चिल्लाकर कहा, "दूध किसी लड़के के हाथ क्यों नहीं भिजवा देती ?" इस पर उसने भी चिल्लाकर उत्तर दिया, "मैं जाकर दीदी से भी मिल आऊंगी। उसका हाल-चाल पूछ लूंगी।"

वह पंद्रह मिनट में दीदी के घर से लौट आयी। तब तक वह पतीले में उबलते चावल की तरह भीतर-ही-भीतर उबलता रहा। जैसे ही वह रसोईघर के अंदर जाने लगी, उसने व्यंग्य से पूछा, "अपने नकली पति से लाड़ करके लौट आयी ?"

उसने रुककर पीछे मुड़कर देखा। एक क्षण बाद अपना गुस्सा दबाते हुए, उसे उसकी जाति के नाम से संबोधित करती हुई बोली, "हां रे... ।" उसने हाल ही से ऐसा कहना शुरू किया है। वह जान गयी थी कि उसे उसकी जाति का नाम लेकर संबोधित करना पीटने के बराबर है।

वह न तो जातिवाद में अविश्वास करने वालों में से था और न ही सिर उठाकर यह घोषणा करनेवालों में से एक कि मेरी जाति किसी से कम नहीं है। वह सोचता था कि किसी तरह अपनी वास्तविकता छिपी रहे, यही काफी है। इसी से उसने निम्न वर्ग के सूचक 'आंडी' नाम को छोड़कर अपना नाम केवल राजमाणिक्कम् रख लिया था। बाद में पत्नी के लिए उसे अपना धर्म बदलना पड़ा। उस समय उसे सबसे बड़ी खुशी इस बात से हुई कि उसको अपनी जाति संबंधी समस्या का एक शाश्वत

समाधान मिल गया है। निम्न वर्ग का होते हुए भी गोरा-चिट्टा होना उसके लिए गर्व की भी बात थी और दुख की भी। यदि कोई उसकी पुरानी जाति की ओर संकेत कर देता अथवा वह अपने किसी रिश्तेदार से मिलता तो क्रोध से जल-भुन उठता था। पिछले सप्ताह जब कार्यालय में झगड़ा हुआ था तो अचानक उसके मन में यह विचार आया कि "यदि मैं इसे इसकी जाति के नाम से पुकारूं या गाली दूं, तो कैसा रहेगा ?" बाद में ऐसा करने पर उसे अपनी इच्छानुसार सफलता भी मिली।

वह उछलकर उसके पास आया और अपने दायें हाथ से उसके बालों को कस कर पकड़ते हुए बोला, "हां, मैं ...आंडी...जाति का हूं। तूने मुझसे शादी क्यों की ?"

"अब छोड़ दे मुझे।"

उसने बालों को बायें हाथ से पकड़कर दायें से उसके गाल पर एक थप्पड़ जमा दिया और पूछा, "फिर कहेगी ?" इतनी जोर की मार खाकर भी, कि चेहरे से खून निकल आये, उसने सिर उठाकर उसकी ओर देखा। उस समय उसका चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था। अब उसने उसकी मनःस्थिति को भांप लिया। वह जान गयी कि उसका वार भी साधारण कोटि का नहीं था। उसने पुनः अपने अस्त्र का प्रयोग किया। शब्दों पर जोर देते हुए वह बोली, "अरे ओ आंडी के बच्चे !"

उसने गुस्से से उसका सिर झुकाकर उसकी पीठ पर वार किया।

"फिर कहेगी ?"

"आंडी के बच्चे !"

उसने फिर घूसा मारा।

"आंडी के बच्चे !"

उसने उसके बाल पकड़कर खींचते हुए उसे इधर-उधर घुमाया। बार-बार उसे पीटा। घूंसा मारा। वह हर बार पिटकर उन्हीं शब्दों को दोहराती रही। हाथों का और वाणी का यह युद्ध कुछ समय तक चलता रहा। उसकी चेष्टाओं से लगा कि उसने मन ही मन यह ठान लिया है कि चाहे जो हो, वह इस युद्ध में जीतकर ही रहेगी। वह जितनी जोर से पीटता, वह उतने ही ऊंचे स्वर में चिल्लाती। अंत में वह घबरा गया। उसने सोचा, इसे पीटने से कोई लाभ नहीं। यह यहां व्यर्थ ही भीड़ जमा कर लेगी। उसे डर लगा कि वह लोगों को जमा करके उन्हें सारी बातें बता देगी। अतः उसने रणभूमि से वापस लौटने का निश्चय किया और उसे एक कोने में धकेल कर वहीं खड़ा-खड़ा उसे घूरता रहा। वह लड़खड़ाते कदमों से कुछ दूर जाकर धड़ाम से गिर पड़ी। कुछ देर बाद जैसे-तैसे वह उठकर बैठ गयी और सिर उठाकर कहने लगी, "अरे ओ आंडी के बच्चे !" उसकी इच्छा हुई कि वह उसे रौंद डाले। अचानक उसे याद आया कि किसी ने उससे कहा था कि ऐसा करने से कोई

लाभ नहीं। अतः उसने अपने गुस्से को पी लिया। "दो दिन में ही तुझे ठीक कर दूंगा।" कहकर वह अपनी कुर्सी की ओर बढ़ा और बहुत देर तक उसी पर बैठा रहा।

थोड़ी देर बाद वह वहीं जमीन पर लेट गयी। उसके सारे शरीर में जलन-सी हो रही थी। किंतु वह अकेली ही नहीं पिटी है यह विचार मानो उसके घावों पर मरहम लगा रहा था। लड़ाई-झगड़े के बीच उसकी आंखों से जो आंसू नहीं निकले थे, वे अब धरती पर एकत्रित होने लगे।

उनके घर में मच्छर बहुत ज्यादा थे। जब वे दोनों घटनाओं की याद में खो गये तो मच्छर उनके शरीर का खून चूसने लगे। थोड़ी देर के बाद वह उठकर रसोईघर में गया। उस समय तक स्टोव बुझ चुका था और चावल के उबलने की भी कोई आवाज नहीं आ रही थी। उसने एक गिलास पानी पिया, आकर पलंग पर अपना बिस्तर बिछाया और मच्छरदानी लगाकर सो गया।

अब सारे मच्छर युवती की ओर बढ़ गये। थोड़ी देर बाद वह भी उठी और सोने के कमरे की ओर चल दी। बिस्तर बिछाकर मच्छरदानी लगाकर वह भी लेट गयी।

देर तक, बहुत देर तक उसे नींद नहीं आयी। इस समय एक या डेढ़ बज रहा होगा–यह सोचकर भी उसे नींद नहीं आयी। उस दिन की घटनाओं की स्मृति के क्षीण होने तथा मन में दूसरे प्रकार के विचारों के उदित होने पर भी वह सो न सकी। शाम को चेयरमैन साहब ने उससे जो कुछ पूछा था और उसके बाद वहां जो कुछ घटित हुआ था, उसे उन सब बातों की याद आयी। अगले दिन उसे जो काम करने थे, उनकी याद आयी। पिछले साल अपने गर्भ के गिर जाने की याद आयी, किंतु नींद ने आने का नाम न लिया। पति की मार खाकर वह इतनी दुखी नहीं हुई, जितनी इस समय नींद न आने के कारण हो रही थी। अनेक बातों के बीच उसे पति से अपने शारीरिक संबंध की भी याद आयी। उसे अपने पर बड़ा क्रोध आया। मन ही मन उसने सोचा, अब वह उस व्यक्ति के साथ किसी तरह का शारीरिक संबंध नहीं रखेगी। उसने संकल्प किया कि मरते दम तक वह उसके पास तक नहीं फटकेगी। अचानक उसे याद आया कि इससे पहले उसके द्वारा लिये गये इस तरह के संकल्प अनेक बार छिन्न-भिन्न हो चुके हैं। परस्पर एक-दूसरे के प्रति द्वेष और क्रोध की भावना रखते हुए, राख से ढके अंगारे के समान बाहर से शांत, किंतु भीतर ही भीतर क्रोध से जलते हुए भी, उन्होंने संभोग किया था। इसमें आश्चर्य की बात यह थी कि उन परिस्थितियों में भी वे प्रगाढ़ आलिंगन, चुंबन आदि में उसी प्रकार लीन हो जाते थे, जैसा कि किसी जमाने में रात के समय पति-पत्नी के समान रहते हुए लीन होते थे। उसने एकाध बार इस विषय पर विचार भी किया था। इस समय भी वह यही सोच रही थी कि यह सब कैसे संभव हो जाता है। किंतु तभी उसे

अपने इस प्रश्न का उत्तर-सा मिल गया, तनिक स्पष्ट और तनिक अस्पष्ट रूप में।

उस समय राजमाणिक्कम् ओर बिलोमिना ने परस्पर एक-दूसरे को जो कुछ दिया एक-दूसरे से जो कुछ लिया, वह उन दो व्यक्तियों के बीच का ही आदान-प्रदान नहीं था। उसे उन घटनाओं का प्रतिरूप माना जा सकता है, जबकि किसी भी पुरुष और स्त्री की शारीरिक इच्छाएं अभिव्यक्ति के लिए छटपटाती हैं और किसी पुरुष और स्त्री-विशेष के माध्यम से किसी क्रिया के रूप में प्रकट हो जाती हैं।

अंततः वह चुपचाप सो गयी। मच्छरदानी को कितनी ही चतुराई से क्यों न बांधा जाय, सुबह तक उसमें दो मच्छर अवश्य प्रवेश कर जाते हैं। अब तक इधर से उधर, उधर से इधर उड़ते रहने के बाद, उसके सोते ही वे उसके शरीर पर जाकर चैन से बैठ गये।

अब वे उसका थोड़ा खून पियेंगे। खून पीने के बाद ही उन्हें मालूम होगा कि उनके बाहर जाने का कोई रास्ता नहीं है। वे इधर-उधर उड़ते हुए बार-बार मच्छरदानी से टकरायेंगे। अंत में मच्छरदानी के ऊपरी सिरे पर जाकर उसे काटने का यत्न करेंगे और उस प्रतीक्षा में वहीं बैठे रहेंगे कि कब सुबह होगी, मच्छरदानी खोली जायेगी और उन्हें मुक्ति मिलेगी।

पांच शिशु और समय

अशोकमित्रन

वही हुआ जो उसने सोचा था। अभी प्लेटफार्म पर सौ कदम की कष्टदायी दूरी पार करना बाकी था कि गाड़ी खिसकने लगी।

"रोको ! रोको !" कहते हुए वह आगे की ओर दौड़ा। हाथ में जो सूटकेस पकड़ा हुआ था उसने उसे ज्यादा परेशान नहीं किया, किंतु कंधे पर लटकता कैनवास का थैला बड़ी तेजी से झूलते हुए उसकी नाक में दम कर रहा था। उस थैले के एक कोने में उसने अल्मूनियम का एक गिलास अटका रखा था। वह बार-बार उसकी पसलियों से टकरा रहा था। थैला थैले के आकार में नहीं था, गठरी की तरह फूला हुआ था। इसी से वह अपनी एक बांह नीचे नहीं लटका सका। बांह को पंख की तरह फैलाये हुए ही उसे दौड़ना पड़ा। एक बांह फैलाये 'रोको ! रोको !' चिल्लाते हुए रेलगाड़ी के पीछे भागते उसे लगा कि वह कोई अनुचित काम कर रहा है। इस तरह एक बांह फैलाये चिल्लाते हुए बस के पीछे भागना एक सीमा तक ठीक कहा जा सकता है।

बस ! हां, बस ने ही तो उसकी यह गत बनायी थी। घर से रेलवे स्टेशन पहुंचने के लिए वह बस पर क्यों सवार हुआ ? यदि गठरी और भारी होती, सूटकेस और बड़ा होता तो बस द्वारा रेलवे स्टेशन पहुंचने का विचार ही मन में नहीं आता। जब वह बस पर सवार हुआ उस समय काफी भीड़ थी। हर स्टाप पर पीछे से पुरुष और आगे से महिलायें बस में चढ़ते जा रहे थे। ऐसा लगा कि उनमें से किसी का भी टिकट खरीदने का कोई विचार नहीं है। उनके टिकट खरीद लेने तक कंडक्टर बस को आगे नहीं बढ़ने देना चाहता था। इस बीच थोड़ी बूंदाबांदी भी हुई। सड़क पर कहीं गायों की तो कहीं बैलगाड़ियों की भीड़ लगी थी। जिस प्रकार कोई घूस थोड़ी सी जगह मिलने पर अपने मोटे-ताजे शरीर को इच्छानुसार सिकोड़कर धीरे-धीरे आगे बढ़ जाती है, उसी प्रकार बस भी जैसे-तैसे रास्ता बनाती हुई आगे बढ़ रही थी। एक बांह पंख की तरह फैलाये हुए रेलवे स्टेशन पहुंचने तक उसका पेट जैसे गर्दन से सट गया था। रेलवे स्टेशन कहीं और था और बसवाले ने रेलवे स्टेशन के नाम से उसे जहां उतारा था, वह कोई और जगह थी। वहां से पंख की तरह

बांह फैलाये वह करीब एक फर्लांग दौड़ा। एक फर्लांग ? नहीं, शायद एक मील दौड़ा होगा।

रास्ते में एक मूंगफली-चने बेचनेवाला, एक केले बेचनेवाला मिला। एक मोची मिला। एक कोढ़ी मिला। पांच बच्चों को क्रम से फुटपाथ पर सुलाकर भीख मांगनेवाला एक परिवार भी मिला। शाम के समय वे पांचों बच्चे एक साथ, एक ही जगह, बिना हिले-डुले कैसे सो सकते हैं ? क्या इन लोगों ने बच्चों को मार डाला होगा ? हाय राम ! यदि आज मार डालें तो कल क्या होगा ? नहीं, ऐसा नहीं किया होगा। बच्चों को किसी तरह सुला दिया होगा। उन्हें बेहोश करने की दवा पिला दी होगी। हां, हां बच्चों को थोड़ी-थोड़ी अफीम खिला दी होगी। बेचारे बच्चे !

इसके बाद कई जीते-जागते बच्चे मिले। लंगड़े-लूले मिले। साइकिल को धकेलता हुआ आगे बढ़ता एक मूर्ख भी मिला। यदि लोग इस तरह फुटपाथ पर साइकिल को धकेलते हुए चलने लगें, तो एक बांह फैलाये, गाड़ी पकड़ने के लिए दौड़नेवाले व्यक्तियों का क्या होगा ? लेकिन उस आदमी को दोष नहीं दिया जा सकता। हो सकता है उसकी साइकिल के पहियों में हवा ही न हो। उसकी साइकिल में बत्ती न हो। बिना बत्ती साइकिल चलाने पर पुलिसवाला पकड़कर ले जायेगा। वह देखो, सामने एक पुलिसवाला खड़ा है। पैदल चलनेवालों को रोककर उसने चार लारियों के लिए आगे बढ़ने का रास्ता बनाया है। चार लारियां, चारों ही विशालकाय भूत की तरह। भूतों से जल्दी आगे नहीं बढ़ा जाता। वे बहुत धीरे-धीरे ही चलते हैं। हां, भूत चाहें तो एकदम अदृश्य हो सकते हैं। अलादीन के लिए, एक राजमहल को, उसमें सोती राजकुमारी सहित, क्षणभर में ही उसकी आंखों के सामने लाकर खड़ा कर सकते हैं, किंतु गाड़ी पकड़ने के लिए जाते हुए उस जैसे व्यक्ति को एक युग तक फुटपाथ पर रोके रख सकते हैं।

बस, जैसे-तैसे वह रेलवे स्टेशन पहुंच गया। गाड़ी छूटने में अभी पांच मिनट बाकी हैं। टिकट पहले खरीद लेता तो क्या बिगड़ जाता ? शहर में चार टिकटघर हैं। वहां टिकट बेचनेवाले दिन भर खाली बैठे पान चबाते-थूकते रहते हैं। यदि वह टिकट लेने वहां चला जाता तो वे लोग 'चलो पान चबाने से थोड़ी देर के लिए छुट्टी तो मिली'—यह सोचकर उसके प्रति कृतज्ञ होकर उसे टिकट दे देते। किसी ने उससे कहा था कि रेलवे स्टेशन जाकर टिकट खरीद लेना। कौन था वह भोंदू ? उसका पड़ोसी मोटू। उस मूर्ख की बातों में आकर इस मूर्ख ने भी यही सोचा कि टिकट आदि का प्रबंध बाद में कर लेंगे।

इस समय रेलवे स्टेशन में टिकटघर के सामने बहुत भीड़ थी। लोग लाइन बनाकर खड़े थे। सभी को यह आदेश दिया गया था कि वे लाइन में आकर टिकट लें और लेन-देन का अपना हिसाब ठीक कर वहां से जायें। गाड़ी पकड़ने की जल्दी न हो तो सबके साथ लाइन में खड़े होकर, टिकट खरीदकर, लेन-देन का अपना हिसाब

ठीक कर, वहां से लौटा जा सकता है। यदि कुछ काम न करना हो तो सभी नियमों का पालन करते हुए भले आदमी की तरह भूखों मरा जा सकता है। फुटपाथ पर पड़े भिखारी के उन बच्चों की तरह। हे ईश्वर ! वे बच्चे मर न जायें। भीख मांगकर जीविका कमानेवाली वह स्त्री और वह पुरुष उन बच्चों के मां-बाप ही होंगे। हो सकता है कि ऐसा न हो। उन भिखारी बच्चों की मां कौन है और बाप कौन ? क्या मां-बाप के बिना भी इस संसार में रहा जा सकता है ? वे दोनों स्त्री-पुरुष उन बच्चों के मां-बाप नहीं हैं। उन्हें ये पांचों बच्चे कहीं पड़े मिल गये होंगे। उन्हें बेहोशी की दवा पिलाकर, फुटपाथ पर लिटाकर वे भीख मांग रहे थे। क्या वे लोग बच्चों को भी खाने के लिए कुछ देते होंगे ? उन्हें अवश्य कुछ देना चाहिए। भोजन न दिये जाने की स्थिति में, उसके अभाव में, बेहोशी की दशा में ही न जाने कितने बच्चे मर जाते हैं ? मां-बाप के होते हुए और बेहोश हुए बिना भी वह भीख पाने की आशा में खड़ा है। टिकटघर की खिड़की के सामने खड़े होना भी भीख मांगने की प्रक्रिया का एक अंग ही है। गाड़ी छूटने में अब दो-एक मिनट ही बाकी थे।

टिकट खरीदते-खरीदेते वह समय भी बीत गया। अब भी दौड़कर गाड़ी को पकड़ा जा सकता है। सौभाग्य से सीढ़ियां चढ़ने-उतरने की नौबत नहीं आयी। फिर भी सौ कदम की दूरी रहते गाड़ी खिसकने लगी।

वह भागने लगा। प्लेटफार्म पर दुनियाभर की चीजें पड़ी हुई थीं। जगह-जगह टोकरियां, गठरियां और टीन के डिब्बों के ढेर दिखायी दे रहे थे। किसी टोकरी से टकराते ही अचानक मुर्गियों की चीख सुन पड़ी। हां, उन टोकरियों में जीवित मुर्गियां थीं। टोकरियों में बंद वे मुर्गियां हिल-डुल नहीं सकती थीं, बोल नहीं सकती थीं। हां, चीख जरूर सकती थीं। अतः ठोकर खाते ही वे चीख उठीं। कुछ आगे बढ़ने पर डाकियों के ठेले दिखायी दिये। उन पर डाक से भरे थैले लदे हुए थे। फूले हुए डाक के थैले। कई हजार लोगों ने कई हजार लोगों को पत्र लिखे थे। प्रत्यक्ष रूप से मिलकर बातचीत न कर पाने के कारण सब कुछ पत्र में ही लिख दिया था। वे लोग आमने-सामने खड़े होकर भी कितनी बातें कर लेते ? पत्र लिखने में एक सुविधा है। उसमें बिना सोचे-समझे लिखा जा सकता है कि "यहां सब कुशलपूर्वक हैं। आपकी कुशलता जानने के लिए बहुत उत्सुक हूं।"

इस तरह लगातार भागते हुए क्या रेलगाड़ी तक पहुंचा जा सकता है ? यदि रेल की गति धीमी और अपनी गति तेज हुई तो शायद पहुंचा जा सकता है। किंतु सिद्धांततः पीछे भागनेवाला कभी भी आगे दौड़ती हुई किसी वस्तु को नहीं पकड़ सकता। मुझे यह बात अक्षरशः सत्य सी प्रतीत हुई। हम किसी को भी नहीं पकड़ पाते, फिर भी हमें सदा भागते रहना पड़ता है। इस रेलगाड़ी को अवश्य पकड़ लेना होगा।

अपनी एक बांह पंख की तरह फैलाये 'रोको ! रोको !' चिल्लाते हुए वह रेलगाड़ी

के पीछे दौड़ा। कंधे पर लटकते थैले में अटकाकर रखा हुआ अल्मूनियम का गिलास हर पल उसकी पसलियों से टकरा रहा था। अचानक सारा प्लेटफार्म खाली हो गया। वह और उसकी रेलगाड़ी यही दोनों वहां बचे रहे। अब अवश्य ही दौड़कर उसे पकड़ा जा सकता है। किंतु भारी बाधा के रूप में एक विशाल आकृति सामने खड़ी है। हां, ईश्वर की आकृति।

"हट जाइए ! हट जाइए ! मुझे वह रेलगाड़ी पकड़नी है !"

"वह रेलगाड़ी ?"

"हां ! उसे पकड़ने पर ही मैं कल सुबह उस गांव तक पहुंच सकता हूं। कल सुबह उस गांव में पहुंचने पर ही मैं दस बजे इंटरव्यू के लिए जा सकता हूं। आप हट जाइए। सामने से हट जाइए।"

"तुझे नौकरी मिल जायेगी ?"

"मुझे नौकरी मिल जानी चाहिए। यदि नौकरी मिल जाय तो फुटपाथ पर पड़े बच्चों की तरह मरने की नौबत नहीं आयेगी। मुझे अपने भावी बच्चों को फुटपाथ पर नहीं सुलाना पड़ेगा। हट जाइए ! सामने से हट जाइए !"

"तू किस जाति का है ?"

"मेरी जाति कुछ भी हो, इससे क्या ? मैं रीति-रिवाजों का, किसी परंपरा का पालन नहीं करता। मैंने लंबी-लंबी मूंछें रखी हुई हैं। मैं होटल में जाकर चाहे जिस पशु का मांस खा लेता हूं। शराब पीता हूं। मेरी कोई जाति नहीं है। हट जाइए ! सामने से हट जाइए।"

"तूने तो कह दिया कि तेरी कोई जाति नहीं है। क्या वे लोग इस बात को मान लेंगे ?"

"हट जा सामने से ! बड़ा आया भगवान का बच्चा !"

फिर उसी तरह बांह फैलाये भागना, 'रोको ! रोको !' चिल्लाना, अल्मूनियम के गिलास का पसलियों से टकराना। इस सत्यानाशी गिलास को कहीं और रख देता तो क्या होता ? अब किसी तरह का फेर-बदल करने का समय नहीं है। यह गिलास किसलिए ? पानी पीने के लिए ? नहीं। कल किसी जगह आराम से बैठकर शेव करने के लिए। चाहे कुछ हो जाय, मुझे शेव करके ही इंटरव्यू में जाना चाहिए। क्या यह भगवान जानता है कि मुझे नौकरी नहीं मिलेगी ?

दो कदम और भागने पर रेलगाड़ी तक पहुंचा जा सकता है। वह धीमी गति से ही चल रही थी। किंतु एक परेशानी थी। गाड़ी के आखिरी डिब्बे में नहीं चढ़ा जा सकता। कारण, वह तो गार्ड का डिब्बा होगा। पार्सलवाले डिब्बे की तरह सभी तरफ से बंद होगा। अतः दौड़कर गाड़ी को पकड़ लेना ही काफी नहीं। उसके दो तीन-डिब्बों को भी पार करना पड़ेगा। सामने फिर ईश्वर की आकृति दिखायी दी।

"हाय रे दुर्भाग्य ! यह फिर मेरे सामने आ गया ?"

"तुझ पर दया आ रही है, इसी से आया हूं।"

"यदि ऐसी बात है तो गाड़ी को रोक दीजिए न !"

"क्या मैंने तुझसे गाड़ी के पीछे भागने को कहा था ? घर से दस मिनट पहले नहीं चल सकता था ?"

"जो हो गया सो हो गया। अब बताइए कि मैं आगे क्या करूं ?"

"तुझे अपने किये का फल भुगतना पड़ेगा।"

"यह सब कहने के लिए आपकी जरूरत क्या है ? किये का फल तो भोग ही रहा हूं। हट जाइए सामने से।"

दो बार भगवान के दर्शन हो गये। इसके लिए कितने ही भक्तों, कितने ही मुनिजनों ने, कितने ही वर्षों तक, न जाने कैसे-कैसे कष्ट सहे होंगे ? अनगिनत त्याग किये होंगे ! प्रसिद्ध तमिल कथाकार पुदमैप्पित्तन ने तो उन्हें एक बार अपने घर ले जाकर खाना खिलाया था। मैंने, मैंने उनसे सामने से हट जाने के लिए कहा ! भगवान किसे कहते हैं, यह मैं कहां जानता हूं ?

इस तरह दौड़ते-भागते हुए भी पांच या दस मिनट की देरी के कारण हमने बहुत कुछ खोया है। कुछ खोने या हारने की योजना बनाकर हम देर से कार्य आरंभ करते हैं और बाद में उसे पूरा करने के लिए भाग-दौड़ करते हैं। इस पर भी कार्य के पूरा न होने पर हमें यह कहने में बड़ी सहूलियत होती है कि, "यह मेरा दुर्भाग्य है ! यही मेरी नियति है !"

कल मैं पच्चीस साल का हो जाऊंगा। अब मुझे इस तरह की नौकरियां नहीं मिल सकतीं। कल के बाद नौकरी पाने के अवसर मेरे लिए एक चौथाई ही रह जायेंगे। पूर्णकालिक नौकरी पाने के लिए पढ़ाई की थी किंतु इन छह वर्षों में थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद कुल इक्यासी दिनों के लिए दैनिक वेतन पर काम मिला। एक महीना और चार दिन किसी चिटफंड के दफ्तर में अस्थायी पद पर काम किया, बस। कहीं ऐसा तो नहीं कि मैंने नौकरी पाने के लिए वास्तव में कठोर प्रयत्न नहीं किया ? प्रयत्न, अथक प्रयत्न, कठोर प्रयत्न। प्रयत्न स्वयं एक संपदा है। हां, एक महान कार्य है। इससे धनवान बना जा सकता है। धनवान होने पर बस से रेलवे स्टेशन जाने की आवश्यकता नहीं। टैक्सी पर सवार होकर समय से वहां पहुंचा जा सकता है। रेल के पीछे-पीछे परकटे शुतुरमुर्ग की तरह भागने की, वह भी 'रोको ! रोको !' चिल्लाते हुए भागने की, कोई आवश्यकता नहीं। 'रोको'—यह शब्द ही निर्धनता का सूचक है।

निरंतर चलते हुए इस संसार को क्या 'रोको' कहकर रोका जा सकता है ? क्या संसार चल रहा है ? अंतरिक्ष में भयंकर वेग से दौड़ रहा है। इतना ही नहीं, उसके साथ सहस्रों करोड़ों ज्योतिष्पिंडों की सृष्टि कर उन्हें भयंकर वेग से फेंक देनेवाला यह ईश्वर मेरे सम्मुख खड़ा होकर मुझे भागने से रोक रहा है।

मैं किसलिए भाग रहा हूं ? एक रेलगाड़ी को पकड़ने के लिए। उस रेलगाड़ी को जो प्लेटफार्म छोड़कर आगे बढ़ गयी है। या तो मुझे रेलगाड़ी पकड़ लेनी चाहिए या मुझे छोड़कर रेलगाड़ी को आगे बढ़ जाना चाहिए। इस समय यही दो स्थितियां संभव हैं। ऐसा कितनी देर में हो जायेगा ? आधे मिनट में अथवा अधिक से अधिक एक मिनट में। किंतु मैं घंटों से सोच-विचार क्यों कर रहा हूं ? मन में कितने भाव, कितने विचार उठ रहे हैं ! विचार का अर्थ है शब्द। शब्द काल के बंधन में बंधे हुए हैं। किसी नियत कालावधि में अधिक से अधिक कितने शब्द बोले जा सकते हैं, इसका भी कोई हिसाब होता है। लेकिन मैं घंटों से अपने विचारों को इधर-उधर दौड़ा रहा हूं। ईश्वर भी मेरे विचारों की चपेट में आ गये। क्या ईश्वर भी काल के बंधन में बंधे हैं ?

मैं नहीं जानता। मैं नहीं जान सका कि काल किसे कहते हैं। क्रिया ही काल है अथवा एक क्रिया और दूसरी क्रिया के बीच का अंतराल काल है। क्रिया और क्रियाओं के बीच का अंतराल, दोनों का सम्मिलित रूप काल है अथवा ये दोनों ही काल के अंश नहीं हैं। मुझे लगता है कि एक काम को पूरा करके दूसरा काम प्रारंभ करने पर ही हमें काल का बोध होता है। इस प्रकार मेरे हिसाब से रेल खड़ी है। वह स्टेशन से नहीं चली है। उसे पकड़ने के लिए मुझे उसके पीछे-पीछे भागने की कोई जरूरत नहीं है। इस टूटे हुए सूटकेस और गठरी की तरह फूले हुए थैले को लेकर अनेक कष्ट झेलते हुए भागने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। लेकिन सचाई यह नहीं है। काल का मुझसे पृथक अस्तित्व है। पच्चीस साल। छह साल। इक्यासी दिन। एक महीना और चार दिन। बस का घूस की तरह धीरे-धीरे सरकना, पांच बच्चे, मुर्गियों से भरी टोकरियां, 'कीं कीं' की दीन पुकार, 'कुकडू कूं' की ध्वनि नहीं। दो बार ईश्वर के दर्शन।

ईश्वर किसे कहते हैं ? वह मेरे मन का भ्रम है। ईश्वर को किसने देखा है ? उनकी क्या पहचान है ? ईश्वर का संबोधन हम पुल्लिंग में ही करते हैं। क्या ईश्वर पुरुष रूप हैं ? पांच बच्चे, उन्हें बेहोशी की दवा दी गयी थी। जब तक उनकी बेहोशी दूर नहीं होती, उनके लिए समय रुका हुआ है। मैं भाग रहा हूं। रेलगाड़ी के साथ-साथ भाग रहा हूं। क्या ? रेलगाड़ी कहां है ? कहां है रेलगाड़ी ?

उसने टिकटघर के बाबू द्वारा दिये गये बाकी पैसों को अपनी जेब में डाल लिया। कंधे पर लटकते, गठरी की तरह फूले हुए उस थैले के कारण वह अपनी एक बांह को नीचे नहीं लटका सका। एक बांह फैलाये वह प्लेटफार्म पर खड़ी रेलगाड़ी पर सवार हो गया। थैले के एक कोने में अटकाकर रखा गया अल्मूनियम का गिलास अब भी उसकी पसलियों से टकराकर उसे पीड़ित कर रहा था।

लेखक परिचय

1. कृष्णन नंबि

जन्म : 24 जुलाई, 1932, अलकिय पांडियपुरम्, जिला–कन्याकुमारी।

मृत्यु : 1976

परिचय : कृष्णन नंबि ने भिन्न-भिन्न छद्म-नामों से कई विधाओं में रचनाएं लिखीं। उन्होंने कृष्णन नंबि नाम से कहानियां, शशिदेवन नाम से कविताएं और सादु शास्त्री नाम से निबंध लिखे।

सामान्य अनुभवों को सामान्य परिस्थितियों में रखकर मानव-मात्र की आंतरिक वेदना और पीड़ा को प्रतिबिंबित करना इनके कथालेखन की विशेषता है।

प्रकाशित कृतियां : 'यानै एन्न यानै' (बाल कविताओं का संग्रह) 'नीलक्कडल' (1964) और 'कालै मुदल' (1965) दोनों कहानी संग्रह आदि।

इस संग्रह में ली गयी कहानी 'बहू का वोट' इनकी अंतिम कहानियों में से एक है।

2. अंबै

जन्म : 17 नवंबर, 1944, कोयंबतूर।

परिचय : इनका वास्तविक नाम सी. एस. लक्ष्मी है। सातवें दशक में उभरी प्रमुख लेखिकाओं में इनकी गणना होती है। ये अंग्रेजी में भी लिखती हैं और प्रमुख अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में इनके निबंध प्रकाशित होते हैं।

भारतीय नारी की समस्याएं और उसकी सामाजिक स्थिति इनकी रचनाओं की विषयवस्तु होती है।

प्रकाशित कृतियां : 'अंदि मालै' (उपन्यास, 1966), 'नंदिमलैच्चार लिले' (बाल उपन्यास, 1961), 'शिरमुगल मुरियुम' (कहानी-संग्रह, 1976) आदि।

इन्होंने 'तंगराज एंगे' नामक बाल-फिल्म के संवाद भी लिखे हैं।

पता : फ्लैट नं. 9, दत्त कुटीर
प्लाट 20/12 कडाला
बंबई–400031

3. आदवन

जन्म : 21 मार्च, 1942, कल्लिडैक्कुरिच्चि।

मृत्यु : 19 जुलाई, 1987

परिचय : इनका वास्तविक नाम के. एस. सुंदरम् है। इनकी कृतियां वर्तमान पीढ़ी के सूक्ष्म मनोभावों को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से प्रतिबिंबित करती हैं। इनकी एक कहानी को मद्रास-स्थित 'इलक्किय चिंदनै' नामक साहित्यिक संस्था ने सन् 1973 की श्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार दिया। इनके उपन्यास 'काकिद मलरगल' को तमिल उपन्यास साहित्य में एक मील-पत्थर माना जाता है। इनकी कहानियां अनेक भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनूदित और प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्रकाशित कृतियां : 'काकिद मलरगल' (उपन्यास, 1976), 'एन पेयर रामशेषन' (उपन्यास, 1980), 'इरवुक्कु मुंबु वरुवदु मालै' (उपन्यासिकाओं का संग्रह, 1974), 'कनवुक कुमिलिगल' (1975), 'कालवली' (1975) और 'ओरू अरैयिल इरंडु नार्कालिगल' (1980) नामक तीन कहानी-संग्रह आदि।

4. वण्णनिलवन

जन्म : 25 जनवरी, 1948, तिरुनेलवेली।

परिचय : इनका वास्तविक नाम उ. ना. रामचंद्रन है। ये पिछले दो दशकों से कहानी, कविता, उपन्यास आदि लिखते आ रहे हैं।

अद्भुत सूचनाएं प्रदान करना, सीधी-सरल शैली का प्रयोग और सूक्ष्म मनोभावों का चित्रण इनके लेखन की मुख्य विशेषताएं हैं।

इनके उपन्यास 'कडलपुरत्तिल' को मद्रास-स्थित साहित्यिक संस्था 'इलक्किय चिंदनै' ने 1977 की श्रेष्ठ पुस्तक के रूप में पुरस्कृत किया।

प्रकाशित कृतियां : 'एस्तर' (कहानी-संग्रह, 1976), 'पांबुम् पिडारनुम्' (कहानी-संग्रह, 1978), 'कंबा नदी' (उपन्यास, 1979), 'रेयिनीस अय्यर तेरु'

(उपन्यास, 1981) आदि।

पता : द्वारा 'तुग़लक' पाक्षिक
29, ऐंडर्सन रोड, नुंगब्बक्कम्
मद्रास–600006

5. वार्वाकन

जन्म : 7 सितंबर, 1929

परिचय : इनका वास्तविक नाम हरि श्रीनिवासन है। ये चेंगलपेट जिले (तमिलनाडु) में स्थित कुष्ठरोग अस्पताल में सर्जन के रूप में कार्यरत हैं।

इनकी रचनाएं यद्यपि लघु साहित्यिक पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुई हैं, फिर भी बहुसंख्यक पाठक-वर्ग ने इनके लेखन की सराहना की है। इनकी कहानी 'कनुवुक्कदै' को मद्रास स्थित 'इलक्कियं चिंदनै' नामक साहित्यिक संस्था ने 1971 की सर्वश्रेष्ठ कहानी घोषित कर पुरस्कृत किया। इनकी कुछ कहानियां अंग्रेजी में अनूदित और प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्रकाशित कृतियां : 'वाचकर वट्टम', मद्रास द्वारा प्रकाशित लघु उपन्यासों के संकलन 'अरुशुवै' में रचना प्रकाशित। तिरुवनंतपुरम् से नकुलन द्वारा संग्रहीत 'कुरुक्षेत्रम्' नामक कहानी-संग्रह में कहानी प्रकाशित।

पता : 2, वरदनर स्ट्रीट, वेंदाचलम् नगर
चिंगलपुट–603001 (तमिलनाडु)

6. इंदिरा पार्थसारथी

जन्म : 1 जुलाई, 1930, कुंभकोणम्।

परिचय : इनका वास्तविक नाम आर. पार्थसारथी है। इन्हें वैष्णव सिद्धांत-संबंधी शोधकार्य पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई। इन्होंने साठ के दशक में लेखन कार्य आरंभ किया। उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना आदि कई विधाओं में लेखनी चलायी है।

व्यंग्य-प्रधान शैली का प्रयोग इनकी निजी विशेषता है। इन्हें 1978 में 'कुरुदिप्पुनल' नामक उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनेक

रचनाएं अनूदित। इनके नाटक तमिल रंगमंच पर ही नहीं, अपितु अन्य भारतीय भाषाओं के रंगमंचों पर प्रस्तुत और प्रशंसित हुए हैं। शंकरदास स्वामीगल स्कूल ऑफ ड्रामा पांडिचेरी विश्वविद्यालय, पांडिचेरी के प्रथम निदेशक भी रहे हैं।

प्रकाशित कृतियां : 'मलै' 'पोर्वै पोर्त्तिय उडलगल' और 'नंदन कदै' (सभी नाटक), 'कुरुदिप्पुनल' (उपन्यास) सहित 15 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

7. नील पद्मनाभन

जन्म : 26 अप्रैल, 1938

परिचय : अब तक इनके बारह उपन्यास, छह कहानी-संग्रह, एक कविता-संग्रह और एक निबंध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ये बहुचर्चित तथा प्रशंसित रचनाकार हैं।

इनके उपन्यास 'तलैमुरैगल' (1968) के अंग्रेजी, मलयालम और जर्मन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इनका 'पल्लिकोंडपुरम्' (1970) उपन्यास नेशनल बुक ट्रस्ट की 'आदान-प्रदान' योजना के अंतर्गत हिंदी, उर्दू मलयालम आदि प्रमुख भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हो चुका है। 'उरवुगल' (1975) उपन्यास पर इन्हें राजा सर अण्णामलै चेट्टियार पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। इन्होंने मलयालम और तमिल में दो कहानी संग्रहों का संपादन किया है।

पता : नीलकांत, 39/1870 कुरियायी रोड
पोस्ट–मनचंद, त्रिवेंद्रम–695009 (केरल)

8. आ. माधवन

जन्म : 6 फरवरी, 1933, तिरुवनंतपुरम्।

परिचय : ये 20 वर्ष की आयु से ही साहित्य रचना कर रहे हैं। अब तक 600 से अधिक कहानियां, 4 लघु उपन्यास, और 2 उपन्यास लिख चुके हैं। कुछ रचनाएं अंग्रेजी और मलयालम में भी अनूदित हो चुकी हैं। ये 'दीपम्' नामक मासिक साहित्यिक पत्रिका के संपादक-मंडल के सदस्य हैं।

अनेक अपूर्व सूचनाओं से युक्त इनकी रचनाओं में मानव-मन की उलझनों का बड़ा सुंदर चित्रण मिलता है।

प्रकाशित कृतियां : 'पुनलुम् मणलुम्' (उपन्यास, 1974), 'कृष्णप्पुरुंदु' (उपन्यास,

1980) और 'कडैत्ते रुक्कदैगल', (1975), 'मोह पल्लवी' (1975) 'कामिनीमूलम्' (1978) तीनों कहानी संग्रह–आदि इनकी प्रमुख कृतियां हैं।

पता : सेल्वी स्टोर्स
चलई, तिरुवनंतपुरम्–695023 (केरल)

9. सुजाता

जन्म : 3 मई, 1935, मद्रास।

परिचय : इनका वास्तविक नाम एस. रंगराजन है। सातवें दशक में साहित्य-जगत् में इनके प्रवेश से तमिल कहानी की रचना-शैली और विषयवस्तु में उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगत हुए।

इनकी रचनाएं लोकप्रिय भी खूब हुईं। इन्होंने कुछ अभिनेय नाटक भी लिखे। इनके कुछ उपन्यासों पर चलचित्र भी बने। विज्ञान कहानियां भी इन्होंने लिखीं। एम. राजाराम के साथ इलैक्ट्रानिक्स संबंधी एक पुस्तक भी इन्होंने तैयार की है।

प्रकाशित कृतियां : इनकी 25 से अधिक कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें प्रमुख हैं : 'करैयेल्लान शेण्बकप्पू' (1980), '24 रूबाय तीवू' (1979). 'कनवुत् तोलिरशालै' (1980)। सभी उपन्यास हैं।

10. चा. कंदसामी

जन्म : 23 जुलाई, 1940 मायवरम्।

परिचय : 'कोणालगल्' नामक कहानी-संग्रह में अन्य तीन कहानीकारों के साथ इनकी कहानियां पहली बार सामने आयीं। 'छायावनम्' (1969) नामक इनके उपन्यास से इन्हें विशेष प्रसिद्धि मिली। इसमें एक कारखाने की स्थापना के लिए एक छोटे से वन के विनाश की कथा कही गयी है।

'क च ट त प र' नामक साहित्यिक पत्रिका के प्रचार-प्रसार में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन्होंने अनेक साहित्यिक निबंध भी लिखे हैं।

प्रकाशित कृतियां : 'छायावनम्' (उपन्यास, 1969), 'तक्कैयिन मीदु नान्कु कणगल्' (कहानी-संग्रह, 1974), और 'अवन आनदु' (उपन्यास, 1981) आदि।

पता : आई–20, टर्नबुल्स रोड
मद्रास–600035 (तमिलनाडु)

11. नांजिल नाडन

जन्म : 30 दिसंबर, 1947, वीरनारायणमंगलम्।

परिचय : इनका वास्तविक नाम जी. सुब्रमणियन है। इन्होंने मूलतः कथा-साहित्य की रचना की है। इनके साहित्य-सृजन की मूल प्रेरणा है—अपनी जन्मभूमि और उससे संबंधित व्यक्तियों से विछोह।

तमिल़ संगम्, कलकत्ता की रजत-जयंती के अवसर पर आयोजित कहानी-प्रतियोगिता में इनकी कहानी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। ये 'दीपम्' नामक मासिक साहित्यिक पत्रिका के संपादक-मंडल के सदस्य रह चुके हैं।

प्रकाशित कृतियां : 'तलै कील विकिदंगल्' (उपन्यास, 1977), एवूबिलतनै बेयिस कायुम्' (उपन्यास, 1979), 'मामिशप्पडैप्पु' (उपन्यास), 'दैवंगल्, ओनायगल्, आडुगल्' (कहानी-संग्रह) आदि।

पता : द्वारा—डब्लू. एच. ब्रैडी एंड कं. लि.
ब्रैडी हाउस, 12/14, वीर नरीमन रोड
बंबई—400023

12. वण्णदासन

जन्म : 22 अगस्त, 1946, तिरुनेलवेली।

परिचय : इनका वास्तविक नाम एस. कल्याणसुंदरम् है। ये कल्याणजी के नाम से कविताएं भी लिखते हैं। इनकी दो कहानियों को 'इलक्किय चिंदनै', मद्रास की ओर से 1974 और 1975 की श्रेष्ठ कहानियों के रूप में पुरस्कृत किया गया है। अंग्रेजी में भी इनकी कुछ कहानियां अनूदित हुई हैं।

संप्रति स्टेट बैंक ऑफ इंडिया में कार्यरत हैं।

प्रकाशित कृतियां : 'कलैक्क मुडियाद ओप्पनैगल' (कहानी संग्रह, 1976), 'तोट्टसिर्क वेलिविलुम शिलपुक्कल' (कहानी-संग्रह, 1978) आदि।

पता : 21—ई, सुदलैमदन कैल स्ट्रीट
तिरुनेलवेली—627006

13. कि. राजनारायणन

जन्म : 1923, इडैशेवल।

परिचय : कि. राजनारायणन तमिल के प्रमुख आंचलिक कथाकारों में से

एक हैं। इनकी रचनाओं से अनेक विचित्र सूचनाओं के साथ रीति-रिवाज संबंधी जानकारियां भी प्राप्त होती हैं। एक विशेष प्रकार का हास्य-व्यंग्य इनकी शैली की विशेषता है।

'कदवु' कहानी-संग्रह पर इन्हें 1965 में तमिल विकास समिति का पुरस्कार प्राप्त हुआ। इनके बाल-उपन्यास 'पिंजुगल' (1979) को मद्रास की साहित्यिक संस्था 'इलक्किय चिंदनै' ने उस वर्ष की श्रेष्ठ कृति का पुरस्कार दिया।

प्रकाशित रचनाएं : 'गोपल्ल ग्रामम्' (उपन्यास, 1976), 'तमिल नाट्टु नाडोडिक् कदैगल' (कहानी-संग्रह, 1966), 'कुन्निमै' (कहानी-संग्रह, 1975), 'अप्पा पिल्लै अम्मा पिल्लै' (कहानी-संग्रह, 1980) आदि।

पता : राजा भवनम्
पोस्ट–इडैशेवल
(वाया) नालातिनपुत्तूर–627716

14. आर. चूड़ामणि

जन्म : 10 जनवरी, 1931, मद्रास।

परिचय : तमिल-साहित्य के अग्रणी रचनाकार। कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विधाओं में प्रचुर लेखन। इनकी तीस से अधिक रचनाएं प्रकाशित और प्रशंसित हो चुकी हैं।

सामाजिक प्रगति-संबंधी गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति, विचारों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता, सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण, विभिन्न प्रकार के परिपक्व चरित्रों की सृष्टि, सहज मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का अंकन आदि इनके लेखन की विशेषताएं हैं।

1957 में 'कलैमगल' पत्रिका द्वारा कहानी का रजत जयंती पुरस्कार और 1959 में 'मनतुक्कु इनियवल' उपन्यास पर नारायणस्वामी अय्यर उपन्यास पुरस्कार से सम्मानित। इनके नाटक भी 1961 में 'आनंद विकटन' द्वारा तथा 1966 में 'बंबई तमिल संगम' द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत हुए हैं। इन्हें 1966 में तमिलनाडु सरकार द्वारा स्थापित 'तमिल विकास संघ' का श्रेष्ठ ग्रंथ पुरस्कार और मद्रास की संस्था 'इलक्किय चिंदनै' का 1972 का श्रेष्ठ कहानी पुरस्कार भी प्राप्त हो चुके हैं।

अनेक रचनाएं अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं।

प्रकाशित कृतियां : तीस से भी अधिक कृतियां प्रकाशित।

पता : 7, डॉ. अलगप्पा चेट्टियार रोड
मद्रास–600084 (तमिलनाडु)

15. **जयंतन**

जन्म : 15 जून, 1937, मणप्पारै।

परिचय : इनका वास्तविक नाम एम. पी. कृष्णन है। इनकी पहली रचना 1974 में प्रकाशित हुई। जल्दी ही इनकी कहानियों और नाटकों ने पाठकों तथा साहित्य-समीक्षकों का ध्यान आकर्षित कर लिया। इनके नाटक 'निनैक्कप्पडुम' को 1978 की श्रेष्ठ नाट्य-रचना का पुरस्कार प्राप्त हुआ।

प्रकाशित कृतियां : 'जयंतन नाडहंगल', (नाटक-संग्रह, 1976), 'निनैक्कप्पडुम्' (नाटक, 1978), 'सम्मदंगल्' (कहानी-संग्रह, 1978), 'अरुंबुगल्' (कहानी-संग्रह, 1980) आदि।

पता : न. 9, छह मेन स्ट्रीट
थुंडीश्वरर कोइल स्ट्रीट
वेलाचेरी, मद्रास–600042

16. **अशोकमित्रन**

जन्म : 22 सितंबर, 1931, सिकंदराबाद।

परिचय : इनका वास्तविक नाम ज. त्यागराजन है। तमिल और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में स्वतंत्र लेखन कर रहे हैं। 'कणैयालि' नामक साहित्यिक पत्रिका का उसके जन्मकाल से ही संपादन किया।

इनकी रचनाएं विभिन्न भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं।

इल्लस्ट्रिटेड वीकली ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में इनकी कहानी पुरस्कृत हो चुकी है। इनके उपन्यास 'पदिनेट्टावदु अट्शक्कोडु' (1977) को मद्रास की साहित्यिक संस्था 'इलक्किय चिंदनै' ने वर्ष की श्रेष्ठ साहित्यिक कृति के रूप में पुरस्कृत किया है। यही कृति नेशनल बुक ट्रस्ट की आदान-प्रदान योजना के अंतर्गत भारतीय भाषाओं

में अनूदित की जा रही है।

विश्वविद्यालयों के आमंत्रण पर इन्होंने अमेरिका और श्रीलंका की यात्रा की है।

काशित कृतियां : 'करैन्द निल्लगल्' (उपन्यास, 1969), 'वालविले ओरू मुरै' (कहानी-संग्रह, 1971), 'तण्णीर' (उपन्यास, 1973), 'विडुदलै' (लघु उपन्यास संग्रह, 1979) आदि।

पता : 23, दामोदर रेड्डी स्ट्रीट
टी. नगर, मद्रास–600017 (तमिलनाडु)

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित